ब्रजभाषा और खड़ीबोली
का
तुलनात्मक अध्ययन

ब्रजभाषा और खड़ीबोली
का
तुलनात्मक अध्ययन

लेखक
डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया
एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी-संस्कृत विभाग
मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रस्तावना लेखक
डॉ० हरवंशलाल शर्मा
एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी० लिट्०
अध्यक्ष, तथा प्रोफेसर
हिन्दी संस्कृत विभाग
एवं
डीन फेकल्टी ऑव् आर्ट्स
मु० विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रकाशक
सरस्वती पुस्तक सदन
मोतीकटरा, आगरा

अगस्त, १९६२ } { मूल्य ६·५०

श्रद्धेय गुरुवर

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

की

सेवा में

स

म

र्पि

त

में पूर्व मान्यताएँ बदल रही हैं। खड़ीबोली का तो अभी बहुत कम साहित्य प्रकाश में आया है, परन्तु सम्भावना ऐसी है कि ब्रजभाषा साहित्य की भाँति खड़ी बोली का भी पर्याप्त साहित्य प्रकाश में आ सकेगा। ऐसी स्थिति में दोनों भाषाओं के विकास और परम्परा के सम्बन्ध में इयत्ता तथा दृढ़ता के साथ कुछ कहना कठिन है। जितना भी साहित्य आज तक प्रकाश में आया है उसका यथासाध्य विश्लेषण भी हुआ है जिसके आधार पर स्वतन्त्र लेख तथा ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। डॉ० भाटिया ने इस सामग्री का उपयोग केवल पृष्ठभूमि के रूप में किया है। इसलिए प्रथम भाग में पूर्णता तथा शृंखलाबद्धता की आशा नहीं की जा सकती फिर भी इन्होंने सम्पूर्ण प्रकाशित सामग्री की ओर यत्र-तत्र संकेत करके उसका यथासम्भव उपयोग किया है। ये संकेत शोध के विद्यार्थी के लिए बड़े उपयोगी हैं।

ग्रन्थ का द्वितीय भाग ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करता है। डॉ० भाटिया की मातृभाषा ब्रजभाषा है और खड़ी बोली के क्षेत्र में रहने तथा भ्रमण करने के उन्हें अनेक अवसर प्राप्त हुये हैं, साथ ही वे भाषा-विज्ञान के एक अध्यवसायी छात्र हैं। उनकी प्रारम्भ से ही प्रवृत्ति भाषा-विज्ञान की ओर रही है। उनका शोध प्रबन्ध 'हिन्दी में अँग्रेजी आगत शब्दों का भाषा-तात्त्विक अध्ययन' भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में एक योगदान कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई प्रशिक्षण केन्द्रों में भाषा-विज्ञान की प्रक्रिया का भी सम्यक् अध्ययन किया है। इस विशद पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत विषय पर लेखनी उठाने का इन्हें पूर्ण अधिकार है। अब तक इस विषय पर जो ग्रन्थ लिखे गये हैं उनका आधार सामान्य रूप से शास्त्रीय अध्ययन ही रहा है—क्षेत्र विशेष में जाकर भाषाओं तथा बोलियों का अध्ययन नहीं। यही कारण है कि वे ग्रन्थ शास्त्रीय ही रह गये हैं। डॉ० भाटिया ने अपने अनुभव के आधार पर यह अध्ययन प्रस्तुत किया है अतः इसकी उपयोगिता और ग्रन्थों की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक है।

मेरी मातृभाषा खड़ीबोली है और कार्य-क्षेत्र ब्रजभाषा-क्षेत्र है इसलिए मैं अधिकार से यह कह सकता हूँ कि भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी के लिए यह ग्रन्थ अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

ग्रन्थ की शैली में भाटिया जी के व्यक्तित्व की छाप है। उनके स्वभाव की सरलता तथा स्पष्टता ग्रन्थ में लक्षित होती है। भाटिया जी से मेरा वर्षों का सम्पर्क है और मैं उन्हें विद्यार्थि-जीवन से ही जानता हूँ। उनके जीवन की एकरूपता और नम्रता इस ग्रन्थ में भी आयी है। मैं उन्हें इस प्रयास के लिए आशीर्वाद देता हूँ और मेरी शुभकामना है कि वे इस क्षेत्र में और अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करें।

गुरु पूर्णिमा, २०१९ वि०
१७ जुलाई, १९६२ ई०।

हरबंशलाल शर्मा

अपनी बात

हिन्दी भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में 'ब्रजभाषा' तथा 'खड़ी बोली' पर पृथक्-पृथक् अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, किन्तु दोनों के तुलनात्मक अध्ययन की ओर किसी भी ग्रन्थ में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह तुलनात्मक अध्ययन भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में बिखरा हुआ तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनुवादित महाकाव्य 'बुद्ध चरित' की भूमिका में व्यवस्थित रूप से मिलता है। 'बुद्ध चरित' की भूमिका ही मेरे अध्ययन का प्रेरणा-स्रोत बनी। इसी अध्ययन का परिणाम प्रस्तुत पुस्तक है।

आज की साहित्यिक हिन्दी का मूलाधार 'खड़ीबोली' है यों अभी तक 'ब्रज-भाषा' ही हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक भाषा रही थी। हिन्दी के साथ दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है। भाषा-विज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि से यद्यपि आज 'ब्रजभाषा' बोली मात्र रह गई है और 'खड़ीबोली' अपने विपुल वाङ्मय के कारण साहित्यिक भाषा का मानदण्ड बन चुकी है तथापि प्रस्तुत पुस्तक में सुविधा की दृष्टि से 'ब्रजभाषा' तथा 'खड़ीबोली' दोनों शब्द प्रचलित रूप में ही ग्रहण किये गये हैं। यहाँ 'खड़ीबोली' से तात्पर्य खड़ीबोली के साहित्यिक रूप से है।

प्रस्तुत पुस्तक में दो भाग हैं। प्रथम भाग—भूमिका—में ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के उद्भव और विकास का ऐतिहासिक विवेचन है जिसमें समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है। द्वितीय भाग—मूल ग्रन्थ—में ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली का तुलनात्मक विवेचन है जो अपनी साम्मुख्य प्रधान नूतन शैली में प्रस्तुत है। अध्ययनार्थ सामग्री के संकलन में मुझको अपने मित्रों तथा विद्यार्थियों से पर्याप्त सहायता मिली है। सामग्री का विश्लेषण तथा उसका प्रस्तुतीकरण अनुसन्धानात्मक शैली में है फिर भी मैं इसे 'शोध' नहीं कह सकता। परिशिष्ट में विषय की पूर्णता की दृष्टि से खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा का एक दूसरी प्रमुख उपभाषा 'अवधी' से भी अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है। प्रारम्भ में ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए एक मानचित्र भी संलग्न है।

भूमिका के उपसंहार से पूर्व मैं अपने मित्रों एवं गुरुजनों के प्रति आभार प्रदर्शित करना कर्त्तव्य समझता हूँ। पुस्तक की रूपरेखा तैयार करने में सुहृदवर डॉ० भोलानाथ तिवारी ने सहयोग दिया है। अनेक समस्याओं के समाधान में अनन्य साथी डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने बहुमूल्य समय देने की कृपा की है। श्रद्धेय डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० सुमित्र मंगेश कत्रे, डॉ० विश्वनाथप्रसाद तथा डॉ० उदयनारायण तिवारी का आशीर्वाद

सदा ही साथ रहा है। ध्वनि-विज्ञान का अध्ययन मैंने प्रो० गोलोक बिहारी धल से किया। गुरुवर डॉ० सत्येन्द्र का लघु वाक्य 'कुछ लिखो' प्रेरक रहा है। परमादरणीय डॉ० हरबंशलाल जी शर्मा की प्रेरणा एवं उत्साहवर्द्धन से ही इस पुस्तक का प्रणयन कर सका हूँ। श्रद्धेय डाक्टर साहब ने 'प्रस्तावना' लिखकर जो आशीर्वचन दिया है वह मुझे भविष्य में भी प्रेरित करता रहेगा।

सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा के संचालक श्री प्रतापचन्द जी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में जो रुचि प्रदर्शित की वह भी श्लाघनीय है।

अन्त में इस पुस्तक के परिश्रम को मैं तब सार्थक समझूँगा जब कोई नई प्रतिभा इसी विषय पर बोली-विज्ञान (डाइलेक्ट ज्योग्रफी) पर आधारित सूक्ष्मतर अध्ययन अथवा शोध प्रस्तुत करे। अनेक महानुभावों के सहयोग तथा परिश्रम से यह पुस्तक आपके सामने है। कहीं-कहीं प्रूफ की अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। इस पुस्तक के सम्बन्ध में जो भी सुझाव प्राप्त होंगे उनका स्वागत किया जावेगा।

१५ अगस्त १९६२,
अलीगढ़।

कैलाश चन्द्र भाटिया

विषय-सूची

भाग १

भूमिका

चित्र

१.

प्राकृत से प्राकृत

प्राकृत की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है :—

(अ) प्राकृत उस भाषा को कहते हैं जो प्रकृति अर्थात् स्वभाव से प्राप्त हो, जिसको सब लोग विशेष शिक्षा के बिना ही समझते हों और व्यवहार में लाते हों। यह भाषा सर्व साधारण में प्रचलित और व्याकरणादि नियमों से रहित रही होगी।[1]

(आ) प्रकृति है संस्कृत और प्रकृति से निकली हुई भाषा को 'प्राकृत' कहते हैं।[2]

उक्त दोनों ही व्युत्पत्तियों के आधार पर विद्वानों ने दो प्राकृतों की कल्पना की है :—

प्राकृत—प्रथम—जो संस्कृत से पूर्व विद्यमान थी।

प्राकृत—द्वितीय—जो संस्कृत के बाद विकसित हुई।

प्रथम प्राकृत

इस प्रकार की प्राकृत की कल्पना लगभग सभी भाषा वैज्ञानिकों ने की है पर सर्व प्रथम स्पष्ट रूप से कहने का श्रेय डॉ० ग्रियर्सन[3] को है। आप भाषा सर्वेक्षण के बारहवें अध्याय में कहते हैं "अशोक (२५० ई० पू०) के शिलालेखों तथा महर्षि पातंजलि (१५० ई० पू०) के ग्रन्थों से यह ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व तीसरी

---

१. प्राकृत—प्राक्+कृत=पहली बनी हुई भाषा।
प्राकृतेति। सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृति तत्र भवः सेव वा प्राकृतम्। प्राकृत विमर्श पृष्ठ २।

२. इस सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं।
'प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत् आगतं वा प्राकृतम्।' हेमचन्द्र
'प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं प्राकृतम् उच्यते।' मार्कण्डेय
'प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्रभत्वात् प्राकृतम् स्मृतम्।' पीटरसन
'प्रकृतेः संस्कृतात् आगतम् प्राकृतम्।' सिंहदेवमणि

३. डा० ग्रियर्सन—भारत का भाषा सर्वेक्षण, अनुवादक—डा० उदय नारायण तिवारी सन् १९५९, पृष्ठ २२४।

शताब्दी में उत्तर भारत के आर्यों की विविध बोलियों से युक्त एक भाषा प्रचलित थी। जन साधारण की नित्य व्यवहार की इस भाषा का क्रमागत विकास वस्तुतः वैदिक युग की बोलचाल की भाषा से हुआ था। इसके समानान्तर ही इन्हीं बोलियों में से एक बोली से ब्राह्मणों के प्रभाव द्वारा एक गौण-भाषा के रूप में लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। कालान्तर में इसने मध्ययुगीन लैटिन की भाँति अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। शताब्दियों से भारतीय आर्य-भाषा प्राकृत नाम से पुकारी जाती रही। प्राकृत का अर्थ है—**नैसर्गिक एवं अकृत्रिम भाषा**। इसके विरुद्ध संस्कृत का अर्थ है—**संस्कार की हुई, तथा कृत्रिम भाषा**। 'प्राकृत' की इस परिभाषा से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन वैदिक मंत्रों की बोलचाल की भाषाएँ बाद के मंत्रों की कृत्रिम संस्कृत भाषा की तुलना में वास्तव में प्राकृत (नैसर्गिक) भाषाएँ थीं। वस्तुतः इन्हें भारतवर्ष की प्रथम प्राकृत कहा जा सकता है।"

इस प्रथम प्राकृत को ही आचार्य किशोरीदास वाजपेयी[1] ने वैदिक काल की 'प्राकृत' भाषा कहा है। उनके अनुसार वैदिक काल में ऋषियों से इतर साधारण जनता किसान भी थे, मजदूर (दासजन) भी थे और शासक (दिवोदास, सुदास जैसे पराक्रमी नेता) भी थे। कुछ ऋषि भी थे। ऋषियों ने मंत्र रचना, जिस भाषा में की, वह उस समय की जन भाषा ही थी, पर उससे कुछ भिन्न भी थी। यह रूप-भेद स्वरूपतः नहीं, परिष्कारजन्य तथा प्रयोग वैशिष्ट्य-कृत था। आज भी साधारण जनभाषा में और साहित्यिक भाषा में उतना ही अन्तर है। बाजार की हिन्दी में और साहित्यिक भाषा में उतना ही अन्तर है। बाजार की हिन्दी में और साहित्यिक हिन्दी में कितना अन्तर है। इस अन्तर के कारण नाम-भेद यदि करें तो साधारण जनों की व्यवहार-भाषा को इस समय की **'प्राकृत'** और साहित्यिक भाषा को **'सुसंस्कृत'** भाषा कह सकते हैं।

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत

उपर्युक्त दोनों प्राकृतों के मध्य की भाषा 'संस्कृत' नाम से अभिहित है। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है। ऋग्वेद की भाषा में विभिन्न स्थानीय बोलियों का मेल दिखाई देता है। ऋग्वेद-संहिता के सूक्तों की रचना पंजाब प्रदेश में हुई। तत्कालीन पंजाब की भाषा जो 'उदीच्य भाषा' के रूप में मानी जाती है 'आदर्श भाषा' का रूप थी। इसमें ही आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप सुरक्षित है। भाषा को आदर्श रूप से तात्पर्य है वह रूप जिसको शिष्ट बोलते हैं और शिष्ट वे लोग हैं जो विशेष शिक्षण के बिना ही शुद्ध संस्कृत बोलते हैं, व्याकरण का प्रयोजन

---

१. **किशोरीदास वाजपेयी—प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान भारतीय भाषाएँ सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६, संख्या ४ पृष्ठ ४०।**

हमें शिष्टों का परिज्ञान कराना है जिससे उनकी सहायता से पृषोदर जैसे शब्दों के, जो व्याकरण के साधारण नियमों के अन्दर नहीं आते, विशुद्ध रूपों को जान सकें। आर्यावर्त के ब्राह्मणों को शिष्ट माना गया है। आर्यावर्त की सीमाएं मानी गई हैं—हिमालय के दक्षिण में, परियात्र के उत्तर में, आदर्श के पूर्व में तथा कालकवन के पश्चिम में।[1]

वैदिक संस्कृत की विशेषताएं[2]

१. दो स्वरों के मध्य 'ड', 'ढ' का क्रमशः 'ल' 'लह' हो जाना।

२. 'ल' का 'र' में परिवर्तन।

३. सार्वनामिक तृतीया—बहुवचन में 'एभिः' का नाम रूपों में प्रवेश।

४. अनार्य अंशों का सम्मिश्रण—कृत से 'कट' तथा कर्त से बने 'काट' आदि शब्दों में अनियमित 'ट' का प्रवेश।

५. प्राचीनतर 'इय्' और 'उव्' के स्थान में क्रमशः 'य्' और 'व्'।

६. लगभग ४० प्रतिशत शब्द आगे चलकर समाप्त हो गये या उनका अर्थ ही बदल गया।

७. 'दर्शनीय' के अर्थ में 'दर्शत', 'बुद्धिमान्' के अर्थ में 'अमूर', 'मूढ' के अर्थ में मूर, 'दयालु' के अर्थ में 'ऋदूदर' आदि शब्द समाप्त हो गये।

वैदिक भाषा[3] का बराबर क्रमिक विकास-संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों में होता गया। वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषदों और सूत्रों की भाषा व्याकरण रूपों की सरलता के कारण 'संस्कृत' के समीप है। संस्कृत वैयाकरणों ने अनेक वैदिक प्रयोगों के मध्य एक सुव्यवस्थित और विशुद्ध भाषा को जन्म दिया जिसको सर्व प्रथम 'रामायण' में 'संस्कृत' कहा गया। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का वह रूप जिसका विवेचन पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में किया 'संस्कृत' कहलाया। पाणिनि के व्याकरण की स्टेंडर्ड (आदर्श) भाषा उदीच्य भाषा थी। 'अष्टाध्यायी' द्वारा संस्कृत का रूप हमेशा के लिए स्थिर हो गया। पाणिनि ने वैदिक भाषा को 'छन्दस्' कहा। हॉर्नले, ग्रियर्सन आदि कुछ यूरोपीय विद्वान् इस मत के हैं कि लौकिक संस्कृत वैयाकरणों के परिश्रम के परिणामस्वरूप अपने वर्तमान रूप

---

१. कीथ-संस्कृत साहित्य का इतिहास, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ १३।

२. कीथ, भंडारकर, उदयनारायण तिवारी द्वारा दी गई विशेषताओं के आधार पर।

३. वैदिक भाषा की स्वर-प्रक्रिया के लिए—युधिष्ठिर मीमांसक—वैदिक स्वर मीमांसा, १९५८।

में स्थिर हुई जिसको ब्राह्मणों ने अपने गुरुकुलों में अतियत्नपूर्वक सुरक्षित रक्खा और उनसे इसे पाण्डित्य एवं धर्म का वरदान प्राप्त हुआ ।

वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर[1]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जो अन्तर जनभाषा और साहित्यिक भाषा के मध्य होता है वही अन्तर वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के मध्य है । ध्वन्यात्मक दृष्टि से वैदिक 'ल' तथा 'ल्ह्' के स्थान पर संस्कृत में क्रमशः 'ड्' तथा 'ढ्' का विकास हुआ । 'र' के स्थान में 'ल्', 'इय' तथा 'उव्' के स्थान पर क्रमशः 'य्' तथा 'व्' हो गये ।

रूपात्मक दृष्टि से 'देवायु' जैसे रूप आगे समाप्त हो गये, केवल 'मन्यु', 'दस्यु' आदि एक दो रूप शेष रह गये । वैदिक 'भारद्वाज' का अर्थ पुरष्कार का ले जाने वाला न रहा । 'वीर्या' के स्थान पर 'वीरयेण' तथा 'रामैः', 'रामेभिः' जैसे रूपों में से प्रथम ही आगे चल सका ।

सबसे अधिक अन्तर शब्दावली के क्षेत्र में हुआ—'अत्क', 'अन्धः' जैसे शब्द बिल्कुल समाप्त हो गये । असुर, अरि, रज के क्रमशः वैदिक अर्थ 'देव', 'विश्वास-पात्र', 'खाली स्थान' आगे न चल सके 'वह्नि' का अर्थ 'ले जाने वाला' मात्र था वह संस्कृत में अग्निवाचक बन गया । 'दस्यु' अनार्यों के लिए प्रयुक्त होता था वह संस्कृत में 'दास' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा । 'शूद्र' उ० प० भारतीय प्रदेश में एक जाति थी जिससे आगे चलकर भारतीय जाति व्यवस्था में चतुर्थ वर्ग का अर्थ लिया जाने लगा । स्वराघात के समाप्त हो जाने से अर्थ समझने में विशेष कष्ट होने लगा और एक से दो शब्दों के स्वाराघात के आधार पर दो भिन्न अर्थ आगे चलकर प्रायः समाप्त हो गये :—

क्रतु-बलिदान, क्रतु-बुद्धिमानी ।

वैदिक—स्वाराघात के स्थान पर संस्कृत—में बलाघात का प्रभाव बढ़ने लगा ।

अज्ञान के कारण नये शब्द भी विकसित हुए । जब देववाची 'असुर' शब्द 'राक्षसवाची' हो गया तो देववाची 'सुर' पुनः बना लिया गया । इसी प्रकार 'असिता' का अर्थ जब 'काला' निश्चित हुआ तो 'अ' विरोधमूलक उपसर्ग समझकर 'सित' 'श्वेत' के अर्थ में प्रचलित हो गया । 'असुर' तथा 'असिता' दोनों शब्दों के प्रारम्भ में 'अ' उपसर्ग वस्तुतः इस अर्थ का द्योतक नहीं था ।

कुछ नये शब्द बढ़े—भारोपीय शब्द, जैसे, 'विपुल', सर्वथा नवीन शब्द गढ़े भी गये—केवल 'कृ' धातु से कई सौ शब्द बढ़ाये गये ।

---

१. **लेखक ने इस सामग्री को टी० बरो, कीथ, मंगलदेव शास्त्री, भंडारकर, तिवारी के अध्ययन के आधार पर संकलित की है ।**

द्रविड़ भाषा के अनेक शब्द, कोलेरियन शब्द, 'बारबाण' जैसे ईरानी, 'होरा' जैसे ग्रीक शब्दों की वृद्धि हुई। अनेक देशी शब्दों की भी वृद्धि हुई।

	वैदिक	लौकिक संस्कृत में अर्थ
अराति	शत्रुता, कृपणता	शत्रु
वध	कोई घातक हथियार	मार डालना
मृलीक[1]	कृपा, अनुग्रह	शिवजी का नाम
अरि	ईश्वर, धार्मिक, शत्रु	शत्रु
क्षिति	निवास स्थान, गृह, बस्ती, मनुष्य	पृथ्वी

संक्षेप में 'क्रियापदों में धातुओं के साथ लगने वाले उपसर्गों की प्रणाली में दोनों भाषाओं में महान् अन्तर हो गया।' टी बरो—संस्कृत

भंडारकर महोदय ने ७२ पदों का एक परिच्छेद लेकर दिखलाया है कि उसमें से आगे चलकर १६ बिल्कुल लुप्त हो गये और १२ पदों में अर्थ परिवर्तन हो गया। इस प्रकार ४० प्रतिशत सामग्री वैदिक भाषा से लौकिक तक आते-आते बदल गई।

ईसा पूर्व ५०० के लगभग पाणिनि ने संस्कृत को व्याकरण के जटिल नियमों की शृंखला में ऐसा जकड़ा कि उसका विकास रुक गया, यद्यपि उसका साहित्यिक स्वरूप आज भी उसी रूप में समस्त भारत के पण्डित वर्ग में सुरक्षित है जो धर्म तथा संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में मान्य है पर उसका जन-विकास उसी समय रुक गया। कुछ लोग तो इसमें भी सन्देह करते हैं कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा भी थी ? हो सकता है कि कुछ समय तक किसी निश्चित वर्ग में बोलचाल की भाषा संस्कृत अवश्य रही होगी अन्यथा नाटकों का विकास तथा भाषा में उन शब्दों का विकास जो केवल बोलचाल में ही व्यवहृत होते हैं न होता। इस प्रकार संस्कृत व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, वर्ण शिक्षा, निरुक्त, सामुद्रिक शास्त्र, भूत विद्या, तन्त्र-मन्त्र की भाषा बनी रही। महाभाष्य १·६ के अनुसार संस्कृत वेद, उसके अंग, रहस्य वाकोवाक्य। दर्शन में विकसित संवाद, इतिहास, वैद्यक आदि शास्त्रों की भाषा बनी रही। यही उल्लेख आश्वलायन, गृह्य सूत्र, शतपथ ब्राह्मणादि में भी मिलता है।

यदि संस्कृत किसी काल में भी बोलचाल की भाषा न रही होती तो पाणिनि उसके लिए 'भाषा' जिसके मूल में स्पष्टतया 'भाष्' धातु है (बोलचाल के अर्थ में)

---

१. भण्डारकर ने अपने विलसन फिलोलोजीकल भाषणों में एक स्थान पर कहा है :—
"The wealth of verbal derivatives like अवस्त्र, दर्शत, मृलीक, is unknown to the classical sanskrit."

प्रयोग, भावोद्रेक की भाषा में स्पष्टतया व्यंजनों के द्वित्व का निषेध, दूर से आह्वान में प्लुतत्व का विधान, खेल के पारिभाषिक शब्द, चरवाहों की बोली, दैनिक जीवन से सम्बन्धित मुहावरों का उल्लेख न करते। इसके पक्ष में और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं।[1]

वैयाकरणों ने स्पष्ट रूप से शिष्टों की भाषा का प्रयोग किया है और साथ ही वे शब्दों के वे रूप भी संकलित किये हैं जो जनसमाज में प्रयुक्त होते हैं पर उन्हें मान्य नहीं :—

शुद्ध रूप	**अन्य रूप—अशिष्ट रूप**
शश	षष
पलाश	पलाष
कृषि	कसि[2]
दृशि	दिसि[2]
गौ	गावी, गौणी, गौता, गौपोतलिका
आज्ञापयति	आणपर्यति
वर्तते	वट्टति
वर्धते	वड्ढति
मञ्चक	मञ्जक

काल के प्रवाह में शिष्ट रूप कुछ शिष्टों तक ही सीमित रह गये और अशिष्ट प्रयोग जन-प्रवाह में ऐसे प्रवाहित हुए कि फिर पाणिनि की अष्टाध्यायी का बाँध भी उन्हें न रोक सका और फलस्वरूप वह बँधा हुआ रम्य सरोवर बँध कर ही रह गया जिसमें आज सड़ांध उत्पन्न हो रही है और वह जनभाषा मानस का उन्मुक्त प्रवाह कलकल निनाद करती हुई गंगा की भाँति आगे बढ़ गया जिसके सर्वप्रथम दर्शन हुए अशोक के शिलालेखों में।

---

१. इस सम्बन्ध में लिंग्विस्टिक सोसायटी के १९५६ के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिया गया डॉ० सेन का अध्यक्षपदीय भाषण उल्लेखनीय है।

२. ये उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि 'ऋ' का विकास ईसा पूर्व ही समाप्त प्रायः था फिर भी पण्डित वर्ग के दुराग्रह से आज तक नागरी लिपि में चला आ रहा है, यहाँ तक कि भारत सरकार द्वारा सुधारी हुई नागरी लिपि तक में विद्यमान है।

२.

मध्य आर्यभाषा काल

मध्य भारतीय आर्यभाषा-काल ५०० ई० पू० से १००० ई० तक का माना जाता है जिसको सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

आरम्भिक—शिलालेखी प्राकृत तथा पालि ।

मध्यकालीन—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्द्ध मागधी, पैशाची आदि प्राकृतें ।

उत्तरकालीन—नागर, उपनागर, व्राचड़ आदि अपभ्रंश ।

अशोक के शिलालेख

अशोक के शिलालेख इस तथ्य का सबसे बड़ा प्रमाण है कि जन-समाज में अनिवार्य रूप से प्राकृत का ही बोलबाला हो चुका था । इन अभिलेखों की भाषा समझे जाने योग्य है । मध्यभारतीय आर्य भाषाओं के 'प्राकृत' स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिलालेख प्राचीनतम और समसामयिक भाषा के जीवित स्वरूप हैं । ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मौर्य सम्राट अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न भागों में धर्म तथा शासन सम्बन्धी लेख चट्टानों, पस्तरखण्डों, गुफाओं की भित्तियों पर उत्कीर्ण करवाये थे । इन शिलालेखों का ऐतिहासिक महत्व के साथ-साथ भाषा की दृष्टि से भी विशेष महत्व है क्योंकि जनसाधारण के लिए जन-भाषा में इनको लिखवाया गया था ।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी शिलालेखों की भाषा एक सी नहीं है । विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न रूपों को उत्कीर्ण कराया गया है जो इस बात का प्रमाण है कि भारत जैसे विशाल देश में भाषा के (जनभाषा) अनेक रूप विद्यमान थे जिनको विद्वानों ने सुविधा की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया है । डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार हम इनको निम्नलिखित तीन भागों में बाँट सकते हैं :—

प्रथम श्रेणी—६ शिलालेख—२ उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में हैं :—
एक पेशावर से ४० मील पूर्व—शाहबाजगढ़ी में और दूसरा हजारा जिले में मानसेरा के समीप।
१ गुजरात में गिरनार पर्वत के अंचल में।
१ देहरादून में मसूरी-चकरौता के मार्ग में १६ मील दूर कालसी में।
२ कलिंग प्रदेश में एक धौली में और दूसरा जौगड़ में

द्वितीय श्रेणी—९ लघु शिलालेख—३ मैसूर राज्य में—सिद्धपुर, रोमेश्वर, ब्रह्मगिरि, तथा एक शाहाबाद में, जबलपुर, दो जयपुर तथा वैराट में, एक निजाम राज्य के अन्तर्गत एक गाँव में तथा एक मद्रास राज्य में।

तृतीय श्रेणी—८ स्तम्भ लेखादि—इसके अतिरिक्त गुहालेख और अन्य लघु अभिलेख आ जाते हैं। स्तम्भ लेख अम्बाला, मेरठ, कौशाम्बी, बिहार के चम्पारन जिले में लौड़िया ग्राम के समीप, दो रामपुरवा में एक नेपाल की तराई में, रुम्मिनदेई तथा निग्लीव ग्राम में स्थापित किये गये थे।

भाषा की दृष्टि से इन शिलालेखों में चार भाषाओं के स्वरूप दृष्टिगत होते हैं—

(१) उदीच्य—उत्तरी-पश्चिमी स्वरूप—शाहबाजगढ़ी और मानसेरा के शिलालेखों में।

(२) प्रतीच्य—दक्षिण-पश्चिमी स्वरूप—गिरनार आदि के अभिलेखों में।

(३) प्राच्यमध्य—मध्यवर्ती स्वरूप—कालसी (चकरौता), तोपरा (देहली) वैराट आदि में।

(४) प्राच्य—पूर्वी स्वरूप—धौली, जौगढ़, रामपुरवा, सारनाथ इत्यादि अभिलेखों में।

शाहबाजगढ़ी और मानसेरा के सशलालेख खरोष्ठी लिपि में हैं जबकि गिरिनार कालसी, धौली, जौगड़ आदि के शिलालेख ब्राह्मी लिपि में लिखे गये हैं। **उदाहरणार्थ हम एक वाक्यांश ले रहे हैं :—**

संस्कृत	देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	एवम्	आह
गिरनार	देवानं	प्रि	पियदसि	राजा	एवं	आह
कालसी	देवानं	पिये[1]	पियदसि	लाजा[2]	हेव[3]	आहा[4]
धौली	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा
जौगड़	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा	हेवं	आहा
शाहबाजगढ़ी	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि[5]	रय	एवं	अहति
मानसेरा	देवनं	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एवं	अह[6]

संस्कृत	इयं	धर्मलिपि	देवानां	प्रियेण	प्रियदर्शिना	राज्ञा	लेखिता
शाहबाजगढ़ी	अयं	ध्रमलिपि	देवन	प्रिअस	प्रियद्रशिस	राजों	लिखपितु
गिरनार	इयं	धम्मलिपि	देवानं	प्रियेन	प्रियदसिना	राजा	लेखापिता
कालसी	इयं	धम्मलिपि	देवानं	पियेना	पियदसिना		लेखिता
जागड़	इयं	धम्मलिपि	देवानं	पियेन		लाजिना	लिखापिता
हिन्दी	यह	धर्मलेख	देवताओं के	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा ने	लिखवाया

उपर्युक्त पाठों में विभिन्नता स्पष्ट दिखाई देती हैं। निष्कर्ष रूप में कुछ ध्वनियों का परिवर्तन देखा जा सकता है :—

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने प्राकृत विमर्श में निम्नलिखित टिप्पणियाँ दी हैं :—

१. प्रियः—प्र० एक वचन पु० का० धौ० जो पूर्वी रूपों में अः > ए मिलता है।
२. राजा—प्र० एकवचन पु० पूर्वी रूपों में र > ल का प्रयोग हुआ है।
३. एवं ए > ह यह रूप संभवतः प्रकीर्ण लेख की अशुद्धि के कारण मिलता है। [मेरा मत है कि ह्-श्रुति का रूप भी आदि स्थिति में बहुधा स्वरों के साथ मिलता है]।
४. आह रूप अन्य रूपों में आहा प्रकीर्ण लेख की अशुद्धि के कारण।
५. प्रियदर्शी-द्रशि > दर्शी खरोष्ठी लिपि दोष के कारण 'र' व्यंजन का विपर्यय।
६. आह > अह—दीर्घ स्वर के अभाव के कारण।

	'र'	'ऋ'	श-ष-स	ण	ञ
शाहबाजगढ़ी	र	रु	श-ष-स	ण	ञ
गिरनार	र	अ	श-ष-स	ण	ञ
कालसी	ल	इ	स	—	—
जौगड़	ल	इ	स	—	—

उदाहरणार्थ एक व्यंजन-गुच्छ 'स्थ' लिया जा सकता है :—

संस्कृत	स्थितिका
शाहबाजगढ़	थितिक
गिरनार	तस्टेय
कालसी	ठितिक्या
जौगड़	ठितिक्या

एक क्रिया रूप 'भवतु' के रूप देखिए :—

शाहबाजगढ़ी	भोतु
गिरनार	होतु
कालसी	होतु
जौगड़	होतु

ह-रूप की प्रधानता है जिसके फलस्वरूप आज भी हिन्दी की अनेक बोलियों में 'भू' धातु के हो—वाले रूप ही अधिक चलते हैं, फिर भी ब्रज आदि में 'भयो' जैसे रूप भी हमको शाहबाजगढ़ी के शिलालेख की याद दिला देते हैं। ब्रजभाषा में 'र' के स्थान पर 'ल', 'ऋ' के स्थान पर 'इ', सर्वत्र 'स' का प्रयोग, स्थान के लिए वर्तमान शब्द 'ठिया' रूप क्रिया के ह—प्रधान रूप उसकी कालसी के शिलालेख से साम्य दिखाते हुए मध्यदेशीय भाषा को स्वीकृति पर छाप लगा देते हैं।

पालि

पालि बौद्ध धर्म की साहित्यिक जनभाषा थी। वास्तव में पालि में जनबोली और साहित्यिक रूप का मिश्रण है। साहित्यिक प्राकृतों में पालि अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। पालि का प्रारम्भिक अर्थ 'पंक्ति' ही विशेष अर्थ में बाद में प्रचलित हो गया। इसका समय निर्धारण विद्वानों ने ५०० ई० पू० से १ ई० पू० तक किया है। पालि भाषा का साहित्य अत्यन्त विस्तृत है जिसमें त्रिपिटक अपनी एक विशेष सत्ता रखते हैं। यह बौद्धों के मूल धर्म ग्रन्थ हैं। ऐसा माना जाता है कि 'पालि'

शब्द पहले मूल ग्रन्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ इसके बाद कालक्रम से मूल ग्रन्थ की भाषा का द्योतन करने लगा। इस प्रकार पालि जिसका अर्थ प्रारम्भ में पंक्ति था तत्पश्चात् ग्रन्थ मात्र के लिए प्रचलित हुआ अन्ततः भाषा के नाम से विख्यात हो गया। ध्वनि तथा व्याकरण की दृष्टि से पालि ही मूल भारतीय आर्य भाषा के गठन को सुरक्षित रक्खे हुये हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्राकृत भाषाओं में सबसे प्राचीन हैं। डॉ० तारापुरवाला के आधुनिक भारतीय भाषाओं में सिंहली ही इसका विकसित रूप है। पालि ग्रन्थ भारत से ही सिंहल गये।

पालि को सिंहल द्वीपी लोग 'मागधी' कहते हैं। पालि के ग्रन्थों में भाषा के लिए मागधी शब्द का प्रयोग हुआ है और पालि की टीका से भिन्न मूल पाठ के अर्थ में। डॉ० श्यामसुन्दर दास मगध प्रदेश की भाषा को पालि मानते थे। डॉ० बाबूराम सक्सेना[1] के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि 'प्राकृतों' के तुलनात्मक अध्ययन से यह पश्चिमी प्रदेश (मध्यदेश) की भाषा सिद्ध होती है और ऐसा समझा जाता है कि बुद्ध भगवान् किसी प्राच्य भाषा में उपदेश दिया होगा तथापि उनके निर्वाण के सौ दो सौ साल बाद समस्त ग्रन्थों का अनुवाद ऐसी मध्यदेशीय भाषा में हुआ जो संस्कृत के समकक्ष स्टैंडर्ड हो चुकी थी। गठन में पालि बुद्धकालीन नहीं ठहरती, काफी अर्वाचीन (ई० पू० तीसरी शताब्दी) जान पड़ती है डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा आदि सभी विद्वानों ने एकमत से पालि को मध्यदेशीय भाषा माना है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी[2] पालि को मध्यदेशीय भाषा प्रमाणित करते हुए लिखते हैं, प्राचीन भारत में बुद्धवचन के कम-से-कम तीन अनुवाद हुए थे, एक पालि में, दूसरा बौद्ध संस्कृत में और तीसरा उदीच्य या उत्तर-पश्चिम भारत में प्रचलित प्राकृत में। जिस प्राकृत को हम 'गांधारी' प्राकृत कह सकते हैं। इन तीनों के अतिरिक्त प्राच्य भाषा में लिखा हुआ मूल बुद्धवचन या बौद्धशास्त्र तो था ही। उदीच्य की बोली में लिखी गई बुद्धवचन की पुस्तकें न केवल आजकल के पंजाब, कश्मीर और सीमान्त प्रदेश में चालू थीं पर उन प्रान्तों से सब मध्य एशिया में भी फैल गई थीं, जहाँ उदीच्य के लोग भारतवर्ष से आर्य संस्कृति तथा भाषा लेकर कुस्तन (खेतान) आदि नगर बनाकर बस गये थे। मध्य एशिया के खंडहरों में से इस उदीच्य प्राकृत में लिखे हुये बौद्धशास्त्र ग्रन्थों के अंश मिले हैं। उनसे इस लुप्त साहित्य की सूचना मिली है। संस्कृत में अनुवाद किये बौद्धशास्त्रों का बहुत अंश नेपाल के बौद्धों ने बड़े ही यत्न से सुरक्षित किया है।....पालि भाषा में जो अनुवाद हुआ था

---

१. डॉ० बाबूराम सक्सेना—सामान्य भाषा विज्ञान, १९५६, पृष्ठ ३११।

२. डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी—शोरसेनी भाषा की प्राचीन परम्परा, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ७८।

वह सिंहल के बौद्ध भिक्षुओं द्वारा अब तक सुरक्षित होकर चला आया है।...... जहाँ तक हमें पता चला है हमारा विचार यह है कि यह अनुवाद मध्यदेश की प्राकृत बोलने वाले बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा प्रस्तुत किया गया था। महाराज अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा का जन्म मालव देश के एक प्रधान नगर विदिशा में हुआ था।.......वहाँ की बोली मध्यदेश की ही प्राकृत थी, इनकी अपनी भाषा बनी। अपने पिता अशोक की घरेलू बोली उनसे दूर रहने के कारण इनकी बोली नहीं हो सकी। बुद्धवचन इन्होंने इसी मध्यदेशी की भाषा में ही लिये और जब बाद में अशोक ने धर्म प्रचार के लिये अपनी पुत्री और पुत्र को लंका द्वीप भेजा तब ये जो बुद्धशास्त्र वहाँ से साथ लाये वह मध्यदेशीय प्राकृत ही में लिखा हुआ था। पिछले समय उनका नाम बना पालि। पर सिंहल के भिक्षुओं का उत्तर भारत की भाषा विषयक हालत से कुछ भी परिचय नहीं था। वे जानते थे कि बुद्धदेव मगध के और प्रान्तीय मागधी प्राकृत में उपदेश दिया करते थे और मगध से मौर्य सम्राट् के द्वारा प्रेषित होकर मगध ही से शास्त्र लेकर जब राजघराने के प्रचारक आये तो उनके लाये हुये शास्त्र की भाषा मागधी के सिवा और हो ही क्या सकती थी? यों तो गलती से सिंहल के पालिशास्त्र की भाषा का 'मागधी' नाम हुआ, पर प्राकृत भाषा तत्व की एक साधारण बात यह है कि पालि का मेलजोल उस मागधी प्राकृत से बिल्कुल नहीं है जिस मागधी प्राकृत के व्याकरण तथा कुछ निदर्शन मिला है। इसका सादृश पुरानी शौरसनी 'प्राकृत' ही से है। अतः हम कह सकते हैं कि बौद्ध साहित्य की एक प्रौढ़ भाषा **पालि मध्यदेश की प्राकृत शौरसेनी के प्राचीन रूप पर ही आधारित है।**

पालि की अपनी कुछ निजी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि इसका विकास उत्तरकालीन संस्कृत की अपेक्षा वैदिककालीन संस्कृत और तत्कालीन बोलियों से मानना अधिक समीचीन होगा।

(१) मध्य भारतीय आर्य भाषा की प्रारम्भिक काल की सभी प्रवृत्तियाँ पालि में पूर्णतया सुरक्षित हैं। स्वरों की संख्या १० है, ऋ, ॠ और लृ को तो पूर्णतया निष्कासित कर दिया गया था। 'ऋ' का विकास 'अ', 'इ' तथा 'उ' तीनों स्वरों में हुआ है :—

कृषि—कसि
दृष्ट—दिट्ठ
भृश—भुस

(२) 'ऐ' और 'औ' क्रमशः 'ए' और 'ओ' में परिवर्तित हो गये ह्रस्व ए तथा ओ का विकास भी हुआ।

चैत्यगिरि—चैतियगिरि
औषध—ओषध

(३) व्यंजनों की संख्या में भी 'श' और 'ष' का लोप हो गया और केवल उष्म ध्वनि 'स' शेष रह गई। विसर्गों का लोप हो गया। संस्कृत की ४८ ध्वनियों में से ८ ध्वनियाँ समाप्त हो गईं।

(४) संयुक्त व्यंजनों का प्रभाव समाप्त होकर दित्य की प्रवृत्ति बढ़ी :—

नृत्य—नच्च

(५) सरलीकरण की प्रवृत्ति :—त्याग—चाग

भार्या—भरिया

(६) वैदिक व्यंजन 'ल' और 'ल्ह' चलते रहे।

(७) संगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर बलात्मक स्वराघात मिलता है।

(८) द्विवचन का लोप पालि की प्रमुख विशेषता है साथ ही पदों में अनेक-रूपता के स्थान पर एकरूपता।

मध्यकालीन प्राकृत

मध्यकालीन प्राकृत के अन्तर्गत अनेक प्रकार की प्राकृतें द्वितीय प्राकृत की संज्ञा ही प्राकृत से दी जाती है। संस्कृत आदि भाषाएँ प्राकृत रूप के आधार पर विकसित हुई और मूल भाषा प्राकृत थी। भाषा विकास की दृष्टि से संकुचित अर्थ में द्वितीय प्राकृत ही से प्राकृत का बोध होता है। और भी अधिक संकुचित अर्थ में मध्यकालीन प्राकृतों—महाराष्ट्रीय, शौरसेनी आदि की गणना ही साहित्यिक प्राकृतों में होती है।

प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण

प्राकृत कितने प्रकार की थी, यह विवादास्पद प्रश्न है। प्रारम्भिक प्राकृत के अन्तर्गत पालि और शिलालेखी प्राकृत को स्वीकार किया गया है। प्राकृतों को धार्मिक तथा साहित्यिक दो भागों में विभक्त किया गया है। धार्मिक प्राकृतों के अन्तर्गत बौद्ध ग्रन्थों की 'पालि' प्राचीन जैन सूत्रों की अर्धमागधी (आर्ष) की गणना की गई है।

मार्कण्डेय ने प्राकृत भाषाओं को चार प्रकार से माना है—

१. भाषा	२. विभाषा	३. अपभ्रंश	४. पैशाच
|	(२७)	(३)	(११)

११. महाराष्ट्री, १२. शौरसेनी, १३. प्राच्या, १४. अवन्ती और १५. मागधी

प्राचीनतम—

वररुचि ४ प्रकार महाराष्ट्रीय, शौरसेनी······मागधी, पैशाची।

हेमचन्द्र ६ प्रकार महाराष्ट्रीय, शौरसेनी····मागधी, पैशाचिक, चूलिका, आर्ष

दण्डी ने काव्यादर्श १/३४ महाराष्ट्री को श्रेष्ठ बताया है।

महाराष्ट्रश्रयां भाषाम् प्रकृष्टम् प्राकृतं विदुः ।

ऐसा माना जाता है कि महाराष्ट्री वह भाषा है जो दूसरी प्राकृत भाषाओं का आधार है । प्राकृत के व्याकरण में वररुचि का व्याकरण सबसे प्राचीन है । उसने नौ अध्याय और ४२४ सूत्र में महाराष्ट्रवादी का व्याकरण दिया तथा उसने जो अन्य तीन प्राकृत भाषाओं के व्याकरण दिये हैं उनके नियम एक एक अध्याय में १४, १७ और ३८ क्रमशः नियम देकर समाप्त किया । अन्त में उसने यह लिखा है कि जिन-जिन प्राकृतों के विषय में जो बात विशेष रूप से न कही गई वह महाराष्ट्री के समान ही मानी जानी चाहिए ।

शेषम् महाराष्ट्रीवत् ।

वररुचि ने अपभ्रंश प्राकृत प्रकाश में 'अपभ्रंश' का उल्लेख नहीं किया गया । इसी आधार पर लेसेन महोदय अपभ्रंश वररुचि से पूर्व मानते हैं । यह कोई आधार नहीं ।

काव्यालंकार में—

प्राकृतम् संस्कृतम् चैतद अपभ्रंश इति त्रिधा ।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीन वर्तमान रूप माने हैं ।

'महाराष्ट्री' शब्द भ्रमात्मक है । आधुनिक मराठी भाषा का महाराष्ट्री से कोई सम्बन्ध नहीं है । कई पण्डितों ने व्यर्थ ही दोनों को एक ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । यह मराठी तो उस समय की स्टैंडर्ड प्राकृत थी, जिसकी उसने प्रारम्भ में चर्चा की, पर कोई नाम नहीं दिया । अन्त में महाराष्ट्रीवत् से उसको महाराष्ट्री समझा गया । मागधी मगध और बंगाल की भाषाओं के प्राचीन रूप को सुरक्षित रखे हैं । पैशाची के सम्बन्ध में भी विवाद चल रहे हैं । शौरसैनी और महाराष्ट्री में काफी समानता है । इसी आधार पर हॉर्नले ने यहाँ तक कह दिया कि ये दोनों भिन्न प्राकृत नहीं, एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं ।

प्राचीन प्राकृत भाषाओं की विशेषताएँ

स्वर-स्वरों में 'ऋ' ऌ ॡ का सर्वथा लोप हो गया है । 'ऋ' का कभी 'रि' रूप अवशिष्ट मिलता है जैसे रिसि (सं० ऋषि) रिच्छ (सं० ऋक्ष), रिण (सं० ऋण) सरिस का सदृश आदि में । लेकिन बहुधा इसके स्थान पर 'अ' अथवा 'इ' हो गया है ।

---

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, सन् १९४८, पृष्ठ १७ ।

२. डॉ० हरदेव बाहरी, प्राकृत और उसका साहित्य, प्रथम सं०, पृष्ठ १४-१५ ।

'अ' पश्चिमी प्राकृत में और पश्चिमोत्तरी प्राकृत में। उदाहरण में—णच्च (सं० नृत्य, हि० नाच) तण (हि० तनुका) और तिण (हि० तिनका) दोनों सं० तृण से, माइ (सं० मातृ), कीइस (सं० कीदृश), घिणा (सं० घृणा), गिद्ध (सं० गृध्र)।

किन्हीं अवस्थाओं में 'ऋ' का (उ) भी हुआ है—

जैसे—बुत्तन्त (सं० वृतान्त) बुड (सं० वृद्ध) पाउस (सं० प्रावृश) उउ (सं० ऋतु में)।

प्राय: ह्रस्व स्वर सुरक्षित रहे हैं—

जैसे—अंग (सं० अंग), अक्खि (सं० अक्षि), अग्गि (सं० अग्नि), इक्खु (सं० इक्षु), उग्गार (सं० उद्गार), उच्छाह (सं० उत्साह), उम्मुक्क (सं० उन्मुक्त) में।

स्वराघात के अभाव में दीर्घ स्वर ह्रस्व हो गये हैं—

उदाहरण—सीयं (सं० सीताम्), अवमग्ग (सं० अवमार्ग), जिअंती (सं० जीवन्ती)।

लेकिन जहाँ स्वराघात सुरक्षित रहा है वहाँ दीर्घ स्वर भी बना रहा है—

जैसे—डाइणी (सं० डाकिनी) दूर (सं० दूर) पीढ़िया (सं० पीठिका) मूसय (सं० मूषक) में।

ऐ की जगह 'ए' अथवा 'अ इ' और 'औ' की जगह अथवा 'अ उ' हो गया है—

जैसे—सेल (सं० शैल), दइव (सं० दैव), जोव्वन (सं० यौवन) गउज (सं० गौढ़) आदि में।

कुछ शब्दों में स्वरों का विलक्षण परिवर्तन हो गया है—

जैसे—सेज्जा (सं० शैया), गेज्झ (सं० ग्राह), तोंड (सं० तुण्ड), णेउर (सं० नूपुर), गेन्दुअ (सं० कन्दुक) आदि।

परन्तु ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है।

प्राकृत में विसर्ग का प्रयोग नहीं होता। प्राय: इसकी जगह ओ हो आ जाता है—

जैसे—वच्छो (सं० वृक्ष) जिणो (सं० जिन:) में।

उदाहरणार्थ हम एक बहुप्रचलित शब्द ले सकते हैं। लूडंरज़ ने इसके विभिन्न रूपों को इस प्रकार दिया है :—

दक्षिण में—दुहुतय

अर्द्ध मागधी—धूया

उत्तरकालीन महाराष्ट्री—धूम्रा
उत्तरी अभिलेखों में—धिता
पालि—धीता
शौरसेनी में—दुहिता—धीदा
वैदिक—धिता (ब्रज भाषा में 'धिम्रा')

निया प्राकृत

चीनी तुर्किस्तान में स्टेन महोदय ने ई० पू० तीसरी शताब्दी के कई खरोष्ठी लेखों का अनुसंधान किया था। निया प्रदेश से सभी शिलालेख उपलब्ध हुये अतएव इनका नाम 'निया प्राकृत' रक्खा गया। निया प्राकृत का मूल स्थान भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश-पेशावर के आस-पास माना गया है। इन लेखों में राजा की ओर से जिलाधीशों को आदेश, क्रय-विक्रय सम्बन्धी पत्र, निजी पत्र तथा अनेक प्रकार की सूचियाँ उपलब्ध हैं। इस प्राकृत पर ईरानी, तौखारी और मंगोली भापाओं का पर्याप्त प्रभाव मिलता है।

प्रमुख विशेषताएँ—(१) खरोष्ठी लिपि होने के कारण इसमें दीर्घ स्वरों के स्थान पर ह्रस्व स्वर एवं व्यंजनों के संयुक्त रूपों में से केवल एक व्यंजन का प्रयोग।

(२) 'ऋ' का प्रायः 'रि' है—क्रित। कृत, कहीं-कहीं अन्य प्राकृतों की तरह 'अ', 'इ', 'उ' का प्रयोग भी हुआ है।

(३) 'ए' प्रायः 'इ' हो गया है क्षेत्र=छित्र, तेन=तिन।

(४) तीनों 'श', 'ष', 'स' ऊष्म व्यंजन सुरक्षित रहे पर अधिकांश प्रयोग 'स' व्यंजन का ही मिलता है।

(५) पदान्त 'अ' के स्थान पर 'ओ', जैसे पण्डितः= पनितु, पनितो।

अन्य प्राकृत तथा शौरसैनी का महत्व

रूपकों में प्रयुक्त होने के कारण तथा महाकाव्यों में लिये जाने के कारण प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री का स्थान सबसे ऊँचा था। सामान्य रूप से शौरसैनी प्राकृत का प्रयोग गद्य के लिए होता था और महाराष्ट्री का पद्य में। परवर्ती काल में जैन महाराष्ट्री प्राकृत का ही प्रयोग गद्य-पद्य दोनों के लिए करने लगे फिर भी जैनों द्वारा गद्य में प्रयुक्त महाराष्ट्री में शौरसैनी के रूपों की विद्यमानता से इस बात का संकेत मिलता है कि गद्य में महाराष्ट्री का प्रवेश निश्चित रूप से बाद का है।

महाराष्ट्री की अपेक्षा शौरसैनी संस्कृत के साथ समीप का सम्बन्ध रखती है। संभवत: इसका कारण ही रहा है कि शौरसैनी का उद्भव और विकास संस्कृत से प्रभावित क्षेत्र में हुआ। रूपकों में उच्चकोटि के पात्र शौरसैनी तथा निम्नकोटि के पात्र मागधी का प्रयोग करते हैं।

डॉ० चटर्जी का भी मत है कि ईसा के आसपास की शतियों में जितनी प्राकृत या आर्य लोकभाषाएँ उत्तर भारत में चालू थीं, उनमें शौरसेनी प्राकृत यानी मध्यदेश के अन्तर्गत शूरसेन या ब्रजमंडल की प्राकृत सब प्राकृतों में उन्नत, शिष्ट या भद्र मानी जाती थी। जहाँ नाटकों के पात्रों को अपने अभिजात्य के कारण संस्कृत में ही बोलना चाहिए था वहाँ नारी या शिशु होने के कारण जिनमें संस्कृत बोली नहीं जाती थी, वे सहज रूप में शौरसैनी प्राकृत ही बोलते थे।

कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है कि नाट्यशास्त्र में तृतीय ई० में नाट्य से सम्बन्ध रखने वाली अनेक विभाषाओं को गिनाया गया है उनमें दाक्षिणत्या प्राच्या, आवन्ती और ढाक्की, भाटाक्की **केवल शौरसेनी के भेद हैं** जबकि चाण्डाली, और शाकारी मागधी के उपभेद हैं। रूपकों में पैशाची का कोई स्थान नहीं। चिरकाल तक महाराष्ट्री रूपकों से निष्कासित ही रही। इससे प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत अधिक पीछे के काल में ही महाराष्ट्री को प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। लूडर्ज़ ने नाटक में प्रयुक्त होने वाली प्राकृतों के तीन रूप दिये हैं।

	प्राकृत	पात्र
१.	प्राचीन मागधी	दुष्ट
२.	प्राचीन शौरसैनी	गणिका और विदूषक
३.	प्राचीन अर्द्धमागधी	गोमस-तापस

नाट्यशास्त्र में नाटकों के पात्रों को यह आज्ञा दी गई है कि नाटकों की भाषा शौरसैनी के साथ-साथ अपनी इच्छा के अनुसार वे अन्य कोई भी प्रान्तीय भाषा काम में लायें—

शौरसैनम् समाश्रित्य भाषा कार्या तु नाटके।

प्राकृत तथा संस्कृत (वैदिक तथा लौकिक)

प्राकृतों के संस्कृत के सम्बन्ध में प्राकृत-व्याकरण के महापण्डित पिशेल[1] का मत द्रष्टव्य है :—

---

१. पिशेल—प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ८—९।

सब प्राकृत भाषाओं का वैदिक व्याकरण और शब्दों का नाना स्थलों में साम्य है और ये बातें संस्कृत में नहीं पाई जातीं। ऐसे स्थल निम्नलिखित हैं—संधि के नियम बिलकुल भिन्न हैं। स्वरों के बीच ड और ढ का 'ल' और ल्ह हो जाता है—त्तण का वैदिक रूप—त्वन होता है, स्वर भक्ति, स्त्रीलिंग का षष्ठी एकवचन का रूप—आए होता है, जो वैदिक—आये से निकला है। तृतीया बहुवचन का रूप—एहिं वैदिक—एभि: से निकला है। आज्ञावाचक होहि—वैदिक बोधि है। ता, जा, एत्थ—वैदिक तात्, यात् इत्थ, कर्मणि ते, मे वैदिक हैं, अम्हे—वैदिक अस्मे के, पाकृत पासो। आंख—वैदिक वश् के, अर्ध मागधी वग्गूहिं—वैदिक वग्नुभि:, सद्धि—वैदिक सध्रीम् के, अपभ्रंश दिवे दिवे—वैदिक दिवे दिवे हैं जैन शौरसैनी और अपभ्रंश 'किध' अर्धमागधी और अपभ्रंश किह—वैदिक कथा है। आदि अनेक कारण हैं जिनसे केवल एक बात यह सिद्ध होती है कि प्राकृत का मूल संस्कृत को बताना संभव नहीं है और भ्रमपूर्ण है।

प्राकृत पालि और आधुनिक भाषाए

जितना अधिक सम्बन्ध प्राकृत भाषाओं का वैदिक संस्कृत से है उतना ही आधुनिक भाषाओं से है। एक प्रकार से संस्कृत और आधुनिक भाषाओं के मध्य प्राकृत भाषाएँ एक कड़ी के रूप में हैं। शिलालेखों और स्तम्भों आदि की भाषा वस्तुत: 'लेण' बोली है। 'लेण' का अर्थ है गुफा। सं० यष्टि—प्राकृत लट्ठी—आधुनिक लाट आज भी चलता है। पतंजलि तक ने अपने महाभाष्य में कुछ शब्दों के कई अशुद्ध रूप दिये हैं, जिसका उल्लेख हम पीछे भी कर चुके हैं। पतंजलि ने इनको ही अपभ्रंश कहा है—जैसे

गौ—गावी, गौणी, गोता, गोपोतालिका। प्राकृतों में 'गावी' रूप भी चलता है। जैन महाराष्ट्री में गौणी रूप चलता है।

पालि के अनेक शब्द आज भी हिन्दी में उसी रूप में चल रहे हैं :—

संस्कृत रूप	पालि रूप	आधुनिक प्रचलित रूप
स्थितोऽसि	ठितोसी	ठड़ो, ठाड़ो है। (ब्रज०)
भवतु	होतु	हो
सुष्ठु	सुट्ठु	सुट्ठा
मुद्गा:	मुग्गा	मूंग।२।
लङ्घित्वा	लंघित्वा	लांघना
स्नापयित्वा	नहापेत्वा	नहाना, नहान, नहाकर
यूयं	तुम्हें	तुम
पर्यङ्केन	पल्लंकेन	पलंग

महाराष्ट्री

प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वोत्तम है। वैयाकरणों ने इसको आदर्श प्राकृत स्वीकार किया है। महाराष्ट्री[1] को आधुनिक 'महाराष्ट्र तथा मराठी तक सीमित न करना चाहिए' इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। महाराष्ट्री वस्तुत: तत्कालीन देश की महाराष्ट्र भाषा थी। महाराष्ट्री प्राकृत में संस्कृत शब्दों के व्यंजन इतने अधिक निकाल दिये गये हैं कि प्राकृत का एक शब्द संस्कृत के अनेक शब्दों का अर्थ व्यंजित करता है :—

प्राकृत	संस्कृत
कइ	=कति, कपि, कवि, कृति
काअ	=काक, काम, काय

प्राकृतों की इस प्रवृत्ति के कारण ही बीम्स ने प्राकृतों को पुंसत्वहीन भाषा कहा है। गीतों के प्रयोग में आने वाली भाषा श्रुतिमधुर[2] होनी चाहिए अतएव

---

१. इस सम्बन्ध में पिशेल के 'प्राकृत भाषाओं के व्याकरण के अनुवादक डॉ० हेमचन्द्र जोशी ने पृष्ठ ७ पर एक टिप्पणी दी है' जो प्राकृत, महाराष्ट्री नाम से है वह सारे महाराष्ट्र में गाथाओं के काम में लाई जाती थी। भले ही लेखक कश्मीर का हो या दक्षिण का, गाथाओं में काम में यह प्राकृत लाता था। इसलिए महाराष्ट्री को महाराष्ट्र तक सीमित रखना या समझना कि महाराष्ट्र की जनता या साहित्यिकों की बोली रही होगी भ्रामक है। महाराष्ट्र का पुराना नाम 'महरवाडा' था जिसका रूप आज भी मराठा है। इसकी स्थानीय बोली भिन्न थी जो कई स्थानीय प्रयोग के मराठी शब्दों से आज भी प्रमाणित होती है। मराठी में जो आँख को डोला, कमरे को खोली, निचले भाग को खाली कहते हैं वे शब्द मराठी देशी प्राकृत के हैं, जिसे यहाँ पिशेल ने देशी अपभ्रंश कहा है।'

२. इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है—

ललिए महुरक्खरए जुवई-यण-वल्लहे स-सिंगारे।
संते पाइव-कव्वे को सक्कइ सक्कयं पढिउं २॥

जयवल्लभ: वज्जालग्ग

जब ललित, मधुर, युवतियों का प्रिय तथा शृंगार-रसपूर्ण प्राकृत काव्य उपलब्ध है तो संस्कृत कौन पढ़े।

परुसो सक्कअ-बन्धो पाउअ-बन्धोवि होइ सुउमारो।
पुरिस-महिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं॥

राजशेखर—कर्पूरमंजरी

संस्कृत भाषा कर्कश और प्राकृत भाषा सुकुमार होती है। पुरुष और स्त्री में जो अन्तर है, उतना ही इन दो भाषाओं में है।

व्यंजनों को हटाकर लालित्य लाया गया। नाटक के पात्र प्राय: शौरसेनी में बोलते हैं पर गाते समय महाराष्ट्री का प्रयोग करते हैं। गाथा प्राकृत में गाहा, गीतकार—गीदअम्, गीतका—गीजिआ बन गये।

महाराष्ट्री प्राकृत का ज्ञान करने के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण पुस्तक 'हाल की सत्तसई' है। सत्तसई को देखने से पता चलता है कि महाराष्ट्री प्राकृत में बहुत ही अधिक समृद्ध साहित्य रचा गया होगा।

प्राकृत में समृद्ध साहित्य की परम्परा में श्वेताम्बरी जैन जयवल्लभ का 'वज्जालग' है। महाराष्ट्री प्राकृत में दो महाकाव्य भी प्रकाशित हुए :—

(१) रावणवह—दहमुहवहो।
(२) गड्डवहो।

महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख विशेषताएँ

(१) स्वरमध्यग अल्पप्राण स्पर्श व्यंजनों का लोप। स्वरमध्यग क्, त्, प्, ग्, द्, ब् प्राय: लुप्त हो गये—

प्राकृत—पाउअ

(२) महाप्राण स्पर्श ख्, थ्, घ्, भ्, ध् के स्थान पर केवल प्राण ध्वनि 'ह्' शेष रह गई—

कथयति—कहेइ

(३) ऊष्म व्यंजन ध्वनि के स्थान पर 'ह्'

पाषण—पाहाण (यही आजकल 'पहाड़' रूप में है)

(४) अपादान एकवचन में 'अहि' प्रत्यय लगता है,

दूरात—दूराहि

(५) पूर्वकालिक क्रिया 'ऊण' प्रत्यय के योग से, जैसे,

सं० पृष्ट्वा—पुच्छिऊण

शौरसेनी प्राकृत

यह शूरसेन प्रदेश मथुरा के आसपास ही नहीं समस्त मध्यदेश की भाषा थी, गंगा-यमुना की घाटी इसका प्रमुख विस्तार क्षेत्र था। शौरसेनी प्राकृत में कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा गया इसका उल्लेख तो नहीं मिलता पर संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त गद्य भाषा शौरसेनी ही है। सामान्यत: नाटकों में प्राकृत बोलने वाले पात्र—स्त्री, विदूषक आदि शौरसेनी ही बोलते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में शौरसेनी

की ही विशेषता भरी हुई है। संस्कृत समीप रहने के कारण संस्कृत का निरन्तर प्रभाव पड़ता रहा।[1]

शौरसेनी प्राकृत की विशेषताएँ

(१) स्वरमध्यग त्, थ् क्रमशः द्, ध् हो जाते हैं—

आगतः>आवदो

कथयत्>कथेदुः

कृत>कद-किद

गच्छति>गच्छदि

यथा>जधा

(२) 'क्ष' का क्ख हो जाता है—

कुक्षि>कुक्खि [वर्तमान रूप कोख]

इक्षु>इक्खु [वर्तमान रूप ईख]

(३) संयुक्त व्यंजनों में दोनों को समाप्त कर नवीन वर्ण का आगम द्वित्व के साथ हो जाता है—

अद्य>आज्ज [वर्तमान रूप—आज]

(४) विधि प्रकार के रूप संस्कृत के समान है—

वर्तते>वट्टे

(५) 'य' के स्थान पर स्वर 'अ' का आ जाना—

गम्यति>गमीअदि

पुच्छ्यति>पुच्छीअदि

(६) 'त' के स्थान पर कहीं-कहीं 'ड'। व्यापृते डः, पुत्रे पि क्वचित्।

व्यापृत>बावुडो

पुत्रः>पुड्डो (वर्तमान ब्रज में पड्डा—भैंस का बच्चा)

(७) 'ऋ' का 'इ' स्वर में विकास—

गृध्र>गिद्ध

(८) 'ण', 'ज्ञ' तथा 'न्य' के स्थान पर 'ञ्ञ' हो जाता है।

विज्ञ>विञ्ञो

कन्यका>कञ्जका

---

१. वररुचि ने शौरसेनी का आधार संस्कृत माना है—प्रकृतिः संस्कृतम्। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अन्य प्राकृतों की अपेक्षा शौरसेनी संस्कृत से अधिक निकट और सम्बन्धित रही।

यज्ञ जञ्जो

ब्रह्मण्य बम्हञ्ञ

नोट—'ञ्ञ' के स्थान पर 'ण्ण' का प्रयोग भी मिलता है ।

(९) 'स्त्री' का 'इत्थी', इव, का 'विग्र', आश्चर्य का 'अच्छरिअ' हो जाता है ।

(१०) व्यंजनों के लोप के बाद स्वरों मात्र का रह जाना—

हृदयं>हिअअं (वर्तमान रूप हिआ)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राकृतों में मथुरा में मुख्य केन्द्र वाली शौरसेनी प्राकृत सबसे अधिक सौष्ठव एवं लालित्यपूर्ण प्राकृत या पश्चमध्ययुगीन आर्य भाषा सिद्ध हुई । डा० चटर्जी के मत से शौरसेनी आधुनिक मथुरा की भाषा, हिन्दुस्तानी की बहन तथा विगतकाल की प्रतिस्पर्धिनी ब्रज भाषा का ही एक प्राचीन रूप थी । विशेषत: मध्यदेश-उदीच्य तथा पश्चिम की बोलियों को ही महत्वपूर्ण स्थान मिला है । डा० घोष के मतानुसार, महाराष्ट्री अपनी आद्यावस्था में शौरसेनी का ही एक पश्च रूप थी जो दक्षिण में ले जाया गया और वहाँ उसमें स्थानीय प्राकृत के शब्द और रूप आ जाने पर उसका वहाँ के साहित्य में उपयोग किया गया । दक्कन या महाराष्ट्र से इस भाषा को, काव्य के एक श्रेष्ठ माध्यम के रूप में उत्तरी भारत में पुन: लाया गया । इस दृष्टि से तो महाराष्ट्री प्राकृत, एक प्रकार से शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की एक अवस्था का ही नाम है ।

मध्यदेशीय भाषा का प्रभुत्व अविच्छिन्न रूप से ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के सारे काल में, और उससे पहले से भी, कायम रहा, अर्थात् पालि के रूप में । ईसा पूर्व की शतियों में शौरसेनी प्राकृत के रूप में, (ईसा की आरम्भिक शतियों में,) 'प्राकृत' या संकुचित अर्थ में तथाकथित 'महाराष्ट्री प्राकृत' के रूप में लगभग ४०० ई० सं० के आसपास । तथा शौरसेनी अपभ्रंश के रूप में (४०० ई० सं० से १००० ई०) तक के काल में । मध्यदेश वास्तव में भारत का हृदय एवं जीवन-संचालन का केन्द्र स्थान था । यहाँ के निवासियों के हाथ में, एक तरह से, अखिल भारतीय ब्राह्मणीय संस्कृति का प्राथमिक सूत्रपात था, तथा हिन्दू-जगत के पवित्रतम देश के रूप में मध्यदेश की महत्ता सर्वत्र सर्वमान्य थी ।[1]..............यो मध्ये मध्यदेशं विवसति, स कवि: सर्वभाषा निषण्शा: । जो मध्यदेश के मध्य में निवास करता है वह सारी भाषाओं का प्रतिष्ठित कवि है । राजशेखर का मत है ।

मागधी प्राकृत

मागधी मूलतः मगध की भाषा थी । इसका प्रयोग भी नाटकों में पर्याप्त

१. डॉ० सुनीत कुमार चाटुर्ज्या-आर्य भाषा और हिन्दी, सन् १९५७, पृष्ठ १०४ ।

हुआ है। जैन सम्प्रदाय की भाषा मागधी रही। विभिन्न विद्वानों ने इसको महाराष्ट्री शौरसेनी, पालि से सम्बन्धित माना है, लेकिन अब यह सिद्ध हो चुका है कि पालि मागधी से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह प्राच्यदेश की लोक भाषा होने के कारण अन्य लोक भाषाओं से वर्ण विकारों में आगे रही। संक्षेप में इसकी विशेषता[1] निम्न-लिखित हैं :

(१) 'र' के स्थान पर 'ल'
राजा>लाजा
पुरुष>पुलिशे

(२) 'स', 'ष' के स्थान पर भी 'श'
शुष्क>शुश्क
समर>शमल

(३) 'क्ष' के स्थान पर 'श्क'
पक्ष>पश्क

(४) 'ज' की जगह 'य'
जानाति>याणादि
जनपद>यणवद्
जायते>यायदे

(५) 'अ' में समाप्त होने वाले अथवा व्यंजनों में अन्त होने वाले ऐसे शब्दों का कर्त्ताकारक एक वचन जिनके व्यंजन 'अ' में समाप्त होते हैं, 'ए' में बदल जाते हैं :—
सः>से

लासन का विचार था मागधी प्राकृत और महाराष्ट्री एक ही भाषाएँ हैं। कोलबुक का मत था कि जैनों के शास्त्र मागधी प्राकृत में लिखे गये हैं और साथ ही उसका यह विचार था कि यह प्राकृत उस भाषा से विशेष—वैभिन्य नहीं रखती जिसका व्यवहार नाटककार अपने ग्रन्थों में करते हैं और जो बोली वे महिलाओं के मुख में रखते हैं। उसका यह भी मत था कि मागधी प्राकृत संस्कृत से निकली है और वैसी ही भाषा है जैसी कि सिंहल देश की पालि भाषा। इस प्रकार हम देखते हैं—

वैदिक संस्कृत—मध्यदेशीय भाषा—शौरसेनी प्राकृत तथा अपभ्रंश—ब्रजभाषा, खड़ी बोली हिन्दी।

---

१. वही, पृष्ठ १६०-१६१।

वैदिक संस्कृत—प्राच्य भाषा—मागधी प्राकृत और अपभ्रंश—भोजपुरी, मैथिल—मगही, असमिया, ओड़िया, बंगला।

वैदिक संस्कृत—दाक्षिणात्या भाषा—विदर्भ में प्रचलित प्राकृत और अपभ्रंश—मराठी।

अर्ध-मागधी

जैन ग्रन्थों में अर्ध-मागधी का उल्लेख मिलता है। इस भाषा में ही महावीर स्वामी ने उपदेश दिये और उसका परिचय देते हुए लिखा 'भगवम् च णम् अद्ध-मागही ए मासाये धम्मम् आइक्खइ·····' जैनों के अनुसार यही आदि भाषा है क्योंकि इसमें कहा गया है भगवान् यह धर्म (जैन) अर्द्ध-मागधी भाषा में प्रचारित करता है।

यह काशी-कौशल प्रदेश की भाषा थी। अर्द्ध-मागधी में और शौरसेनी तथा मागधी दोनों के लक्षण मिलते हैं। यही भाषा 'आर्षम्' अर्थात् ऋषियों की भाषा कहलाती है। अर्द्ध-मागधी वह भाषा है जिसे देवता बोलते हैं:—

आरिसवयणे सिद्धम् देवाणम् अद्ध मागहा वाणी।

एक लेखक के अनुसार तो प्राकृत वह भाषा है जिसे स्त्रियाँ, बच्चे आदि बिना कष्ट के समझ लेते हैं, इसलिए यह भाषा सब भाषाओं की जड़ है। बरसाती पानी की तरह प्रारम्भ में इसका एक ही रूप था, किन्तु नाना देशों में नाना जातियों में बोली जाने के कारण तथा नियमों में समय-समय सुधार चलते रहने से भाषा के रूप में भिन्नता आ गई। अर्द्ध-मागधी में गद्य और पद्य दोनों ही लिखे गये।

अर्द्ध-मागधी की विशेषताएँ

(१) 'र' और 'स' बने रहते हैं।[1]

(२) कर्त्ता कारक एक वचन में 'ओ' का 'ए' हो जाता है।

(३) 'ऋ' से समाप्त होने वाली धातु में अन्त में 'त' के स्थान' पर 'ड'।

मृत > मड

कृत > कड

(४) 'क' का 'ग' हो जाता है।

अहकं > हगे

(५) इति का ई हो जाना, उपसर्ग 'प्रति' से 'इ' का उड़ जाना।

(६) कम्म और धम्म का तृतीया का रूप—कम्मुणा और धम्मुणा होता है।

(७) 'स्म' के स्थान पर सं।

---

१. अर्द्ध-मागधी भाषा यस्याम् रसोर् लशौ मागध्याम् इत्यादिकं मागध-भाषा लक्षणं परिपूर्णं नास्ति।

लोकस्मिन्—लोकम्हिं—लोयंसि
तस्मिन्—तंसि

(८) स्वरमध्यग लुप्त स्पर्श व्यंजनों का स्थान 'य' ध्वनि ले लेती है।
सागर—सायर
स्थित—ठिय

अर्द्ध-मागधी, महाराष्ट्री और मागधी के मेल से बनी भाषा है—महाराष्ट्री मिश्रार्ध मागधी

इस दृष्टि से अर्द्ध-मागधी जैनियों की प्राचीन प्राकृतों का तीसरा भेद है। साहित्य दर्पण में ऐसा निर्देश आया है कि 'चेट', 'राजपुत्र' तथा श्रेष्ठियों (सेठों) के द्वारा अर्द्ध-मागधी बोली जाती थी।

पैशाची प्राकृत

पैशाची वस्तुतः किस प्रदेश की भाषा थी यह आज भी विवादास्पद है। इसमें कोई साहित्यिक रचना भी सुरक्षित नहीं है। गुणाढ्य की बृहत्कथा (वड्डकहा) का मूल पैशाची पाठ लुप्त हो गया। वररुचि, क्रमदीश्वर, सिंहदेवमणि आदि सभी वैयाकरणों ने इसका उल्लेख किया है। पैशाची के साथ-साथ पैशाचिक, पैशाचिका, 'भूत भाषा' नाम भी मिलते हैं। मार्कण्डेय ने तीन प्रकार की साहित्यिक पैशाचिक बोलियों को पिशाचक कहा है—कैकेय, शौरसैन और पांचाल :

कैकेयम् शौरसैनम् च पांचालम् इति च त्रिधा।

कैकय पैशाची भी संस्कृत भाषा पर आधारित है और शौरसेनी पैशाची शौरसैनी पर। पांचाल और शौरसेनी पैशाची में केवल एक भेद है कि 'र' के स्थान पर 'ल' हो जाता है।

कुछ लोगों के अनुसार पिशाच देशों में पैशाची बोली जाती है। यह पिशाच देश कौन-कौन से हैं—पाण्डय, कैकय, काह्लीक, सह्य, नेपाल, कुन्तल, गान्धार। सुदेश, भोट, हैव, कनौज। इससे यह सिद्ध होता है कि पैशाची प्राकृत की बोलियाँ भारत के उत्तर-पश्चिम में बोली जाती हैं। कुछ लोग पिशाच का अर्थ भूत भी करते हैं।

'पिशाचानाम् भाषा पैशाची' इसी कारण इसे भूतभाषा भी कहते हैं। पैशाच जनता का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है।

पैशाची की प्रमुख विशेषताएँ

(१) 'र' का 'ल' हो जाना, 'ष', 'स' का 'श' हो जाना।
'क्ष' का 'श्क', 'च्छ', 'श्च', 'स्थ' का श्त्, ष्ट् का श्ट हो जाता है।

(२) आकारान्त में प्रथमा एक और द्वितीया एकवचन की विभक्तियों का वैकल्पिक रूप से लोप हो जाता है।

(३) मध्यवर्ग बदल कर प्रथम वर्ग हो जाता है।

दामोदर>तामोतर
प्रवेश>पवेश
मेघ>मेख
नगर>नकर

(४) मूर्द्धन्य 'ष' बदलकर 'न' तथा इसके विपरीत 'ल' बदलकर 'ल' हो जाता है।

[टिप्पणी—३-४ विशेषताओं के आधार पर ही हार्नली इसको द्रविड़ से प्रभावित मानते हैं]।

मोटे तौर पर पैशाची कुछ ऐसे विशेष लक्षणों से युक्त और आत्म-निर्भर तथा स्वतन्त्र भाषा है कि वह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के साथ ही अलग भाषा मानी जा सकती है।

अन्य प्राकृत

पूर्व बंगाल में स्थित 'ढक्क' प्रदेश के नाम पर एक प्रकार की प्राकृत 'ढक्की' बोली जाती है। 'मृच्छकटिक' में जुआघर का मालिक जुआरी के साथ ढक्की प्राकृत में ही बोलता है। यह मागधी से मिलती जुलती रही होगी। इसमें 'लकार' का जोर है। तालव्य शकार और दन्त्य सकार का भी बाहुल्य है।

रुद्धः>लुद्ध
कुरु कुरु>कुलु कुलु
पुरुष>पुलिसो

मध्यकालीन प्राकृतों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि आधुनिक आर्य भाषाओं के अध्ययन के लिए इन प्राकृतों का विधिवत् अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। ब्रज और खड़ी बोली की वर्तमान शब्दावली की व्युत्पत्ति के लिए सीधे संस्कृत की ओर देखना नितान्त अनुपयुक्त है। हमको प्राकृतों में उनके पूर्व रूप खोजने चाहिए, उदाहरणार्थ हम कुछ शब्द ले सकते हैं।

मध्य सघोष तथा अघोष महाप्राण व्यंजन में केवल महाप्राणत्व रह गया—

१. ख—ह	२. घ—ह
मुख—मुह	मेघ—मेह
लिख—लिह	माघ—माह
सखी—सही	प्राघुण—पाहुण

३. थ—ह
नाथ—नाह
मिथुन—मिहुण
कथा—कहा

४. ध—ह
बधिर—बहिर
बधु—बहू
साधु—साहू

५. भ—ह
लाभ—लाह
सौभाग्य—सौहग्ग
शोभा—सोहा

मैं समझता हूँ कि अधिकांश प्राकृत शब्दावली आज भी उसी रूप में या कुछ बदले हुए रूप में प्रयुक्त होती है चाहे उसके साथ-साथ संस्कृत तत्सम शब्द भी क्यों न चलाये जा रहे हों।

इन समस्त प्राकृत बोलियों में जो बोलचाल की भाषाएँ व्यवहार में लाई जाती है उनमें सबसे प्रथम स्थान पिशेल महोदय ने शौरसैनी को ही प्रदान किया है। नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण, दशरूपक आदि सभी ग्रन्थों में महिलाओं, स्त्रियों, दासियों आदि की बातचीत के लिए शौरसेनी का ही निर्देश है। महाराष्ट्री तथा शौरसेनी के पारस्परिक सम्बन्ध की संभावनाओं पर विवेचन किया जा चुका है। हो सकता है साहित्यिक स्तर पर महाराष्ट्री की विशेष मान्यता हो, पर भाषा का बोलीगत स्वरूप ही भाषा का वास्तविक स्वरूप होता है और आगे आने वाली भाषाएँ उसी से विकसित होती हैं, साहित्यिक भाषाएँ पिटारी में बन्द रक्खी रहती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी (खड़ी तथा ब्रज) भाषा के विकास की दृष्टि से शौरसैनी प्राकृत का महत्व स्वयसिद्ध है। मृच्छकटिक की पृथ्वीधर की टीका में बताया है कि विदूषक तथा अन्य हंसोड़ व्यक्तियों को प्राच्या में वार्तालाप करना चाहिए। मार्कण्डेय ने प्राच्य को शौरसेनी के समान ही माना है—'प्राच्याः सिद्धिः शौरसेन्याः' हेमचन्द्र ने भी बतलाया है कि विदूषक शौरसेनी प्राकृत बोलचाल के व्यवहार में लाता है। वैयाकरणों ने इस प्राकृत पर कम प्रकाश डाला। वररुचि ने केवल २६ नियम दिये, हेमचन्द्र क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय आदि विद्वानों ने भी पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला। यह सब होते हुए भी शौरसैनी का महत्व कम नहीं होता। अभी तक यह अध्ययन शेष है कि समस्त नाटकों में उपलब्ध प्राकृतों (शौरसेनी) के अंशों को लेकर शौरसेनी प्राकृत का रूप पूर्णतया निश्चित किया जाय और उस काम को पूरा किया जाय जिसको तत्कालीन वैयाकरणों ने पूरा नहीं किया। शौरसेनी भाषा धातु और शब्द रूपावली तथा शब्द सम्पत्ति में संस्कृत के बहुत निकट है और महाराष्ट्री प्राकृत से बहुत दूर जा पड़ी है। हार्नले इसलिए शौरसेनी तथा महाराष्ट्री को दो पृथक भाषाएँ नहीं बल्कि एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते हैं एक का प्रयोग गद्य में होता है और दूसरी का पद्य में।

३.

अपभ्रंश-युग

मध्यभारतीय आर्यभाषा के विकास का तृतीय सोपान 'अपभ्रंश' काल है जिससे ही आधुनिक आर्य भाषाएँ विकसित हुई हैं। इस प्रकार हिन्दी (खड़ी, ब्रजादि) मराठी, गुजराती, बंगला, उड़ियादि भाषाओं तथा प्राकृतों के बीच की शृंखला 'अपभ्रंश' ही हैं जिसका महत्व स्वत: ही प्रतिपादित है।

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग

सर्वप्रथम महाभाष्यकार ने अपने ग्रन्थ में इस शब्द का प्रयोग किया—

'भूयांसोऽपशब्दाः अल्पीयांस शब्दा इति। एकैकास्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा: तद् यथा गौरित्यस्य शब्दस्य 'गावी', 'गौणी', 'गोता', 'गोपोतालिके' त्यादियो बहवोऽपभ्रंशा:।'

अपशब्द बहुत हैं, शब्द रूप अल्प हैं। एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं, जैसे 'गो' शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि।

इस उद्धरण में यह स्पष्ट है कि महाभाष्यकार पतंजलि ने 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग 'असाधु' शब्दों के लिए किया है। किसी भाषा विशेष के लिए नहीं। कुछ ग्रन्थों में 'अपभ्रष्ट' का प्रयोग भी मिलता है। 'अवहत्थ', 'अवहट्ठ',[1] 'अवहट',

---

१. ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने प्रथम बार वर्ण रत्नाकर में। १३२५ ई० में छः भाषाओं में अवहट्ठ को माना है—

'पुनु काइसन भाट-संस्कृत पराकृत अवहठ पैशाची शौरसेनी मागधी छहु भाषाक तत्वज्ञ।'

विद्यापति की कीर्तिलता में दूसरा प्रयोग—

देसिल वयना सबजन मिट्ठा।
तं तैसन जम्पजो अवहट्ठा॥

प्राकृत पैंगलम् के टीकाकार वंशीधर ने किया—

यया भाषया अयं ग्रन्थो रचितः सा अवहट्ठ भाषा।

'अवहट' आदि प्रयोग तो अपभ्रष्ट के ही विकसित रूप हैं।' अवब्भंस', 'अवहंस' आदि रूप अपभ्रंश के भी भ्रष्ट अथवा विकसित रूप हैं। भामह, दण्डी आदि आलंकारिकों ने भी भाषात्रयी में हमेशा अपभ्रंश को सम्मिलित किया है।

अपभ्रंश का शब्दार्थ विकृत, भ्रष्ट, अशुद्ध है वह जो अपने निश्चित रूप या स्थान से नीचे गिर गया हो। किसी आदर्श भाषा की वह शब्दावली जिसके रूप परिनिष्ठित हो चुके के इतर रूप ही अपभ्रंश कहलाते हैं। वैयाकरण ऐसे ही रूपों को गिरा हुआ, अशुद्ध, भ्रष्ट की संज्ञा देते हैं और भाषा-वैज्ञानिक इन रूपों के आधार पर ही भाषा का विकास देखता है। वैयाकरणों द्वारा प्रयुक्त ये अपभ्रंश शब्दावली लोक में प्रयुक्त होती थी इसमें सन्देह नहीं। पुष्पदन्त[१] तथा स्वयं[२] भू जैसे कवियों ने भी 'अवहंस' तथा 'अवहत्थ' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

प्राकृत तथा अपभ्रंश

जैसा कि प्राकृतों के अध्ययन में भी निर्देश किया गया है 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग प्राकृतों के नामों के साथ भी मिलता है। कोई इस प्रकार की सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती कि अमुक काल के बाद प्राकृतों में रचना समाप्त हो गई और अपभ्रंश ने उसका स्थान ले लिया। प्राकृतों के साथ-साथ अपभ्रंश चलती रही जैसे संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत, पालि आदि भाषाएँ चलती रहीं। प्राकृतों ने जब साहित्यिक रूप ले लिया तो जन-समाज द्वारा प्रयुक्त भाषा ही अपभ्रंश रही होगी। इस समस्या को डॉ० द्विवेदी[3] ने इस प्रकार सुलझाया है—'यह बात स्मरण रखने योग्य है कि यद्यपि प्राकृत में लिखे गये काव्यों के बाद ही अपभ्रंश भाषा में काव्य लिखे गये परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राकृत नाम की कोई भाषा पहले बोली थी और अपभ्रंश नाम की भाषा बाद में बोली जाने लगी। असल में अपभ्रंश लोक में प्रचलित भाषा का नाम है जो नानाकाल और नाना स्थान में नाना रूप में होती जाती थी और बोली जाती है। शुरू-शुरू में इसको आभीरों की भाषा जरूर माना जाता था, पर बाद में चलकर यह लोकभाषा का ही नामान्तर हो गया। वररुचि ने' प्राकृत प्रकाश में उस युग की भाषा के साहित्यिक रूप का वर्णन किया है। लोक प्रच-लित भाषा कुछ और ही थी। भाषाशास्त्रियों ने लक्ष्य किया है कि अपभ्रंश नामक

---

१. सक्कय पायउ पुणु अवहंसउ। सन्धि ५, कडवक १८। हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृष्ठ १।

२. 'अवहत्थे' वि खल-यणु णिरवसेसु। रामायण-१४, वही पृष्ठ २।

३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, सन् १६४८, पृष्ठ १७-१८।

उत्तरकालीन काव्य भाषा में ऐसे बहुत से प्रयोग पाये जाते हैं जो वास्तव में वररुचि के महाराष्ट्री और शौरसेनी के प्रयोगों की अपेक्षा प्राचीनतर हैं। उदाहरणार्थ 'कहा' (ब्रजभाषा 'कह्यो') प्रयोग उत्तरकालीन अपभ्रंश 'कहिउ' से निकला है। इसके अपभ्रंश और प्राकृत भेदों की तुलना की जा सकती है—

अपभ्रंश 'कधिदो' या 'कहिदो'—मागधी 'कधिदे' या 'कहिदे' महाराष्ट्री—कहिओ

और उत्तरकालीन अपभ्रंश 'कहिउ' स्पष्ट ही पुराने अपभ्रंश रूप 'कधिदो' और 'कहिदो' महाराष्ट्री रूपों से पुराने हैं।

'अपभ्रंश' का भाषा के अर्थ में प्रयोग

महाकवि कालिदास के विक्रमोवर्शीय नाटक में अपभ्रंश के कुछ अंश मिलते हैं पर अपभ्रंश का भाषाविशेष के अर्थ में प्रयोग छठी शताब्दी के आसपास से मिलता है। व्याकरणों में 'चण्ड' तथा आलंकारिकों में भामह,[१] दण्डी (१।३२) ने इसका प्रयोग किया है। वलभी के राजा धारसेन द्वितीय के ताम्रपत्र। अभिलेखों का समय ५५९-५६९ ई०। से भी इस भाषा के अस्तित्व का पता चलता है। इन सभी प्रमाणों से यह कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी में निश्चित रूप से 'अपभ्रंश' से 'भाषा' का बोध होता होगा। ९वीं शताब्दी में दण्डी से सहमति रखते हुए रुद्रट (२,१२) का मत है कि प्रदेशों के भेद से अपभ्रंश अनेक प्रकार का है। हेमचन्द्र ने अपभ्रंश व्याकरण लिखा था। यह इस तथ्य को सिद्ध करता है कि उनके समय तक बोलचाल की भाषा अपभ्रंश का छोड़ कुछ आगे बढ़ चुकी थी। इस प्रकार अपभ्रंश का समय निर्धारण ६०० ई० से १२०० ई० तक किया जा सकता है।

अपभ्रंश का भाषा रूप में विकास

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि मूल प्रथम प्राकृत जिससे विकसित संस्कृत जब बाँध दी गई तो जनप्रवाह मे बहती हुई भाषा की धारा ही कालान्तर में पालि-प्राकृत-अपभ्रंश के रूप में आयी। इस भाषा-गंगा का विराट् सांग रूपक साहित्यकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इस प्रकार दिया है—

'संस्कृत' आर्यों की मूल भाषा नहीं है। वह मजी, छटी, सुघरी भाषा है··· वह मानो गंगा की नहर है। राजघाट-नगौरा के बाँध से उसमें सारा जल खेंच लिया गया है, उसके किनारे सम हैं, किनारों पर हरियाली और वृक्ष हैं, प्रवाह -नियमित है। किन टेढ़े-मेढ़े किनारों वाली छोटी बड़ी पथरीली रेतीली नदियों का

---

२. शब्दार्थौ सहितो काव्यं गद्यपद्यं यद्विधा।
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ॥ १।१६

पानी मोड़कर यह अच्छोद नहर बनाई गई और उस समय के सनातन-भाषा प्रेमियों ने पुरानी नदियों का प्रवाह 'अविच्छिन्न' रखने के लिए कैसा कुछ आन्दोलन मचाया या नहीं मचाया यह हम जान नहीं सकते। सदा इस संस्कृत नहर को देखते-देखते हम असंस्कृत या स्वाभाविक, प्राकृतिक नदियों को भूल गये और फिर जब नहर का पानी आगे स्वच्छन्द होकर समतल और सूत से नपे हुए किनारों को छोड़कर जल स्वभाव से कहीं टेढ़ी कहीं गंदला, कहीं निखरा, कहीं पथरीली, कहीं रेतीली भूमि पर और कहीं पुराने सूखे भागों पर प्राकृतिक रीति से बहने लगा तब हम यह कहने लगे कि नहर से नदी बनी है, नहर प्रकृति है नदी विकृति यह नहीं कि नदी अब सुधारकों के पंजों से छूटकर फिर सनातन मार्ग पर आई है।...संस्कृत में छाना हुआ पानी हो—

(१) मूल भाषा, (२) छंदस की भाषा, (३) प्राकृत, (४) संस्कृत, (५) अपभ्रंश।

बाँध से बचे हुए पानी की धाराएँ मिलकर नदी का रूप धारण कर रही थीं। उनमें देशी की धाराएँ भी आकर मिलती गईं। देशी और कुछ नहीं, बाँध से बचा हुआ पानी या वह जो नदी मार्ग पर चला आया, बांध न गया। उसे भी कभी-कभी छानकर नहर में ले लिया जाता था। बाँध का जल भी रिसता-रिसता इधर मिलता आ रहा था। पानी बढ़ने से नदी की गति वेग से निम्नाभिमुखी हुई, उसका 'अपभ्रंश' नीचे को बिखरना (होने लगा) अब सूत से नपे किनारे और नियत गहराई नहीं रही।[१]

ब्राह्मण-गुरुकुलों में जिस प्रकार संस्कृत का रूप स्थिर हो जाने से प्राकृत में ग्रन्थ लिखे जाने लगे उसी प्रकार जब कई पीढ़ियों तक प्राकृत, साहित्यिक भाषा के रूप में अपरिवर्तित गति से चलती रही और वह स्थिर हो गई तो बोलचाल की जनभाषाएँ भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होती गईं।

अपभ्रंश का विस्तार

अपभ्रंश भाषा का विस्तार बहुत अधिक था वह अपने युग की एक महत्वपूर्ण भाषा के पद पर आसीन हुई। यही वह भाषा थी जो बंगाल से महाराष्ट्र तक स्वीकृत थी। उत्तरी भारत के प्रायः सभी कवियों द्वारा यह मान्य समझी गई।

---

१. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—पुरानी हिन्दी, सं० २००५, पृष्ठ १-४।

राजशेखर[1] ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्य मीमांसा (१०वीं शताब्दी) में अपभ्रंश का विस्तार क्षेत्र सम्पूर्ण मरुभूमि, टक्क और भादानक बताया है। मरुभूमि तो राजस्थान है ही, टक्क प्रदेश विपाशा और सिन्धु के बीच में माना गया। भादानक पर विशेष मतभेद है। भादानक भागलपुर के समीप 'भदरिया' भी हो सकता है अथवा पश्चिमोत्तर प्रदेश में कोई स्थान रहा होगा।

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन[2] हिन्दी काव्यधारा की भूमिका में लिखते हैं।

'जहाँ सरहपा और शबरपा बिहार-बंगाल के निवासी थे वहाँ अब्दुर्रहमान का जन्म मुल्तान में हुआ था। स्वयंभू और कनकाभर शायद अवधी और बुंदेली, क्षेत्र-युक्त-प्रान्त के थे, तो हेमचन्द्र और सोमप्रभ गुजरात के और रसिक तथा आश्रयदाता होने के कारण मान्यखेट (मालखण्ड) (निजाम हैदराबाद) का भी साहित्य के सृजन में हाथ रहा है। इस प्रकार हिमालय से गोदावरी और सिंध से ब्रह्मपुत्र तक ने इस साहित्य के निर्माण में हाथ बटाया।'

इससे सिद्ध होता है कि ११वीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रसार समस्त उत्तर भारत और दक्षिण तक हो गया था। अपभ्रंश इस विस्तृत प्रदेश की जनभाषा थी। यह तो एक विवादास्पद प्रश्न है। अपभ्रंश के विकास में अनार्य भाषाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा। अपभ्रंश भाषाओं के ढाँचे में होने वाले परिवर्तन इस ओर निर्देश भी करते हैं। भविसत्त कहा की भूमिका में याकोबी ने संकेत किया था—

'अपभ्रंश मुख्यत: प्राकृत शब्दकोश और देशी भाषाओं के व्याकरणिक ढाँचे को लेकर खड़ा हुआ। देशभाषा जो मुख्यत: पामरजन की भाषाएँ मानी जाती

---

१. राजशेखर ने काव्य मीमांसा में अध्याय ६ में लिखा है।
एकोऽर्थः संस्कृतोक्त्या ससुकविरचनः प्राकृतेना परोऽस्मिन्।
अन्योऽपभ्रंशगीभिः किमपरमपरो भूतभाषा क्रमेण॥
तथा १०वें अध्याय में—
पूर्वेण प्राकृताः कवयः।
पश्चिमेनापभ्रंशिनः कवयः।
दक्षिणतो भूतभाषा कवयः।
तथा ३ सरे अध्याय में
शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखे, प्राकृतं बाहुः जघनमपभ्रंश: पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्।

२. राहुल सांकृत्यायन—हिन्दी काव्य धारा, १९४५ ई० पृष्ठ ५-६।

थी, शुद्ध रूप में साहित्य के माध्यम के लिए स्वीकृत नहीं हुई इसीलिए वे साहित्यिक प्राकृत से सूत्र रूप में गूंथ दी गई। इसी का परिणाम अपभ्रंश है।'

प्रारम्भ में 'च्युत भाषा' आदि शीर्षक देकर अमीरादि असभ्य लोगों की बोली बताकर शुद्धतावादियों ने इसको निम्नकोटि की भाषा सिद्ध करने की चेष्टा की होगी पर संस्कृत से अनभिज्ञ लोग धीरे-धीरे इसको महत्व देने लगे, तो देखते ही देखते यह भाषा सम्पूर्ण भारत की साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकृत हो गई।

बहुत काल तक संस्कृत के आचार्यों और अपभ्रंश के कवियों द्वारा भी इसको 'देशी भाषा' की संज्ञा प्रदान की गई। स्वयंभू ने भी अपनी रामायण को 'ग्रामीण' अथवा 'देसी भाषा' में रचित बताया है। प्रारम्भ में प्रत्येक जनभाषा देशी भाषा ही कहलाती है। हिन्दी की विभिन्न उपभाषाओं को आज भी ग्रामीण भाषाएँ कहा जाता है।

अपभ्रंश की विभाषाएँ

वैयाकरणों ने और विशेषकर उत्तरकालीन वैयाकरणों ने देश-भेद से अपभ्रंश के अनेक भेद बताये हैं। ११वीं शताब्दी में 'नमिसाधु' ने अपभ्रंश के तीन भेद किये हैं :—

उपनागर, आभीर और ग्राम्य।

कुछ दूसरे वैयाकरणों ने भी इन भेदों को—नागर, उपनागर और व्राचड़ कहा। मार्कण्डेय ने तो अपभ्रंश के (प्राकृत सर्वस्व में)—पांचाली, सैंहली, वैदर्भी, (बरारी) आभीरी, लाटी, (दक्षिण गुजरात) मध्यदेशीया, औड्री, गुर्जरी, कैकेयी, पाश्चात्या, गौड़ी, अनेक भेद किये हैं। प्राकृत चन्द्रिका में व्राचड़ी, कैकेयी, लाटी, गौड़ी, वैदर्भी, औड्री, नागरी, सैहली, वर्वरी, गुर्जरी, आवन्ती, (मालवी) आभारी, पांचाली, मध्यप्रदेशी, टक्की आदि भेद किये हैं। स्थानीय प्रभाव के कारण भाषा का रूप भिन्न-भिन्न स्थानों पर कुछ-कुछ भिन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। अपभ्रंश का विशेष विकास पश्चिम में हुआ, भाषा के रूप में। राजस्थान तथा गुजरात अतएव साहित्य रचना भी विशेष रूप से यहीं पर हुई। इन अपभ्रंशों से 'नागर अपभ्रंश' नाम से विख्यात एक विशिष्ट अपभ्रंश ने साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त कर लिया। बाद में इसी में पश्चिमी भारत के अपभ्रंश ग्रन्थों की रचना की गई। जनसाधारण की स्वीकृति की छाप इस पर पूर्ववत् ही लग गई थी।

सिन्धु नदी के निचले प्रदेश की अपभ्रंश 'व्राचड' नाम से विख्यात थे। इसका सीधा सम्बन्ध सिन्धी तथा लंहदा से जोड़ सकते हैं। दक्षिण में दाक्षिणात्य अपभ्रंश रहे होंगे जो मराठी तथा उसकी बोलियों की पूर्वज रही होगी। पूर्व में औड़ (उड़ीसा)

बंगाल की खाड़ी तक उड़िया का क्षेत्र रहा। छोटा नागपुर बिहार के अधिकांश भाग के साथ-साथ पूर्वी उत्तर प्रदेश के बनारस तक मागध अपभ्रंश का प्रसार था। मागध के पूर्व में गौड़ या प्राच्य अपभ्रंश का क्षेत्र था। इसका प्रमुख केन्द्र वर्तमान बंगाल रहा और इसी से बंगाली विकसित हुई और उसके ही एक रूप से असमिया।

मागधी के पश्चिम में अर्द्ध-मागधी का क्षेत्र है, इससे विकसित अपभ्रंश की वर्तमान प्रतिनिधि भाषा अवधी, बघेलखण्डी तथा छत्तीसगढ़ी है।

शौरसेनी के पश्चिम में उत्तर मध्य पंजाब की 'टक्क' तथा दक्षिणी पंजाब की उपनागर अपभ्रंश थी। राजस्थान में आवन्त्य और इसके दक्षिण में गुर्जर अपभ्रंश विद्यमान थी जो नागर के रूप ही रहे होंगे।

इस प्रकार भारतवर्ष की वर्तमान आर्यभाषाएँ अपभ्रंश के ही विकसित रूप हैं जिनमें आजकल पर्याप्त साहित्य की रचना हो रही है।

अपभ्रंश के विभिन्न रूप

'अपभ्रंश' का ऐतिहासिक व्याकरण प्रस्तुत करते हुए डॉ० तगारे[1] ने निम्न-लिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है:

१. पश्चिमी अपभ्रंश।
२. दक्षिणी अपभ्रंश।
३. पूर्वी अपभ्रंश।

पश्चिमी अपभ्रंश का क्षेत्र लगभग वही माना गया है जिसे ग्रियर्सन ने शौरसेनी कहा है—इसमें गुजरात, राजस्थान और हिन्दी प्रदेश समाहित होते हैं इसका विवरण आगे पृथक् से देंगे।

दक्षिणी अपभ्रंश

इसके अन्तर्गत पुष्पदन्त का महापुराण, जसहर चरिउ और णाय कुमार चरिउ तथा करकंड चरिउ (कनकामर कृत) की गणना की जाती है।

प्रमुख विशेषताएँ

१. संस्कृत 'ष' का 'छ'।
२. अकारान्त पुल्लिग शब्द का तृतीया एक वचन में अधिकांशतः—एण वाला रूप मिलता है।
३. सामान्य भविष्यत् काल की क्रियायें स-परक होती हैं जैसे, करिसइ।

---

१. डॉ० तगारे—हिस्टोरीकल ग्रामर एवं अपभ्रंश, दकन कालेज पूना १९४८ ई०, पृष्ठ १५-१६।

४. पूर्वकालिक क्रिया के लिए -इ प्रत्यय प्रयोग सामान्यत: नहीं होता है ।

५. अन्य पुरुष बहुवचन में सामान्य वर्तमान काल की क्रिया-न्ति-परक होती है—करन्ति ।

इन विशेषताओं पर डा० नामवरसिंह[1] टिप्पणी देते हुए लिखते हैं छानबीन करने से पता चलता है कि ये (विशेषताएँ) स्थानगत पुरानी नहीं हैं जितनी शैलीगत। डॉ० तगारे ने पुष्पदंत और कनकामर की भाषा में जिन्हें दक्षिणी अपभ्रंश की अपनी विशेषतायें कहा है वस्तुत: वे बहुत कुछ प्राकृत प्रभाव हैं । विविध वैकल्पिक रूपों में से प्राचीन और नवीन रूपों का अलगाव करके किसी निर्णय पर पहुँचना अधिक लाभदायक होता, लेकिन तगारे ने यहाँ इस विवेक का परिचय नहीं दिया है । पुष्पदंत की भाषा को मराठी की जननी प्रमाणित करने के आवेश में डॉ० तगारे की दृष्टि से यह तथ्य ओझल हो गया कि पश्चिमी अपभ्रंश नाम से 'अभिहित भविष्सयत कहा' और दक्षिणी अपभ्रंश नाम से अभिहित 'महापुराण' की भाषा में कोई मौलिक अन्तर नहीं है । दोनों की रचना परिनिष्ठित अपभ्रंश में हुई हैं, थोड़ा बहुत अन्तर है भी वह केवल शैली संबन्धी है और रचयिता-भेद से इतना-सा भेद आजाना स्वाभाविक है ।" निष्कर्ष यह निकला कि दक्षिणी अपभ्रंश नामक एक अलग भाषा की कल्पना निराधार और अवैज्ञानिक है ।

पूर्वी अपभ्रंश

डॉ० तगारे इसके अन्तर्गत सरह और कारह वा दोहा कोषों को मानते हैं ।

प्रमुख विशेषताएँ—

१. संस्कृत 'श' सुरक्षित है तथा निम्नलिखित ध्वनियाँ इस प्रकार परिवर्तित हो जाती हैं :

क्ष ——	——क	क्षण	खण
	——क्ख	अक्षर	अक्खर
द्व—	दु	द्वार	दुआर
त्व——	——तु	त्वम्	तुहुँ
	——त्त	तत्व	तत्त
व	ब	वज्र	बज्ज

आद्य महाप्राणत्व नहीं होता ।

२. निर्विभक्तिक संज्ञापद बहुत मिलते हैं ।

---

१. डॉ० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, सन् १९५४ पृष्ठ ३९-४० ।

३. पूर्वकालिक प्रत्यय अइ का प्रयोग, जैसे, करइ।
४. क्रियार्थक संज्ञा के लिए परिनिष्ठित अपभ्रंश का-अण प्रत्यय का प्रायः अभाव है।

डॉ० नामवरसिंह पूर्वी अपभ्रंश का भेद वास्तविक मानते हैं जबकि दक्षिणी अपभ्रंश नामक भेद केवल कल्पना पर आधारित माना है।

परिनिष्ठित अपभ्रंश

जब प्राकृत परिवर्तित होकर अपभ्रंश की व्यवस्था में आ पहुँची तब भी हम देखते हैं कि और सब प्रान्तीय अपभ्रंशों का शौरसेनी या मध्यदेशीय अपभ्रंश के सामने कोई मर्यादापूर्ण स्थान नहीं था। लगभग ८०० ई० से शुरू होकर १२००-१३००। तक शौरसेनी अपभ्रंश भाषा जो नागर 'अपभ्रंश' भी कहलाने लगी। उत्तर भारत में एक विराट् साहित्यिक भाषा के रूप में बिराजती थी। संस्कृत के वाद इस शौरसेनी अपभ्रंश का ही स्थान उस समय था विभिन्न प्रान्तीय अपभ्रंश भाषाएँ थीं तो सही, पर उनमें साहित्यि-सर्जना मानो नहीं होने के बराबर ही थी। चार-छः सौ वर्षों तक सिंधु प्रदेश से पूर्वी बंगाल तक और काश्मीर, नेपाल मिथिला से लेकर महाराष्ट्र और उड़ीसा तक तमाम आर्यवर्ती देश इस शौरसेनी अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश साहित्यिक भाषा का क्षेत्र बन गया था। आगे चलकर डॉ० चटर्जी[1] कहते हैं कि यह सच है कि शौरसेनी अपभ्रंश उन दिनों की आंतः प्रादेशिक भाषा ही थी और आजकल की ब्रजभाषा, खड़ी बोली आदि विभिन्न प्रकार की हिन्दी का उद्‌भव इस शौरसेनी अपभ्रंश[2] से ही हुआ। आज की तरह एक हजार वर्ष पहले हिन्दी ही अपने पूर्व रूप में आंतप्रादेशिक मात्रा के रूप में अखिल उत्तर-भारत में फैली थी और तमाम आर्य भाषी लोगों में पढ़ी-पढ़ाई और लिखी जाती थी। **धीरे-धीरे मध्यदेश की दो भाषाएँ अपभ्रंश की वारिस बनी—आगरा, मथुरा और ग्वालियर की ब्रजभाषा और दिल्ली की खड़ी बोली।'**

शौरसेनी अपभ्रंश का साहित्य

डॉ० चन्द्रभान रावत[3] इसके अन्तर्गत कालिदास के विक्रमोवर्शीय के पक्ष, परमात्म प्रकाश और योगसार, देवसेन कृत सावयधम्म दोहा, रामसिंह कृत पाहुड़ दोहा, धनंजय के दशरूप के कुछ पद्य, धनपाल कृत भविस्सयत्त कहा, भोज के सरस्वती

---

१. डॉ० सुनीत कुमार चाटुर्ज्या—शौरसेनी भाषा की प्राचीन परम्परा, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ७९-८०
२. पं० किशोरीदास वाजपेयी का मत इससे भिन्न है।
३. चन्द्रभान रावत, ब्रज में भाषा का विकास, पृष्ठ १५५।

कंठाभरण के कुछ पद्य, जिनदत्त की उपदेश तरंगिणी, लक्ष्मणगणि का सुपासहनाह चरिश्र, करिभद्र कृत सनत्कुमार चरिश्र, हेमचन्द्र का हरिवंश पुराण तथा सोमप्रभ का कुमार पाल प्रतिबोध ग्रन्थ मानते हैं।

शौरसेनी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएँ[1]

ध्वनि-सम्बन्धी—(१) अन्त्य स्वर का लोप।

(२) अन्त्य स्वर का ह्रस्वीकरण।

प्रिया>पिअ

संध्या>सांझ

(३) प्रथमा तथा द्वितीय विभक्तियों में संस्कृत 'ओ' का 'उ' हो जाना।

देवो>देवु

(४) उपान्त्य स्वर प्रायः सुरक्षित रहते हैं।

गोरोचन>गोरोअण

अन्धकार>अन्धआर

(५) आद्य अक्षर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण द्वारा व्यंजन दित्व के स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग।

(६) प्राकृत की ही भांति उद्वृत स्वरों के विच्छेद को सुरक्षित रक्खा गया है।

(७) शब्दों के बीच में 'य', 'व', 'ह' आगम द्वारा 'उद्वृत्त स्वरों का पृथक् अस्तित्व रक्खा गया है—

सहकार>सहयार

(८) उद्वृत्त स्वरों को एकीकरण करके संयुक्त स्वर कर देने का आभास भी मिलना प्रारम्भ हो गया था, पर यह प्रवृत्ति मुख्य नहीं कही जा सकती।

(९) आदि स्थिति में स्पर्श व्यंजनों का महाप्राण रूप भी मिलता है—

ज्वल्>झलल

कीलका>खिल्लियइ

(१०) 'म' के स्थान पर 'व' का प्रयोग—

कमल>कवंल

(११) ऊष्म व्यंजनों में 'स' केवल अवशिष्ट रहा।

---

१. ये विशेषताएँ, डॉ० तगारे तथा डॉ० नामवरसिंह के अध्ययन के आधार पर संकलित हैं।

रूप तत्व सम्बन्धी विशेषताएँ—

१—अकारान्त पुंलिग शब्द रूपों की प्रधानता।

२—लिंग-भेद प्राय: रूप के आधार पर समाप्त हो गये, जैसे
कुम्भइं—(पुं), रहइ—(स्त्री), अम्हइं—(उभय लिंग)

३—प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन में विभक्ति प्रत्ययों का अप्रयोग।

४—सविभक्ति कारकों के तीन समूह रह गये—

(१) प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन।
(२) तृतीया, सप्तमी।
(३) चतुर्थी, षष्ठी, पंचमी।
इस प्रकार संस्कृत में रूपों की संख्या २१ थी वह प्राकृतों में १२ रही वही अपभ्रंश में ६ रह गई।

५—पुरुषवाचक सर्वनामों के रूपों में स्वल्पता।

६—विशेषणमूलक सर्वनामों के रूप प्राय: नामों के अनुसार रह गये।

७—धातुओं के काल रूपों में विविधता की कमी हो गई।

८—कृदन्त रूपों का अधिक प्रयोग होने लगा।

अपभ्रंश काल में भारतीय आर्य भाषा संश्लिष्ट रूप त्यागकर विश्लेषणात्मक बन गई। यही प्रवृत्ति आधुनिक आर्य भाषाओं में पूर्णतया विकसित हुई।

अपभ्रंश और प्राकृत

अपभ्रंश में प्राकृत की स्वर ध्वनियाँ विद्यमान रहीं। व्यंजन ध्वनियों में भी प्राय: समानता ही रही। ध्वनियों के क्षेत्र में उच्चारण में विकार अवश्य आ गये पर उनका कोई विशेष विवरण नहीं दिया जा सकता।

(१) **शब्द रूपों में अत्यधिक सारल्य**—लिंग-भेद मिटाकर अपभ्रंश में शब्द रूपों को बहुत सरल कर लिया गया पुल्लिग रूपों का प्राधान्य स्थापित हो गया। कारकों में तीन समूह रह गये जिनका उल्लेख किया जा चुका है।

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
कारक वचन	कारक वचन	कारक वचन
७ × ३ = २१	६ × २ = १२	३ × २ = ६

(२) **धातु रूपों में सरलता**—अपभ्रंश ने तिङन्त रूपों का प्रयोग सीमित कर दिया। कृदन्तज रूपों का व्यवहार बढ़ा जिसके फलस्वरूप काल-रचना की जटिलता एवं दुरूहता तो समाप्त हो गई पर इसके ही कारण हिन्दी की क्रियापदों में लिंग का प्रभाव स्पष्टत: आज अहिन्दी भाषा-भाषियों को कष्टकर बन गया।

(३) परसर्गों का प्रयोग—विभक्तियों के घिस जाने पर लुप्तविभक्ति पदों के कारण वाक्य में अस्पष्टता आने लगी—

करण कारक—सहुँ, तण
सम्प्रदान—रेसि, केहिं
सम्बन्ध—केरअ, केर, केरा
अधिकरण—मज्झे

(४) शब्दकोश में विस्तार—देशज शब्दों और धातुओं को एक ओर अपनाया गया दूसरी ओर कोल, द्रविड़, अनार्य न जाने कितने शब्द इसमें घुलमिल गये। 'उडिद', 'ऊँघना', 'कोडिम्बो', 'अक्का', 'पोआलो' पडच्छी आदि सैकड़ों देशी शब्द भी इस काल में मिल गये जिनको संकलित कर हेमचन्द्र ने देशीनाममाला नामक ग्रन्थ की रचना की।

संक्षेप में उच्चारण तथा शब्द रूपों के अतिरिक्त शब्द कोश के क्षेत्र में अपभ्रंश ने नया चरण रक्खा। पश्चिमी अथवा शौरसेनी अपभ्रंश के परिनिष्ठित रूप की इन मुख्य प्रवृत्तियों को देखकर कोई भी व्यक्ति स्पष्टत: दो निष्कर्ष निकाल सकता है इसमें से एक की ओर निर्देश भी किया जा चुका है—

(१) संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ना। इस दिशा में अपभ्रंश काल वह संधिकाल है जिसके एक ओर संस्कृत-प्राकृतादि संश्लिष्टावस्था की भाषाएँ हैं और दूसरी ओर हिन्दी, गुजराती आदि विश्लिष्टावस्था की भाषाएँ हैं।

(२) अपभ्रंश व्याकरण प्रधान भाषा न रहकर व्याकरण के शिकंजे से मुक्त हो गई यह उसकी सरलीकरण की प्रवृत्ति का भी परिणाम है जिसके कारण आगे चलकर भाषा में शीघ्रता से परिवर्तन होने लगे और भाषा का प्रवाह तेजी से गतिमान हुआ।

इस प्रकार अनेक रूपों में अपभ्रंश विशेषकर शौरसेनी तथा मुख्य प्राकृत का अनुगमन करती रही पर फिर भी इसका स्वतन्त्र विकास हुआ है और साथ ही कुछ शब्द रूपों में सीधा संस्कृत तथा अशोकन प्राकृतों से भी।[1]

---

1. "The Aperbhra'm›sa follows chiefly the Saurseni and the principal Prakrit also to some extent. Thus in a great measure it represents those dialeots in a further stage of decay, but it must be considered to have derived some words or forms independently also"

   R. G. Bhandarkar—Collected Works of R. G. Bhandarkar, 1929, Page 373.

गुजरात के जैन आचार्य-हेमचन्द्र

जैन आचार्य हेमचन्द्र (१०८८ ई० ११७२ ई०) द्वारा लिखी गई व्याकरण में जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें से पश्चिमी अपभ्रंश के प्रचलित उदाहरणों में आधुनिक खड़ी बोली के बीज सुरक्षित हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस काल की भाषा आज की हिन्दी से कितनी निकट रही होगी। सूत्र ३५८ में दिया गया उदाहरण द्रष्टव्य है—

> जीविउ कासु ण वल्लहउँ धणु पुणु कासु ण इट्ठु।
> दोण्णि वि अवसरि णिवडिअइ तिणसवँ गणइ विसिट्ठु।[1]
> (जीवितं कस्य न वल्लभकं, धनं पुनः कस्य न इष्टम्।
> द्वे अपि अवसरे निपतिते तृणसमे गणयति विशिष्टः)

जीवन किसका बालम (प्यारा) नहीं ? धन फिर किसका ईठ (इष्ट) नहीं ? दोनों ही अवसर निबड़े से विशिष्ट इन दोनों को तिनका सा गिने।

सूत्र ३६७ में दिया गया उदाहरण देखिए—

> जइ ण सु आवइ दूइ घरु काइं अहोमुहु तुज्झु।
> वअणु जु खण्डइ तउ सहिए सो पिउ होइ ण मुज्झु॥[2]
> (यदि न सः आयाति दूति गृहं किम् अधोमुख तव।
> वचनं यः खण्डयति तव सखिके सः प्रियः भवति न मम)

जो सो (वह) घर ने आवे, दूती। क्यों तेरा मुँह नीचा है ? बैन (वचन) जो खण्डे तो, सही। सो (वह) मेरा पिउ न होवे।

इस दृष्टि से हेमचन्द्र सूरि विरचित शब्दानुशासन और विशेषकर उसका अपभ्रंश व्याकरण वाला भाग जिसके सूत्र ३२९ से ४४८ के अन्तर्गत दिये गये उदाहरण विशेष महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि 'अपभ्रंश के शब्द-समूह में प्राचीनता थी लेकिन उसके व्याकरण में नवीनता के अंकुर थे। दूसरे शब्दों में अपभ्रंश का ध्वनि विचार प्राकृत से प्रभावित था किन्तु उसका व्याकरण प्राकृत-प्रभाव से मुक्त होकर लोक-बोलियों के सहारे भारतीय आर्यभाषा के विकास की नूतन संभावनाएँ प्रकट कर रहा था। कालक्रम से अपभ्रंश में प्राचीनता के इस संघर्ष में नवीनता

---

१. हेमचन्द्र सूरि—अपभ्रंश व्याकरण [सिद्ध हेम शब्दानुगान–अध्याय ८] केशवराम सं० २००५, पृष्ठ ३५।

२. वही, पृष्ठ, ४१।

विजयिनी होती गई और उसमें लोक-बोलियों की नवीनता बढ़ती गई। यहाँ तक कि अपभ्रंश ने अपने गर्भ से अनेक स्वतन्त्र क्षेत्रीय भाषाओं को जन्म दिया।'[१]

संक्रान्तिकालीन युग

परिनिष्ठित अपभ्रंश ईसा की दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में समस्त उत्तर भारत की प्रमुख भाषा के रूप में स्वीकार की गई। इसी समय से आधुनिक भाषाएँ विकसित हुई हैं। इन बोलियों के मिश्रण का आभास हेमचन्द्र के व्याकरण ग्रन्थों से भी होता है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण तथा देशीनाममाला आदि ग्रन्थों के सम्यक् विश्लेषण से ऐसे शब्द छाँटे जा सकते हैं जिनका प्रयोग तत्कालीन अपभ्रंशों में भी मिलता है और देशी भाषाओं में भी। १००० ईसवी के आसपास ही आधुनिक आर्यभाषाओं के उदय का काल निर्धारित किया जा सकता है। समय की कोई ऐसी निश्चित सीमा रेखा भी नहीं खींची जा सकती। यह समय बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भी खींचा जा सकता था पर इधर कुछ इतने महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिल गये हैं जिनके आधार पर ११वीं शताब्दी के बाद इस रेखा को खींचना सम्भव न हो सकेगा।

रोडा कृत राउल वेल[२]

यह ११वीं शती का एक शिलांकित भाषा काव्य है जिसका लेखक रोडा है। इसमें किसी सामंत के रावल (राजभवन) की रमणियों का वर्णन है, इसीलिए इसका नाम राजकुल विलास (राउल वेल) है। इस पर टिप्पणी देते हुए डॉ० माता प्रसाद गुप्त लिखते हैं, लेख की भाषा पुरानी दक्षिण कोसली है जिस प्रकार उक्ति व्यक्ति प्रकरण की पुरानी कोसली है। उस पर समीपवर्ती तत्कालीन भाषाओं का

---

१. डॉ० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, १९५४, पृष्ठ ५१।

२. यह लेख (शिलालेख) प्रिन्स आव् वेल्ज म्यूजियम बम्बई में है जिसका आकार ४५—३३ है। इसके पाठ के आधार पर इधर दो शोध-लेख प्रकाशित हुए हैं—

अ—डॉ० माताप्रसाद गुप्त—रोडा कृत 'राउल वेल'—धीरेन्द्र वर्मा अभिनन्दनांक, अनुशीलन पृष्ठ २१–३८।

आ—डॉ० हरिवल्लभ चुनीलाल भायाणी—राउल वेल, भारतीय विद्या, भाग १७ अंक ३० पृष्ठ १३०–१४६।

लेखक ने इनके आधार पर ही (केवल पाठ के आधार पर) अपना निजी अध्ययन प्रस्तुत किया है। भविष्य में कभी विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत हो सकेगा।

कुछ प्रभाव अवश्य ज्ञात होता है। यह भाषा उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भाषा से कुछ प्राचीनतर लगती है जो कि लेख के लेखन काल के अनुसार होना भी चाहिए और इससे यह भी प्रमाणित हो जाता है कि हिन्दी और हिन्दी की भाँति ही कदाचित् अन्य आधुनिक आर्य भाषाएँ भी ग्यारहवीं शती ईस्वी में इतनी प्रौढ़ हो चली थीं कि उनमें सरस काव्य की रचना हो सकती थी, वे केवल बोलचाल की भाषाएँ नहीं रह गई थीं।

इसकी प्रमुख विशेषताएँ ये हैं—

(१) लेख में 'व' और 'ब' एक ही प्रकार से लिखे गये हैं।

(२) 'ण' प्रयोग बहुमत से हुआ है जो प्राकृतों का प्रभाव है—
'भणु', 'भाषणु', पहिणु, 'विण', 'भण', 'भयणु'।

(३) नासिक्य ध्वनियों में 'ण', 'न', 'म' का ही अधिक प्रयोग है—
चिन्तवंतइ, गवारिम्वॅ, म्वालउ।

(४) सानुनासिक और अनुस्वार दोनों के लिए बिन्दु का ही प्रयोग है।

(५) 'य' का प्रयोग कभी-कभी 'ज' के स्थान पर भी हुआ है—
कियुयइ = किज्जइ

कवि ने अन्त में यह वक्तव्य दिया है—

रोडें राउल वेल वखा (णी)।
(पुणु ?) तहं **भासहं जइसी जाणी**॥

रोडा के द्वारा (यह) राउल वेल (राजकुल विलास) कही गई और फिर वहाँ भी **भाषा में (कही गई), जैसी उसकी जानी थी।**

उपर्युक्त पंक्तियों में **काले शब्दों की** पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं। यही हमारे अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिसमें यह कहा गया है कि यह तत्कालीन लोक-भाषा में लिखी गई है जिसके लिए लेखक ने 'भाषा' शब्द का प्रयोग किया है। 'भाषा' का तत्कालीन लोकभाषा के लिए प्रयोग उसी प्रकार सार्थक है जैसे तुलसी ने मानस में अवधी के लिए (संस्कृत से इतर भाषा की संज्ञा के लिए) भाषा का प्रयोग किया है।

डॉ० गुप्त ने इस लेख के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए विद्वानों को आह्वान किया है। भायाणी जी इसमें आठ नखशिख की कल्पना की है जो अपभ्रंशोत्तर आठ बोलियों के विशिष्ट तत्वों से समन्वित रहे होंगे और लेख में जो छः नख-शिख बचे हैं वे जिन-जिन क्षेत्रों की नायिकाओं का वर्णन करते हैं उन-उन क्षेत्रों की बोलियों का कुछ प्रतिनिधित्व अलग-अलग उनके नख-शिख वर्णन में उपस्थित करते हैं। डॉ० गुप्त की राय में ये सब एक ही बोली में लिखे गये हैं जिसमें निकट-

वर्ती बोलियों के भी तत्व कदाचित् आ गये हैं। जिन चार का स्पष्ट उल्लेख इसमें है वे हं : कालोज (?), टक्क, गौड़, मालवा। भाषाओं के सम्बन्ध में भायाणी जी का अनुमान है कि प्राप्त नख-शिख क्रमशः अवधी, मराठी, पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, बंगाली तथा मालवी के पूर्व रूप में लिखे गये हैं। इसमें कनौजी पर डॉ० गुप्त ने आपत्ति (विशेष) की है उसको आपने 'कानोउड' पड़ा है जो 'कनावड़े' के अर्थ में है।

मेरा निजी मत यह है कि मूल रूप से तो समस्त लेख में एक ही भाषा प्रयुक्त हुई है पर स्थान भेद से नायिकाओं के वर्णन में क्षेत्रीय शब्दों का व्यवहार आवश्यक किया गया है—

प्रारम्भ में ही पंक्ति संख्या ४ से ६ के मध्य 'अच्छा', 'मनोहर', 'सुन्दर' वाची 'चंगा'[1] शब्द का प्रयोग तीन बार हुआ—

४. चांगउ
६. चांगिम्ब
६. चांगा

इसी प्रकार पंक्ति संख्या ३० से ३३ के मध्य मालवी सुन्दरी के वर्णन में 'सुन्दरता' सूचक 'रूरी' का प्रयोग पाँच बार हुआ है—

३०—रूरउ, रूरी, ३१—रूरे, रूरउ ३३—रू (रउ)

भाषा प्रधानतः उकार बहुला है जिसका स्पष्ट प्रभाव आदि से अन्त तक है प्रारम्भ के पृष्ठों में—

पंक्ति २—काजलु, (आ) छउ, तुछउ, (मणु मणु, रावउ)
३—माण्डणु, पावउ, मणु
४—चांगउ, वाछउ, आंगउ, भालउ
५—घरु,

और वही अन्त में—

३३—काजलु, दीनउ, कसइउ, जणु, चाखुहु
४५—राउलु

इस लेख के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है जो निस्सन्देह भविष्य में महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होगी।

---

१. पंजाबी में बहुत ही प्रयुक्त होता है—'अच्छा' राहुल-हिन्दी काव्यधारा, १९४५, पृष्ठ १७२, १९४, २६६।

अवहट्ट भाषा

'अवहट्ट' भाषा का निर्देश मात्र पीछे किया जा चुका है[1] जहाँ यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि यह सं० अपभ्रष्ट का ही प्रष्ट रूप प्रतीत होता है। इस भाषा के सम्बन्ध में डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने विशेष अध्ययन किया है। आपके अनुसार यह वस्तुतः परिनिष्ठित अपभ्रंश की ही थोड़ी बढ़ी हुई भाषा का रूप था और इसके मूल में पश्चिमी अपभ्रंश का ही अधिकांश प्रवृत्तियाँ काम करती हैं। परवर्ती अपभ्रंश भाषा की दृष्टि से परिनिष्ठित से भिन्न हो गया था उसमें बहुत से नये विकसित तत्व दिखाई पड़ते हैं। विभक्तियों के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग बढ़ गया। वाक्य के स्थान क्रम से अर्थ बोध की प्रणाली निर्विभक्तिक प्रयोग का परिणाम थी, वह भी सबल हुई। सर्वनामों तथा क्रियाओं में बहुत सी नवीनताएँ दिखाई पड़ीं। इन सबको समष्टिगत रूप से देखते हुए यदि इस काल की भाषा के लिए अपभ्रंश से भिन्न किसी नाम की तलाश हो तो वह नाम बिना आपत्ति के अवहट्ट हो सकता है।

हमारे विचार से 'अवहट्ट' परवर्ती अपभ्रंश का वह रूप है जिसके मूल में परिनिष्ठित अपभ्रंश यानी शौरसेनी है। इसमें नाना क्षेत्रों के शब्द रूप मिलेंगे। क्षेत्रीय भाषाओं का रंग कभी-कभी बहुत गाढ़ा हो जाता है। पर समस्त विभिन्नताओं के मध्य भी एक समान ढाँचा है जो प्रायः एक सा है, चाहें तो इसके पूर्वी-पश्चिमी भेद कर सकते हैं। डॉ० चटर्जी ने बिना 'अवहट्ट' नामोल्लेख किये इस ओर निर्देश किया है कि शौरसेनी अपभ्रंश से मिलती-जुलती एक भाषा नवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक उत्तर भारत के राजपूत राजाओं की राजसभा में प्रचलित थी और राजसभा के भाटों ने उसको उन्नत स्वरूप दिया। उन राजाओं के प्रति श्रद्धा और सम्मान दिखाने के लिए गुजरात तथा पश्चिम पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तर भारत में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हो गया और वह राष्ट्र भाषा हो गई।

डॉ० सिंह[2] इन सब तथ्यों का निष्कर्ष निकालते हैं—

(१) शौरसेनी अपभ्रंश राजनीतिक और भाषा वैज्ञानिक कारणों से राष्ट्र-भाषा का रूप ले रहा था। उसी का परवर्ती रूप ईसा की ग्यारहवीं शती से १४वीं तक उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा बना रहा। यह अवहट्ट थोड़े प्रान्तगत भेदों के अलावा सर्वत्र एक सा ही है।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह—कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, सन् १९५६, पृष्ठ ६–७।

२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह—कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, सन् १९५५, पृष्ठ २४।

(२) इस काल में अपभ्रंश की विभिन्न बोलियाँ विकसित होने लगीं और उनमें से बहुत अवहट्ट के अन्त होते-होते यानी १४०० के आस-पास समर्थ भाषा के रूप में साहित्य का माध्यम स्वीकार कर ली गई।

(३) इस काल की भाषाओं में मुसलमानी आक्रमण के फलस्वरूप फारसी के शब्दों की भरमार दिखाई पड़ती है।

(४) हिन्दुत्व के पुनर्जागरण के कारण संस्कृत तत्सम शब्दों का प्राचुर्य मिलता है।

अवहट्ट का काल

अवहट्ट काल की सीमा-रेखा खींचना तो सम्भव नहीं। डॉ० चटर्जी ९वीं से १२वीं शताब्दी के मध्य मानते हैं। कुछ भी हो हम अवहट्ट का काल ११-१२ वीं शताब्दी से पूर्व नहीं माना जा सकता और उसकी अन्तिम काल-सीमा करीब-करीब १४वीं शताब्दी मानना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं कि देशी भाषाएँ १४वीं शताब्दी के बाद ही विकसित हुईं। अवहट्ट जिन दिनों साहित्यिक क्षेत्र में मान्यता प्राप्त कर इतने बड़े भूभाग में प्रचलित थी उस समय में भी आधुनिक भाषाएँ तेजी के साथ विकसित हो रही थीं।

अवहट्ट और देसिल वअना

सक्कय वाणी बहुअन भावइ।
पाउँअ रस को मम्म न पावइ।।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा।
तं तैसन जम्पओ अवहट्ठा।।[1]

(संस्कृत भाषा केवल विद्वानों को अच्छी लगती है। प्राकृत भाषा में रस का मर्म नहीं होता। देशी वचन सबको मीठा लगता है, वैसा ही अवहट्ठ में लिखता हूँ)

इन पंक्तियों पर विद्वानों में काफी मतभेद रहा। एक वर्ग ने अवहट्ट और देशी को पृथक्-पृथक् माना और दूसरे न दोनों को एक ही। डॉ० सक्सेना, डॉ० हीरालाल जैन आदि 'एक ही मानने' के पक्ष में हैं। ब्लाख, पिशेल आदि विद्वान् इसको पृथक्-पृथक् भाषाएँ मानते रहे। 'देशी' शब्द स्वयं विवादास्पद है। इसके विवाद और इतिहास की चर्चा न करके केवल इतना संकेत मात्र करना चाहते हैं कि 'देशी' शब्द काल-सापेक्ष है। प्रारम्भ में जनता प्राकृत को 'देशी' कहती रही होगी, साहित्यिक रूप पर प्रतिष्ठित हो जाने पर जनभाषाओं को व्याकरणों ने 'प्राकृत' नाम दिया। यह साहित्यिक भाषा हो जाने पर जनता से प्राकृत भी दूर हो

---

१. **कीर्तिलता, प्रथम पल्लव, १९ से २२ वीं पंक्तियाँ।**

गई। जनता की अपनी भाषा उसी साधारण से विकसित होती रही और उसमें विभिन्न अपभ्रंशों का रूप ले लिया। अब ये अपभ्रंश प्राकृत के टक्कर में देशी भाषा कही जाने लगी। प्रसिद्ध कवि स्वयंभू ने अपनी भाषा को देशी कहा—

दीह समास पवाहा बंकिय सक्कय पायय पुलिणालंकिय।
देसी भाषा उभय वडुज्जल कवि दुक्कर घण सद्द सिलायल ॥

उन्होंने अपभ्रंश को देशी भाषा कहा जो नदी की धारा की तरह है जिसके दोनों किनारे संस्कृत और प्राकृत हैं।

इसके बाद अपभ्रंश की भी वही दशा हुई। वह भी साहित्यिक भाषा बनकर धारा से अलग हुई और बाद में देशी भाषाएँ ब्रज, अवधी, मराठी आदि बन गईं।

अवहट्ट की प्रमुख विशेषताएँ

१. क्षतिपूरक दीर्घीकरण की सरलता—

आ = अ   १—ठाकुर = ठक्कुर
२—काज = कज्ज = सं० कार्य
३—नाचइ = नच्चइ = सं० नृत्यति
४—तासु = तस्स = सं० तस्य
ई = इ   ५—दीसहि = दिस्सं = सं० दृश्यं
६—दीजइ = दिज्जइ = सं० दीयते
७—सीझ = सिज्झ = सं० सिद्धयति
८—मीत = मित्त = सं० मित्र
९—ईसर = इस्सर = सं० ईश्वर
ऊ = उ   १०—ऊसास = उस्सास = सं० उच्छ्वास

२. सरलीकरण में पूर्व स्वर दीर्घ नहीं करते—

अ = अ + दित्व
सबे = सब्बे
अपन = अप्पण

३. सानुनासिकता की प्रवृत्ति—

सकारण—आँग, आँचा, बाँधा, काँट
सकारण—उँच्छाह = उत्साह
जूँआँ = द्यूत
काँस = कास्य
अँसू = अश्रु
मुँह = मुख

४. संध्यक्षर स्वर --उद्वृत्त स्वरों का संध्यक्षर स्वर में एकीभाव होना—

ऐ—भुववै = भुववइ = भूपति
भै = भइ = भूत्वा
औ—चौरा = चउवर = चत्वर
चौक = चउक्क = चतुष्क

५. स्वर-संकोचन—

आ—अ + आ	अन्धार = अन्ध आर = अन्धकार	
अ + इ	चोविह = चउ विह = चतुर्विंशति	
औ—अ + उ	सामोर = सम्म उर = संबपुर	
अ + ऊ	मोर = मऊर = मयूर	
अ + ओ	अन्दोज = इंदग्रोव = इन्द्रगोप	

सन्देश रासक और उसकी भाषा

यह ग्रन्थ १२वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से सम्बन्धित है। प्राचीनता साथ ही बोलचाल की भाषा की अधिकतम निकटता की दृष्टि से सन्देश रासक[1] ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण है जिसको परवर्ती अपभ्रंश की रचना कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के रचयिता अब्दुर्रहमान है जिन्होंने पुस्तक के प्रारम्भ में यह उल्लेख किया है कि 'मीरसेन के पुत्र कुलकमल अद्दहमाण ने जो प्राकृत, काव्य और गीति विषय में प्रसिद्ध था, सन्देश रासक की रचना की।' इसमें मुल्तान का अत्यन्त भव्य चित्रण है। यह पहला मुसलमान कवि है जिसने लोक भाषा में अपने हृदयस्थ विचार प्रकट किये हैं। सन्देश रासक की भाषा लेखक की पाण्डित्यपूर्ण रुचि के कारण कुछ प्राकृत-प्रभावापन्न अवश्य है—

संनेहय-रासय (संदेश-रासक) की रचना उस वर्ग विशेष के लिए कवि ने की है जो न मूर्ख हो न पण्डित। इस कथन से स्पष्टत: यह परिलक्षित होता है कि साहित्यिक अपभ्रंश में रचित यह काव्य भी मध्यवर्ग में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, जनसाधारण के लिए रचे गये इस काव्य में लोकभाषा का प्रयोग होना स्वाभाविक ही है।

---

१. सन्देश रासक—सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर १९६०।
प्रारम्भ में ५० पृष्ठ की प्रस्तावना है फिर ८६ पृष्ठ की भूमिका है जिसमें से पृष्ठ ३१-४४ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने रासक की भाषा पर प्रकाश डाला है।

भाषागत विशेषताएँ

१. **मध्यम 'व' के लोप की प्रवृत्ति**

मनाइ—मंनावि

मंनाएवि—मंनावेवि

पाइय—पाविय

जीउ—जीव

२. **'म' का 'व' में बदल जाना—**

डवणु—दमन

रमणिज्ज—रमणीय

३. **पदान्त अनुनासिक के लोप की प्रवृत्ति—**

इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही हिं, अइँ, हउँ, तुहुँ, भइँ, किवि, काँइ, क्रमशः हि, अइ, हउ, तुहु, भइ, किवि, काइ बन गये ।

४. **स्वर-संकोचन की प्रवृत्ति—**

सुन्नार = सुन्नआर = स्वर्णकार

साहार = सहयार = सहकार

५. **क्षतिपूरक दीर्घीकरण—**

ऊसास = उस्सास = उच्छ्वास

६. **'ल' का महाप्राण रूप 'ल्ह' मिलना प्रारम्भ हो गया—**

मिल्ह = मेल्ल

७. **'उ' का 'व' हो जाना—**

गोवर = नूपुर

गोवर = गोउर = गोपुर

८. **अर्द्ध-संवृत स्वर से संवृत स्वर की ओर ले जाने की प्रवृत्ति—**

सिज्ज—सेज्जा (शय्या)

मुत्तिय—मोत्तिअ (मौक्तिक)

सन्देश रासक की भाषा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के कितने निकट पहुँच गई है इसका ज्ञान तो सभी कारकों, वचनों में केवल प्रतिपादिक रूप के व्यवहार मात्र से हो जाता है—

विरहेण के स्थान पर विरह

धूमेन—धूम

चरणे—चरण

सन्देश रासक की भाषा मध्यकालीन या संक्रान्तिकालीन भाषा का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें आधुनिक आर्यभाषाओं के बीज रूप में दर्शन हो जाते हैं।

पिंगल भाषा

कुछ लोगों का यह मत है कि पश्चिमी प्रदेश में तत्कालीन उत्तरकालीन अपभ्रंश को ही 'पिंगल' की संज्ञा दी जाती है जिसमें रचनाएँ विशेषकर पश्चिमी प्रदेश में हुई और साथ ही तत्कालीन देशी भाषा डिंगल[1] में रचना हुई। प्राकृत पैंगलम् के टीकाकार ने पिंगल और अवहट्ठ का समानार्थक प्रयोग किया है।

पिंगल मूलतः छंद सूत्रों के रचयिता आचार्य का नाम था जिन्हें नाग भी कहा गया है। पीछे से छन्द-सूत्रों और उन सूत्रों पर आधारित छन्द शास्त्र को ही पिंगल कहा गया है। कालान्तर में इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि 'प्राकृत अपभ्रंश' के छन्दों का एक स्वतन्त्र लक्षण ग्रन्थ बने और 'प्राकृत पैंगलम्' ने उसी की पूर्ति की जिसके सम्बन्ध में विशेष विवरण आगे दिया जावेगा।

पिंगल शब्द भाषार्थक कब से हुआ इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है पर १७वीं शताब्दी से इसके प्रयोग निश्चयपूर्वक मिलते हैं और समानार्थी 'नाग' भाषा का प्रयोग भी मिलता है। मिर्ज़ा[2] खां ने अपने ब्रजभाषा व्याकरण 'तुहफ़तुल हिन्दी' में पातालबानी—नागबानी का उल्लेख किया है।

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी—राजस्थानी भाषा, पृष्ठ ५८।

२. सन् १८७६ में मिर्ज़ा खां ने तीन प्रकार की भाषाओं का उल्लेख किया है—

(अ) संहसकिर्त—संस्कृत—जिसमें अनेक विज्ञान और कला सम्बन्धी पुस्तकें लिखी गईं। ये विश्वास किया जाता है कि यह अकासबानी या देववाणी है।

(ब) पराकिर्त—प्राकृत— यह भाषा राजाओं, मन्त्रियों, सरदारों की प्रशंसा में काम में आती है। यह इस बात की सूचना देता है कि वह इस संसार के बीच में है अर्थात् इसी को पातालबानी या नागबानी कहते हैं।...यह संहसकिर्त तथा भाखा का मिश्रण है।

(स) भाखा—भाषा— वह भाषा जिसकी बोलियाँ पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती हैं। इसी को हिन्दी भी कहते हैं। लुग़ातइ-हिन्दी में इसका अर्थ है 'भाषा'–कहना, 'कहो'।

१८वीं शताब्दी में आचार्य भिखारीदास ने अपने काव्य निर्णय में इसका उल्लेख किया है—

> ब्रज मागधी मिले अमर नाग जबन भाषनि ।
> सहज पारसीहु मिले षट्विधि कहत बखानि ।।

'नागभाषा' का उल्लेख ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से हुआ है। भिखारीदास ने जब ब्रज के साथ 'नाग' का प्रयोग किया है तो कहा यह निश्चित रूप से ब्रज से भिन्न कोई भाषा रही होगी, कुछ लोग 'पिंगल' उस देशी प्राकृत को कहते हैं जिसमें लिखे गये काव्य के उदाहरण प्राकृत पैंगलम् में मिलते हैं। भाषाविद् लोगों के मत से पिंगल पुरानी ब्रज के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

मिर्ज़ा खां, भिखारीदासादि के प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'नाग' का प्रयोग पुरानी ब्रज या पिंगल के लिए किया गया है। मिर्ज़ा खां ने पराकिर्त भी कहा है। मिर्ज़ा खां इस भाषा का संस्कृत और भाषा (भाखा-ब्रज) के मध्य की कड़ी मानते होंगे। इस भाषा के पराकिर्त कहना 'प्राकृत' नहीं तो अपभ्रंश की ओर निर्देश अवश्य है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त[1] ने 'पिंगल' काव्य की परम्परा में निम्नलिखित ग्रन्थ माने हैं—

१—प्राकृत पैंगलम् (१४वीं शताब्दी)
२—पृथ्वीराज रासो (१५वीं शताब्दी)
३—जयचन्द-प्रबन्ध-जल्हण रचित।
४—बुद्धि रासो (१४-१५वीं शताब्दी)
५—छिताई वार्ता (१५वीं विक्रमीय शताब्दी)
६—मधुमालती कथा (१४४३ के लगभग)

पिंगल को डॉ० शिवप्रसाद सिंह[2] ने ब्रजभाषा की चारण शैली नाम से भी अभिहित किया है जिसका प्रथम ग्रन्थ 'प्राकृत पैंगलम्' को मानते हुए भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' को ही माना है। पिंगल का प्राचीनतम प्रयोग गुरु गोविन्दसिंह के दशम ग्रन्थ में हुआ। 'पिंगल' छन्दशास्त्र का द्योतक होते हुए भी भाषा के लिए कब और क्यों प्रयुक्त हुआ ? यह प्रश्न अभी तक विचारणीय बना हुआ है। कभी-कभी छन्द विशेष ही किसी भाषा में सुशोभित होते हैं और कालान्तर में उस भाषा का वह छन्द ही पर्याय बन जाता है जैसे वैदिक भाषा 'छान्दस्' कहलाने लगी।

---

१. साहित्य कोश—सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ४५२।

२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, सन् १९५८, पृष्ठ १०९।

'गाथा' से पालि भाषा, 'गाहा' से प्राकृत और 'दूहा' से अपभ्रंश भाषा का बोध होने लगा उसी प्रकार पिंगल प्राचीन ब्रज का पर्याय बन गया होगा।

पिंगल के उक्त ग्रन्थों में से केवल प्रथम दो की भाषा सम्बन्धी चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं—

१. प्राकृत पैंगलम्[3]

यह छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। छन्दों के उदाहरण स्वरूप इसमें जो पद्य संकलित हैं वे एक काल का प्रतिनिधित्व नहीं करते। डॉ० चटर्जी इसमें संकलित पदों को ९००-१४०० ई० तक की रचनाएँ मानते हैं। कुछ लोग इसको १२वीं शताब्दी से १४ वीं तक की रचनाएँ मानते हैं। डॉ० तेस्सीतेरी[४] ने इस पर टिप्पणी देते हुए लिखा 'हमारे लिए प्राकृत पैंगल' की भाषा हेमचन्द्र के अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की प्रारम्भिक अवस्था के बीच वाले सोपान का प्रतिनिधित्व करती है और उसे १०वीं से ११वीं अथवा संभवत: बारहवीं शताब्दी ईसवी के आसपास की भाषा कहा जा सकता है। राजशेखर की कर्पूर मंजरी (९०० ई० से) के उदाहरणों से लेकर १४वीं शताब्दी तक की रचनाएं इसमें हैं। डॉ० नामवर सिंह ने व्यावहारिक रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राकृत पैंगलम् हेमचन्द्र के दोहों और नव्यभाषाओं के प्राचीनतम रूप के बीच की कड़ी का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह की भाषा १०वीं से १२वीं शती की भाषा का आदर्श रूप मानी जा सकती है।

इसमें जज्जल, विज्जाहर (विद्याधर) रचित छन्द, गीतगोविन्द के दो छन्दों का रूपान्तर भी है।

प्राकृत पैंगलम् की भाषा

प्राकृत पैंगलम् के उदाहरणों में सभी क्षेत्रों की भाषा के रूप हैं पश्चिमी हिन्दी का रूप—ढोल्ला मरिअ ढिल्लि यह मुच्छिअ मेच्छ सरीर।

ढोला मारा (बजाया) दिल्ली में तो मूर्च्छित हुआ मलेच्छ शरीर।

पूर्वी हिन्दी—सोउ जुहुट्ठिर संकट पावा। पृष्ठ ४१२ छन्द १०१

बिहारी—दिसइ चलइ हिअअ डुलइ हम इकलि बहू। पृष्ठ ५४१ छन्द १९३

---

३. सं० श्री चन्द्र मोहन घोष एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल कलकत्ता, १९०० (अभी हाल में ही एक हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण सम्पादित हुआ है)।
डॉ० भोलाशंकर व्यास—प्राकृत पैंगलम् भाग १, प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, काशी।

४. डॉ० नामवर सिंह—पुरानी राजस्थानी, १९५६।

इन उदाहरणों के आधार पर डॉ० उदय नारायण तिवारी[1] यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'प्राकृत पैंगलम्' के समय तक साहित्यिक अपभ्रंश के बीच-बीच में तत्कालीन लोक-भाषाओं के रूप भी यत्र-तत्र स्थान पाने लगे थे और आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाएँ यद्यपि प्रान्तीय रूप में ही विकसित न हो पाई थीं परन्तु उनकी विशेषताएँ प्रकट होने लगी थीं।

नव्य आर्य भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि क्षय स्थिति समाप्त हो गई और उन शब्दों में परिवर्तन या विकास होने लगा—

प्राचीन	प्राकृत	आधुनिक
हृदय	हिअअ (पृष्ठ ५४१)	हिय, हिया

दित्व की प्रवृत्ति भी समाप्त होती गई। आज पंजाबी, बांगड़ू आदि में यह प्रवृत्ति देखी जाती है पर ब्रज में प्रायः शब्दों के कोमलीकृत रूप ही स्वीकार हुए हैं इस प्रकार के जो कुछ शब्द मिलते हैं उन पर भी विचार किया जावेगा। कुछ शब्दों के दोनों ही रूप चलते हैं—

चादर चद्दर

ये सभी प्रवृत्तियाँ प्राकृत पैंगलम् में स्पष्टतः दृष्टिगत होती हैं—

प्राकृत पैंगलम्	वर्तमान रूप
चउबीस (पृष्ठ १५५)	चौबीस
चामा (पृष्ठ ४३६)	चाम
दीसइ (पृष्ठ ३१५)	दीसइ (ब्र) दीखना (खड़ी बोली)
कहीजे (पृष्ठ ४०२)	कहै (ब्रज०) कहना (खड़ी बोली)

प्राकृत पैंगलम् में ब्रजभाषा का प्राचीन स्वरूप

यह एक भ्रम है कि प्राकृत पैंगलम् पुरानी ब्रजभाषा का ही ग्रन्थ है, एक प्रकार से उसमें वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के विशेषकर हिन्दी से सम्बन्धित उपभाषाओं के पूर्व रूप के दर्शन किये जा सकते हैं पर विशेषकर अभी तक ब्रजभाषा के पूर्व रूप को ही देखने की चेष्टा की गई है।

जहाँ तक शब्दावली[1] के साम्य का प्रश्न है कुछ शब्द उदाहरणार्थ लिये जा सकते हैं—

---

१. डॉ० उदय नारायण तिवारी—हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ १४६–१५०।

१. डॉ० अम्बा प्रसाद 'सुमन'—प्राकृत पैंगलम् की शब्दावली और वर्तमान ब्रजलोक शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दुस्तानी, सन् १९५६, भाग २०।१।

प्राकृत पैंगलम् के शब्द	आधुनिक ब्रजभाषा
अक्खर (१५८।४)	आखर
अग्गे (२२८।४)	आगैं
अग्गि (३०४।१)	आग
अज्जु (४४८।२)	आजु

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन से दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं—

१. प्राकृत पैंगलम् में दित्व की प्रवृत्ति है और ब्रज में उसका सरलीकृत कोमल रूप ही व्यवहृत होता है।

२. ब्रज के रूपों में क्षतिपूरक दीर्घीकरण की प्रवृत्ति है, कहीं-कहीं इसके अपवाद भी हैं।

हम्मारो हमारो (ब्रज)

साथ ही हिन्दी के जिन क्षेत्रों में दित्व की आज भी प्रवृत्ति है, जैसे बांगड़ू 'अरे अग्गे बड़।' पंजाबी से प्रभावित पश्चिमी हिन्दी का एक रूप, उसका प्राकृत पैंगलम् की भाषा से बहुत अधिक साम्य है।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनमें आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ—

अहीर (२८५।४), आइ (४८५।३), घरु (४६३।१)

कहिओ (२४।५) जैसे रूपों के विकसित रूपों में (इ) के प्रभाव से—य् श्रुति का आगम हुआ है—

कहिओ—कह्यओ—कह्यो—वर्तमान ब्रज कह्यौ

ब्रजभाषा में अनुनासिकता की प्रवृत्ति विशेष है जिसके फलस्वरूप ही पैंगलम् का 'कह' (किसी जगल) ब्रजभाषा में 'कहूँ' बन गया। ब्रजभाषा की इस प्रवृत्ति को अनुस्वार का ह्रस्वीकरण[1] कहा जा सकता है जिसके फलस्वरूप किसी व्यंजन के पहले आया हुआ पूर्ण अनुस्वार संकुचित होकर निकटस्थ स्वर का नासिक्य रह जाता है।

ऐसी अवस्था में कभी तो क्षतिपूर्ति के लिए पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर देते हैं, कभी-कभी नहीं भी करते हैं, जैसे

ब्रजभाषा में वंशी—बाँसुरी

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, १९५८ ई०, ७१००–१०६ द्रष्टव्य—प्राकृत पैंगलम् की भाषा में प्राचीन ब्रज के तत्व।

पंक्ति—पाँत

पंडित—पाँडे

पंच—पाँच

ह्रस्व रूप के साथ : संदेश—सँदेसनि, गोविन्द—गोविँद, रंग—रँग, नन्दनन्दन—नँद नन्दन।

ये अनुनासिक के ह्रस्वीकरण के उदाहरण पूर्ववर्ती स्वर को क्षतिपूर्ति के लिए दीर्घ किये बिना ही दिखाई पड़ते हैं, जैसे

खँघया, सँजुते, चँडसरे, पँचतालीस।

३. प्राकृत कालीन शब्दों के मध्य जो दो स्वरों की विवृत्ति बनी रहती थी वह प्राकृत पैंगलम् से समाप्त होते ही प्रारम्भ हो गई—

अ + उ—ओ	कहिअउ	प्राकृत पैं०	कहिओ	(पृ० २४)
—औ	चउद्दह	प्राकृत पैं०	चौद्दह	(पृ० ४०४)
अ + इ—ए	अच्छइ	प्राकृत पैं०	आछे	(पृ० ४६५)
	आवइ	प्राकृत पैं०	आवे	(पृ० ३५८)

४. प्राकृत कालीन 'व्' का लोप जैसा सन्देश रासक में भी दिखाया जा चुका है।

भेव—प्रा० पैं० भेउ		(पृ० २२०)
ठाव	ठाउ	(पृ० ३३६)
देव	देउ	(पृ० २८५)
घाव	घाउ	(पृ० ५०४)

५. ब्रजभाषा के सर्वनामों के तिर्यक रूपों के पूर्व रूप भी प्राकृत पैंगलम् में विद्यमान हैं—

जा अद्धंगे पव्वई सीसे गंगा जासु

जो लोआणं वल्लहो वंदे पाअं तासु (पृ० १४३)

अन्त में डॉ० शिवप्रसाद सिंह इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहते हैं—'प्राकृत पैंगलम्' की भाषा में ध्वनि और रूप दोनों ही दृष्टियों से प्राचीन ब्रज के प्रयोगों का बाहुल्य है। वाक्य-विन्यास की दृष्टि से तो यह भाषा ब्रज के और निकट दिखाई पड़ती है। निर्विभक्तिक प्रयोग वर्तमान कृदन्तों का सामान्य वर्तमान में प्रयोग,

सर्वनामों के अत्यन्त विकसित रूप इसे ब्रजभाषा का पूर्व रूप सिद्ध करते हैं। क्रिया के भविष्य रूप में यद्यपि इस काल तक 'गा' वाले रूप नहीं दिखाई पड़ते किन्तु 'आवहि' 'करिह' आदि में 'ह' कार प्रकार के रूपों का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा में 'गा' प्रकार के रूप भी मिलते हैं परन्तु 'ह' प्रकार के चलिहै, करिहै आदि रूप भी बहुत हैं।

प्राकृत पैंगलम् तथा 'खड़ी' एवं 'ब्रज'

खड़ी बोली हिन्दी तथा ब्रजभाषा के मूल अन्तर को समझने के लिए डॉ० चटर्जी[1] का मत द्रष्टव्य है—

'ब्रजभाषा के साधारण पुलिंग संज्ञा शब्द तथा विशेषण 'औ' या 'ओ' कारान्त होते हैं। उदा० मेरो बेटो आयो, या मेरो बेटो आयो। वाने मेरो कह्यो न मान्यो, जबकि दूसरे समूह में ये शब्द 'आ' कारान्त होते हैं। उदाहरण 'मेरा बेटा आया', 'उसने मेरा कहा नहीं माना' खड़ी बोली।'

उक्त कथन को यदि मूलाधार मान लिया जाय तो निश्चित रूप से प्राकृत पैंगलम् में जहाँ विद्वानों ने ब्रज के पूर्व रूपों को झाँका है वहाँ उसमें खड़ी बोली के भी पूर्व रूप हैं—

ओकारान्त रूप—भमरो (१९३।४)
मोरो (१९३।४)
काभो (१२२।४)
णाओ (१।४)
हम्मारो(३६१।४)

---

१. डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी—आर्य भाषा और हिन्दी, १९५७, पृष्ठ १९७।

डॉ० चटर्जी के इस सिद्धान्त—ब्रजभाषा में ओकारान्त प्रवृत्ति के अपवाद स्वरूप आकारान्त शब्द भी मिलते हैं जिनकी ओर मिर्ज़ा खां तथा कैलोग ने भी निर्देश किया है, फिर भी यह प्रवृत्ति ही भेद का एक मुख्य आधार मानी जा सकती है। मिर्ज़ा खां के फारसी वाक्य का अनुवाद जियाउद्दीन ने इस प्रकार किया है—

Final 'a' in Hindi is characteristically replaced by 'an' in Braj while it changes to 'O' in Kanauji which is very similar to Braj.

आकारान्त रूप—वंका (५६७।३)

दीहरा (३०६।८)

दोनों प्रकार के प्रयोग भी मिलते हैं—

बुढ्ढा (५४५।२)

बुढ्ढग्रो (५।२)

पृथ्वीराज रासो की भाषा

प्रथम तो पृथ्वीराज रासो ग्रन्थ की प्रामाणिकता ग्रौर उसका काल दोनों ही बहुत विवादास्पद हैं फिर उसकी भाषा के सम्बन्ध में विचार करना ग्रौर भी ग्रधिक विवादास्पद विषय है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्रब तक किये गये कार्यों के ग्राधार पर रासो की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों के चार स्कूल हैं—

१. ग्रपभ्रंश के पक्ष में
२. राजस्थानी (डिंगल) के पक्ष में
३. ब्रजभाषा (पिंगल) के पक्ष में
४. ग्रनेक भाषाग्रों के मिश्रण (षट्भाषा) के पक्ष में।

ग्रन्य विवादों में न जाकर वर्तमान मत की ग्रोर ही यहाँ निर्देश करना पर्याप्त होगा जिसके ग्राधार पर रासो की भाषा पुरानी ब्रज (पिंगल) ही ठहरती है।

सर्व प्रथम वीम्स ने रासो की भाषा को पश्चिमी बोली का प्राचीन रूप स्वीकार किया है। इसका स्पष्ट विवेचन करते हुए तेस्सतोरी ने लिखा 'प्राकृत पैंगलम्' की भाषा की पहली सन्तान प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी नहीं बल्कि भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसका प्रमाण चन्दी की कविता में मिलता है ग्रौर जो भली-भाँति प्राचीन पश्चिमी हिन्दी कही जा सकती है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी ग्रपने शोध प्रबन्ध 'ब्रजभाषा' के पृष्ठ १८ पर लिखा है।' 'भाषा की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की भाषा प्रधानतया ब्रज है जिसमें उसकी ग्रोजपूर्ण शैली के सुसज्जित करने के लिए प्राकृत ग्रथवा प्राकृताभास रूप स्वतन्त्रता के साथ मिश्रित कर दिये गये हैं।······ पृथ्वीराज रासो मध्यकालीन ब्रजभाषा में ही लिखा गया है, पुरानी राजस्थानी में नहीं जैसा कि साधारणतया इस विषय में माना जाता है।' डॉ० वर्मा के इस मत को डॉ० नामवर सिंह ने ग्रपनी थीसिस 'रासो की भाषा' (१९५६) में सिद्ध किया है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में विचारों के विश्लेषण के ग्राधार पर इतना तो निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि रासो की भाषा को प्राचीन ब्रज लिया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पृथ्वीराज रासो की भाषा तत्कालीन ब्रजभाषा (पश्चिमी हिन्दी) में हुई जिसको हम प्राचीन ब्रजभाषा भी कह सकते हैं। इसी को विद्वानों ने 'पिंगल' से व्यक्त किया है जिसमें निश्चित रूप से प्राचीन प्राकृताभास शब्दों की बहुलता है और साथ ही अरबी फारसी के शब्दों का मिश्रण भी।

पिंगल के अन्य प्रमुख ग्रन्थों का नाम-निर्देश मात्र पीछे किया जा चुका है।

उक्ति व्यक्ति प्रकरणम्[1]

यह ग्रन्थ पंडित दामोदर द्वारा लिखा गया है जिसका प्रणयन राजकुमारों को स्थानीय लोक भाषा सिखाने के लिए किया गया। दामोदर पण्डित काशी-कन्नोज के गहडवार नरेश, गोविन्द चन्द्र (१११४-११५५ ई०) के आश्रय में रहते थे।

उक्ति—लोक भाषा अथवा लोक व्यवहार में प्रयुक्त भाषा-पद्धति जिसे हिन्दी में 'बोली' कह सकते हैं—

व्यक्ति—विवेचन

मुनि जी के अनुसार 'लोक भाषात्मक की जो व्यक्ति अर्थात् व्यक्तता 'स्पष्टी-करण' करे—वह है उक्ति व्यक्ति शास्त्र।'

यह ग्रन्थ बारहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में लिखा गया है जिसमें प्राचीन अवधी या कौशली के माध्यम से संस्कृत सिखाने का प्रयत्न किया गया है। यह संक्रान्तिकालीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें पूर्वी हिन्दी के पूर्व रूप सुरक्षित हैं ही पर साथ ही यह मध्यदेश एवं प्राच्य प्रदेश की आर्यभाषा की संक्रान्तिकालीन अवस्था के अध्ययन के भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। डॉ० चटर्जी ने इसकी भाषा का विस्तृत विश्लेषण किया है। इसमें जो बोली के अर्थ में उक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है उसको सीमित अर्थ में लेना ठीक न होगा—यह तो वस्तुतः बोलचाल की भाषा के लिए

---

१. उक्ति व्यक्ति प्रकरणम्—सिंधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त—मुग्धावबोध औक्तिक–मंडन सूरि (१४५० सं०)
बाल शिक्षा –संग्राम सिंह (सं० १३३६)
उक्ति रत्नाकर –साधु सुन्दर गणि (१६वीं शताब्दी)
अज्ञात विद्वत् कर्तृक उक्तीयक–१६वीं शताब्दी

आदि ग्रन्थ भी प्राप्त हुये हैं जिनमें तत्कालीन भाषा—विषयक सामग्री प्राप्त होती है।

प्रयुक्त हुआ है जो तत्कालीन साहित्यिक भाषा से पृथक् रही होगी। यह भाषा भी उतनी ही दिव्य है जितनी संस्कृत[1]।

भाषा-सम्बन्धी प्रमुख विशेषताएँ

१. **पदान्त दीर्घ स्वर को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति—**

आकांक्षा	आकांख
लज्जा	लाज
जिह्वा	जीभ
शय्या	सेज

२. **द्वित्व व्यंजनों को सरल कर दीर्घ करने की प्रवृत्ति—**

भक्त = भत्त = भात
पक्व = पक्क = पाक
मित्र = मित्त = मीत

३. सामान्य वर्तमान काल अन्य पुरुष की क्रियाओं के—इकारान्त रूप मिलते हैं। कहीं-कहीं 'अइ' के 'ए' वाले रूप भी मिलते हैं जिनसे ब्रज के आधुनिक रूप का पूर्व रूप भी आभासित होता है।

चलइ—— { ——चले—पश्चिमी
——चल—पूर्वी रूप }

करइ—— { ——करे—पश्चिमी रूप
——कर—पूर्वी रूप }

४. 'अइ' = अ हो जाने वाली प्रवृत्ति में जहाँ पूर्वी रूप सुरक्षित है वहाँ 'उ' कारान्त प्रातिपादिक (प्रथमा में) हउँ सर्वनाम का बहुल प्रयोग, परसर्गों की दृष्टि से ब्रज के प्रयोग, साथ ही 'हि' विभक्ति का भिन्न कारकों में प्रयोग स्पष्टतया ब्रज का पूर्व रूप[2] सिद्ध करता है।

---

१. **संस्कृत भाषा पुनः परवर्त्यं प्रयुज्यते तक्षऽपभ्रंशभाषैव दिव्यत्वं प्राप्नोति। पतिता ब्राह्मणी कृत प्रायश्चिता ब्राह्मणीत्वमिति चेति।**

२. **(यह भाषा संस्कृत का अपभ्रंश रूप होते हुए भी दिव्यता को प्राप्त है जिस प्रकार पतिता (भ्रष्ट) ब्राह्मणी प्रायश्चित करके ब्राह्मणी ही कहलाती है)**

उक्ति व्यक्ति प्रकरण

This-hi-is a short of mode of all works so to say it would appear to be in a position from literary Apabhramsa and from old Braj.

उक्ति प्रकरण का अध्याय पृ० ३७।

५. 'उ' कार बहुलाप्रवृत्ति—

चोरु = चोर पापु = पाप

६. 'उक्ति व्यक्ति' की भाषा अपभ्रंश में प्रचलित संस्कृत के अर्द्ध तत्सम और तत्सम शब्दों को ग्रहण करके कभी-कभी अपनी ध्वन्यात्मक प्रवृत्ति के अनुसार उसमें भी परिवर्तन कर देती है।

रत्न से रतन
वर्षा से वारिस

७. 'अनुस्वार' लुप्त प्राय: प्रतीत होता है। स्वर मध्यग अनुस्वार तो सम्पर्कित स्वर की सानुनासिकता का परिचायक था, या 'वं' अथवा 'यं' का द्योतक।

गाउँ—गावुँ

विभक्ति प्रत्ययों में सानुनासित रूपों के साथ निरनुनासिक रूप भी मिलते हैं—

तेइं—तेइ
सर्बाहि—सबहि

८. 'न्ह', 'ल्ह', 'म्ह' नवीन महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था—

ऊन्ह —उष्ण
ल्हुसिग्राउ—लुष्टाक
बाम्हण —ब्राह्मण

९. वस्तुत: उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भाषा लोक भाषा की प्रारम्भिक दशा की ओर संकेत करती है। ये संकेत इतने स्पष्ट हैं और साथ ही आधुनिक आर्यभाषाओं के सभी नवीन तत्व—तत्सम प्रयोग, क्रियाओं के नवीन रूप, क्रिया विशेषण, शब्द-रूप इनमें विद्यमान हैं कि आधुनिक खड़ी बोली, ब्रजादि पश्चिमी तथा कौसली भाषा के प्राचीन रूपों का भण्डार इसको कहा जा सकता है।

इस काल के अन्य ग्रन्थ कीर्तिलता, वर्ण रत्नाकर की अपेक्षा इसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है और अरबी-फारसी के शब्दों की कमी है। देशी शब्दों के इतिहास की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है—

भाषा के कुछ नमूने—गंथ न्हाएं धर्म हो, पापु जा—वर्तमान

धर्मु भा पापु गा —भूत
धर्म होइह पापु जाइह —भविष्य

'जस जस धर्मु बाढ़ तस तस पापु घाट'

इस प्रकार क्रियाओं के संक्षिप्त, स्पष्ट और सरल रूपों में[1] ही आगे चलकर आधुनिक भारतीय भाषाओं को जन्म देने की सामान्य प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो गई थीं।

अन्य ग्रन्थ—वर्ण रत्नाकर, चर्यापद, ज्ञानेश्वरी आदि अन्य ग्रन्थ भी संक्रान्तिकालीन भाषा की जानकारी कराने में सहायक सिद्ध हुए हैं जिनका स्थानाभाव से यहाँ अध्ययन नहीं किया जा रहा है।

पुरानी राजस्थानी

पुरानी राजस्थानी पर डॉ० तेस्सितोरी तथा डॉ० चटर्जी ने विशेष कार्य किया है। पुरानी राजस्थानी के द्वारा तेस्सितोरी ने अपभ्रंश और आधुनिक आर्य-भाषाओं के बीच उस खोई हुई कड़ी के पुनर्निर्माण का प्रयत्न किया है जिसके बिना किसी आधुनिक भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण लिखा ही नहीं जा सकता।

पुरानी राजस्थानी की विशेषताएँ

१. अपभ्रंश के व्यंजन दित्व का सरलीकरण और पूर्ववर्ती स्वर का दीर्घीकरण—

   अज्ज—आज

   वद्दल—बादल

   चिब्भड़ि—चीभड

२. अपभ्रंश के दो स्वर-समूहों 'अइ' तथा 'अउ' के उद्वृत्त रूप सुरक्षित हैं।

   अच्छइ—अछइ यही आधुनिक गुजराती में (छे) और हिन्दी में (अच्छा)

   उण्हआलउ ऊण्हालउ

३. परसर्गों की दृष्टि से कितने ही नवीन परसर्ग मिलते हैं—

   कर्म—नइं, प्रति, रहई

   करण—करि, नइं, साति, सिउं

   सम्प्रदान—कन्हइँ, नइँ, प्रति, भणी, भाटइ, रहइं, रइं

   अपादान—कन्हइँ, हुँतउ, हुँती, थउ, थकउ, थाकी, पाहिलगइ, लगी आदि

---

1. Notes on the Grammar of the old western Rajasthani with special reference to Apabhramsa and Gujrati of Marwari नाम से इंडियन एंटीक्वेरी के अप्रैल १९१४ से दिसम्बर १९१४, जनवरी १९१५ से जुलाई १९१५ तक तथा जनवरी १९१६ से जून १९१६ तक प्रकाशित हुए जो बाद में अनुवादित रूप में प्रकाशित हुए—डॉ० नामवर सिंह—पुरानी राजस्थानी, सं० २०१६।

सम्बन्ध—कउ, चउ, तराउ, रउ, रहइँ

अधिकरण—ताँई, मझारि, माझि, मो माँहि आदि ।

इनमें से बहुत से परसर्गों का ब्रजभाषा के परसर्गों से साम्य है ।

डॉ० चटर्जी[1] के अनुसार राजस्थानी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं । इन प्रवृत्तियों से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कहाँ तक उनका साम्य पश्चिमी हिन्दी की बोलियों से हैं—

१. 'अ' के स्थान पर 'इ'
  केसरी—केहिर
  हरिण—हिरण
  कस्तूरी—किस्तूरी
२. इकार के तथा उकार के स्थान पर अकार
  मानुष—माणस
  हाज़िर—हाजर
  मालिक—मालक

  नोट—राजस्थानी के प्रभाव से ही हिन्दी में, हिरन, गिनना, किवाड़ु, सपूत, कपूत, भभूत आदि शब्द हैं ।
३. स्वरों में अग्र अर्द्ध विवृत ।ऐ–(: । तथा अश्च अर्द्ध विवृत । औ–): । राजस्थानी के द्वारा ही हिन्दी में विकसित हुए हैं—
  जैण—हिन्दी जैन
  कौण—हिन्दी कौन
४. अत्यधिक मूर्द्धन्य ध्वनियाँ, 'ट्', 'ठ', 'ड्', 'ढ्', 'ड़्', 'ढ़्', 'ण्', 'ल्' आदि पड़ौसी पंजाबी, बांगड़े में इनका प्रभाव दृष्टिगत होता है ।
५. 'सकार' 'हकार' में बदल जाता है—
  केसरी—केहिर
६. 'हकार' का पश्र्ववर्ती ध्वनियों में मिश्रण—
  बहिन—बहेण, मैण, बैन (ब्रजभाषा में भैन रूप है) ।
  यही गुजराती में ब्हेन है ।

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या द्वारा २७-२८-२९ जनवरी १९४७ को राजस्थानी पर दिये गये भाषण जो अब 'राजस्थानी भाषा' नाम से संकलित हैं—मई १९४९ ।

राजस्थानी हकार तथा महाप्राण व्यंजनों के सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी ने विशेष अध्ययन किया है।

आजकल की गुजराती, राजस्थानी तथा ब्रजभाषा से तत्कालीन अपभ्रंश का साम्य अधिक है पर कभी-कभी यह साम्य हिन्दुस्तानी (खड़ी बोली और पंजाबी) से भी दीख पड़ता है, वर्तमान राजस्थानी बोलियों—मारवाड़ी और ढंढारी, मध्यदेश की भाषा—ब्रज तथा खड़ी बोली द्वारा विशेष रूप से प्रभावित हुई है यह हजारों वर्षों के आपसी घनिष्ठ सम्बन्धों का फल है।

हिन्दवी

मध्यकाल में 'हिन्दुई', 'हिन्दवी' अथवा 'हिन्दवी' दिल्ली के आसपास की वह बोली थी जो हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत होती थी और जिसमें फारसी-अरबी शब्दों का अभाव था। यह वही भाषा है जिसमें कहानी लिखने की प्रतिज्ञा इंशाअल्लाखां ने आगे चलकर १९वीं शताब्दी में की 'हिन्दवी छुट और इसमें किसी बोली का पुट नहीं हो।' हाब्सन जाब्सन[1] के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि यह मद्रास प्रान्त में 'मराठी' भाषा के लिए प्रयुक्त किया जाता हो। यह प्रयोग सर्वथा नवीन है।

दिल्ली के आसपास विकसित होने वाली भाषा को उस काल में हिन्दी या 'हिन्दवी' कहते थे। कभी-कभी स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए इस देहलवी (दिल्ली की भाषा) भी कहा जाता था। भारतीय मुसलमानों में से मुस्लिम साहित्य के एक महान् लेखक तथा अपनी फारसी कविताओं की श्रेष्ठता के कारण फारसी के उच्चतम कोटि के कवियों एवं विद्वज्जनों में उल्लेखनीय नाम अमीर खुसरो (१२५५-१३२५) का है।

अमीर खुसरो और हिन्दवी

१३वीं शताब्दी के अबुल हसन (अमीर खुसरो) हिन्दवी भाषा में लिखने वाले पहले कवि हैं जिनकी भाषा में वर्तमान खड़ी बोली के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगत होते हैं। उनका जन्म एटा के पटियाली नामक गाँव में हुआ था। १२ वर्ष की आयु में आपने कविताएं लिखना शुरू कर दिया जिससे इनके गुरु निजामुद्दीन औलिया विशेष प्रभावित हुए। सन् १२९६ में अलाउद्दीन ने इनका वेतन बढ़ाया और इन्हें 'खुसरुएशारआ' की पदवी दी। अलाउद्दीन के बाद कुतुबद्दीन मुबारक शाह सुल्तान ने खुसरो के कसीदे पर प्रसन्न होकर हाथी के बराबर तोल कर सोना तथा रत्न

1. The term Hinduwi appears to have been formerly used, in the Madras Presidency, for the Marathi language (see a note, in Sir A. Arbuthnots ed. of Munro's Minutes 1. 133) Hobson Jobson, 1903, Page 415.

प्रदान किये । सन् १३२४ में जब निजाममुद्दीन औलिया की मृत्यु का समाचार मिला तो वे तुरन्त उनसे मिलने चले, सारी सम्पत्ति दुःख में लुटा दी, कब्र के पास पहुँच कर बेहोश हो गये और यह दोहा पढ़ा—

गोरी सोवे सेज पै मुख पर डारे केस ।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस ॥

औलिया के पास ही इनको भी दफनाया गया है ।

'१३वीं-१४वीं शती में अमीर खुसरो की कोटि के मुसलमान लेखक का भारतीय देशज भाषा में लिखना एक अपवाद-रूप घटना ही कही जा सकती है ।'

डॉ० चटर्जी[1]

नुह सिपेहर नामक ग्रन्थ में तीसरे सिपेहर में उल्लेख आया है "अन्य भाषाओं के समान हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से हिन्दवी बोली जाती थी किन्तु गौरियों तथा तुर्कों के आगमन के उपरान्त लोगों ने फारसी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया । हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं । सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, धीर, समुद्री, तिलंगी, गूजरी, भावरी, गौरी, बंगाली, तथा अवधी, भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न भागों में बोली जाती हैं । **देहली के आसपास हिन्दुवी भाषा बोली जाती है जो कि प्राचीनकाल से प्रचलित है,** इसके अतिरिक्त अन्य भाषा जिसका प्रयोग केवल ब्राह्मण करते हैं । इसका सर्वसाधारण को कोई ज्ञान नहीं । इसका नाम संस्कृत है ।[2]

कश्मीर के इतिहास[3] में भी एक स्थान पर 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग मिला है 'उसके राज्यकाल में । सुल्तान जैनुल आबदीन बिन सुल्तान सिकन्दर बुतकिशन । सुतूम नामक एक बुद्धिमान था जो कश्मीरी भाषा में कविता करता था और हिन्दवी के ज्ञान में भी अद्वितीय था ।'

हिन्दी के प्राचीनतम नमूनों के लिए द्रष्टव्य है खुसरो की कुछ पहेलियाँ और मुकरियाँ—

एक नार वह दांत दतीली ।
दुबली पतली छैल छबीली ॥
जब वा तिरयहि लागे भूख ।
सूखे हरे चबावे रूख ॥

---

१. आर्यभाषा और हिन्दी, पृष्ठ २१०-२११ ।
२. खलजीकालीन भारत, सन् १९२२, पृष्ठ १८० ।
३. उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग २, १९२९, पृष्ठ २१८ ।

जो बताय वाही बलिहारी।
खुसरो कहे उसे को आरी॥
इधर को आवे उधर को जावे।
हर-हर फेर काट वह खावे॥
ठहर रहे जिस दम वह नारी।
खुसरो कहे उसे को आरी॥
स्याम बरन और दांत अनेक।
लचकत जैसे नारी॥
दोनों हाथ से खुसरो खींचे।
और कहे तू आरी॥

एक नार तरवर से उतरी।
सर पर वावे पांव॥
ऐसी नार कुनार को।
मैं ना देखन जांव॥

रोटी जली क्यों?
घोड़ा अड़ा क्यों?
पान सड़ा क्यों?

दकनी

हमारे साहित्य में दक्षिण, दक्षिणापथ और दक्खन[1] तीन शब्द चलते हैं। गत छः शताब्दियों से 'दक्खिन' या 'दक्खन' शब्द सीमित क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् दक्खिन शब्द उस भू-भा के लिए प्रयुक्त होने लगा जो किसी समय दक्षिणापथ था। खानदेश, बरार और अपरान्त को छोड़कर शेष महाराष्ट्र दक्खिन कहलाने लगा। गोदावरी और कृष्णा के मध्य का प्रदेश दक्खिन कहलाया। अकबरकालीन दक्खिनी सीमाओं में परिवर्तन हुआ। औरंगजेब ने छः प्रदेशों को मिलाकर दक्खिन प्रान्त की रचना की।

बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद, बीजापुर। इस प्रदेश के एक कवि वजही ने दक्खिन के सम्बन्ध में लिखा है—

---

१. इनके प्रयोगों के इतिहास पर एक लेख दृष्टव्य है—
डॉ० श्रीराम शर्मा—दक्षिण, दक्षिणापथ और दक्खन, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६, सं० ४ पृष्ठ ७१-७७।

दखन-सा नई ठार संसार में।
पंच फ़ाज़िलां का है इस ठार में॥
दखन है नगीना अंगूठी है जग।
अंगूठी कूं हुरमत नगीना है लग॥
दखन मुल्क कूं धन अजब साज है।
के सब मुल्क सरहोर दखन ताज है॥
दखन मुल्क मोती च खासा अहै।
तिलंगना इसका खुलास अहै॥

(कुतुब मुश्तरी पृष्ठ १७६)

दक्खिनी का प्रयोग हिन्दी की भाँति दो अर्थों में होता है—

१. दक्षिण निवासी मुसलमान।
२. दक्खिनी या दकनी-ज़बान।

हाब्सन जाब्सन[1] के अनुसार देकनी हिन्दुस्तान की एक विचित्र भाषा है जिसे मुसलमान बोलते हैं। इसकी प्रथम आवृत्ति सन् १५१६[2] में हुई जिसमें इसको देश की स्वभाविक भाषा स्वीकार किया गया है। यह इस बात का प्रमाण है कि १५वीं शताब्दी के अन्त तक यह भाषा का रूप ले चुकी होगी।

दकनी के सम्बन्ध में डॉ० चटर्जी[3] का मत है.........पश्चिमी हिन्दी की 'ओ' कारान्त बोलियों से एक प्रचलित सार्वदेशिक भाषा का जन्म हुआ, जिस पर १३वीं शताब्दी एवं तत्पश्चात् आद्य पंजाबी का भी थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा। १६वीं शताब्दी में प्रथम बार दक्कन में इसके एक रूप का साहित्य के लिए उपयोग हुआ, जो ब्रजभाषा से मिलकर उत्तरी भारत की भविष्य की साहित्यिक भाषा का प्रारम्भिक स्वरूप बना। इसी सार्वदेशिक भाषा के दकनी रूप का दक्षिण में गोलकुण्डा आदि स्थानों में काव्य रचना के लिए होते उपयोग का आदर्श सामने रखते दिल्ली के

---

१. हाब्सन जाब्सन, सन् १९०३, पृष्ठ ३०२ से।
Deccany, adj. also used as subst. Properly dakhini, dakkhini, dakhni, coming from the Deccan. A (Mohommedan) inhabitant of the Deccan. Also the very peculiar dialect of Hindustani spoken by such people.

2. 1516. The Decani language, which is the natural language of the country." Barbosa, Durate : A Description of the Courts of E. Africa & Malabar in 16th century.

३. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी—आर्य भाषा और हिन्दी, वही, पृष्ठ २१७।

मुसलमानों ने भी सर्वप्रथम इसे फारसी लिपि में लिखकर इसका काव्य के लिए व्यवहार किया।

तत्कालीन राजभाषा—दकनी

उत्तर भारत में खड़ी बोली की इस परम्परा की रचना कई सदियों तक लुप्त रही, दक्खिन में इन्हीं सदियों में यह खूब फूली फली। इसका एक ही कारण समझ में आता है और वह यह कि उत्तर भारत वालों का फ़ारस आदि से बराबर सम्पर्क जारी रहा। नए-नए राजवंश आ-आकर कब्जा करते रहे और अपने-अपने देशों से लाये हुए फारसी के कवियों और ग्रन्थकारों को आदर, मान देते रहे। इस प्रकार उत्तर भारत में फारसी का प्रभुत्व कायम रहा और करीब १८वीं सदी के मध्य तक अडिग रहा। पर दक्खिनी रियासतों में यह विदेशी सिलसिला नाममात्र को रह गया। औरंगजेब ने जब दक्खिन जीत लिया तब जाकर बड़ी तादाद में आना जाना फिर शुरू हुआ। इसलिए हिन्दी ने जो कदम दक्खिन में जमाए उन्हें फारसी हिला न सकी। प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है कि बहमनी राज्य के दफ्तरों में हिन्दी जबान प्रचलित थी और **सल्तनत ने उसे सरकारी जबान का पद दे रक्खा था।** बहमनी राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी हिन्दी का यह पद उत्तराधिकारी रियासतों ने कायम रक्खा[1]।

दकनी की प्रमुख विशेषताएँ

डॉ० सक्सेना[2] के अध्ययन के आधार पर दकनी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) हिन्दी बोलचाल के सभी स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ दक्खिनी में भी मौजूद हैं। डॉ० क़ादरी का कथन है कि उकार और ओकार के बीच का एक स्वर दक्खिनी में और सुनाई पड़ता है जो उत्तर भारत की बोलचाल में नहीं सुनाई पड़ता, पर जो द्राविड़ी में मिलता है। स्टैंडर्ड पट्ठा शब्द का दक्खिनी रूप पुट्ठा है जिसका उकार, न 'उ' ही है और न 'ओ' ही। यदि पास-पास के दो अक्षरों में दोनों जगह दीर्घ स्वर हो, तो पहले का उच्चारण कभी-कभी ह्रस्व हो जाता है।

(२) हिन्दी बोलचाल के सभी व्यंजन भी दक्खिनी में मिलते हैं। पढ़े-लिखों की भाषा में फारसी-अरबी के भी कुछ व्यंजन आ गये हैं—ख़, ज़, ग़, फ़, क़।

---

१. डॉ० बाबूराम सक्सेना—दक्खिनी हिन्दी, १९५२ ई०, पृष्ठ ३३–३४।

२. वही, पृष्ठ ४३ से ४६ तक।
इसी दिशा में डॉ० श्रीराम शर्मा ने भी कार्य किया है।

(३) उत्तर भारत की बोलचाल में जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्धन्य ध्वनियाँ पास-पास के अक्षरों में आती हैं, वहाँ दक्खिनी में पहली के स्थान पर दन्त्य ध्वनि आ जाती है।

तुटे (टूटे), थंडी (ठंडी), दाट (डाट), दबटना (डपटना)

(४) स्टैंडर्ड खड़ी बोली में जहाँ शब्द के मध्य का दीर्घ व्यंजन ह्रस्व हो गया है और प्रतिकार में, पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ, वहाँ दक्खिनी में बहुधा व्यंजन दीर्घ ही पाया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व।

सुन्ना (सोना), चुन्ना (चूमा)

खड़ी बोली की बोलचाल में भी यह विशेषता पाई जाती है, गाड्डी।

(५) दक्खिनी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अल्पप्राण मिलती है—

चाक (चाख), रकते (रखते), पिगले (पिघले)
बिचड़ावे (बिछड़ावे), छाच (छाछ), पिचें (पीछे), समज (समझ)
उट (उठ)
हात (हाथ), हत्ती (हाथी), सात (साथ) बोलचाल में उत्तर में भी
बाँदकर (बाँधकर), अदिक (अधिक)
जीब (जीभ)
पिनाना (पिन्हाना), कुमलाते (कुम्हलाते)

शब्द के मध्य का (ह) कहीं-कहीं बिलकुल लुप्त हो जाता है, कया (कहा), कता (कहता), कते (कहते), ठैरते (ठहरते) आदि।

रेख्ता

रेख्ता हिन्दी की वह शैली है जिसमें फारसी शब्दों का सम्मिश्रण हो। रेख्ता उर्दू का पर्यायवाची नहीं है। रेख्ता शब्द का प्रयोग सबसे पहले 'सादी' दक्खनी के कलाम में मिलता है, जो 'वली' दक्खिनी से पूर्व आदिलशाह अव्वल के समय में सन् १५८६ में हुआ है।[1] रेख्ता उर्दू गद्य की भाषा का पर्याय नहीं था, हो सकता है उर्दू पद्य का पर्याय रहा हो। रेख्ता की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ मत हम यहाँ दे रहे हैं—

रेख्ता—शब्द फ़ारसी मसदर 'रेख्तन'—जिसका अर्थ छिड़कना है।

रेख्ता—'विभिन्न भाषाओं के शब्दों से—मुख्तलिफ़ ज़बानों के अल्फाज से—इसे रेख्तो पुष्ट या अलंकृत किया गया है, जैसे ईंट की दीवार को चूने या सीमेंट के पलस्तर से पायदारी और हमवारी, मजबूती

१. पद्मसिंह शर्मा—हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, १९५१, पृष्ठ १८।

और सजावट के लिए रेख्ता करते हैं।[1] पक्की इमारत जो मिट्टी वा लकड़ी की न हो बल्कि ईंट, चूने, पत्थर, की हो। इस अर्थ में सौदा ने प्रयोग किया है।

रेख्ता—बमानी गिरे हुए हैं जो ज़बान अपनी असलियत से गिर जाय जबान रेख्ता—मुंशी दुर्गाप्रसाद नादिर—

शम्शुउल उलेमा मुहम्मद हसन कहते हैं, इसका नाम रेख्ता शाहजहाँ के जमाने में मुसलमान कवियों ने रक्खा। कुछ अँग्रेजी कोषकारों तथा भाषाविदों का मत भी दृष्टव्य है—

बाटे—The Hindustani language (being mixed one) is called Rekhta.

फैलन—Hindustani verse written in the tones and idioms of women with their peculiar sentiments and characteristics.

ग्रियर्सन—Rekhta (Scattered or mixed) is the form which Urdu takes when used by men especially when employed for poetry.

इस प्रकार रेख्ता की व्युत्पत्ति कुछ भी रही हो, यह निश्चित है कि बहुत कुछ जिस अर्थ में आजकल उर्दू का व्यवहार होता है उसी अर्थ में इसका व्यवहार होता होगा। यद्यपि यह शब्द उर्दू भाषा का पर्याय नहीं था, पर आजकल इसका प्रयोग नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस भाषा को किसी समय तक रेख्ता कहा जाता था उससे मिलती-जुलती भाषा को ही कालान्तर में उर्दू कहा जाने लगा।

उर्दू

केन्द्रीय मुगल सरकार का भारत के लिए विशेष कार्य १७-१८वीं शताब्दी में हिन्दी का प्रसार है। फारसी के अपदस्थ हो जाने पर हिन्दी का फारसीयुक्त रूप 'ज़बाने उर्दू ए-मुअल्ल' शाही खेरे या दरबार की भाषा—एक प्रकार की बादशाही भाषा बनी जिसका १८वीं सदी में फौज-शासन की दृष्टि से मुग़ल साम्राज्य के शासन में प्रयोग होता था।

भाषा के अर्थ में इसका सर्वप्रथम प्रयोग सन् १७५२ ई० में मीर कृत निकातुश्शोअरा में हुआ है। उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है लश्कर

---

१. शम्सउल उलेमा—आबेहयात।

(छावनी)। प्रारम्भ में मुगल और तुर्क बादशाह छावनी में रहा करते थे। उनका दरबार तथा रनवास सब लश्कर ही में होता था। बागोबहार के लेखक मीर अम्मन ने इसके सम्बन्ध में लिखा है।

"हीक़ीकत उर्दू ज़ुबान की बुज़ुर्गों के मुँह से यूँ सुनी है कि दिल्ली शहर हिन्दुओं के नज़दीक चौजुगी है, वहाँ राजा, परजा कदीम से रहते थे और अपनी भाखा बोलते थे।.......लश्कर का बाजार शहर में दाखिल हुआ इस वास्ते शहर का बाजार उर्दू कहलाया।.......इक़ट्ठे होने से आपस में लेन-देन सौदा मुल्क सवाल जवाब करते एक ज़ुबान उर्दू की मुकर्रर हुई।"

शम्शुलउलेमा मुहम्मद हुसन ने भी लिखा है कि "उर्दू का दरख्त अगर्चे संस्कृत और भाषा की जमीन में उगा, मगर फ़ारसी की हवा में सरसब्ज़ हुआ है।"

इस सम्बन्ध में मौ० सुलेमान नदवी का उद्धरण भी द्रष्टव्य है लेकिन हकीकत यह मालूम होती है कि हर मुमताज सूबे की मुकामी बोली में मुसलमानों की आमदवरफ्त और मेल-जोल से जो तग़ेयुरात हुए उन सबका नाम उर्दू रक्खा गया है।" इस प्रकार उर्दू यद्यपि अपने मूल में शाही है पर कालान्तर में वह जनसाधारण की आम बोलचाल की भाषा हो गई। इसका उद्‌गम और विकास बिल्कुल हिन्दी के साथ-साथ हिन्दी की एक शैली[1] विशेष के रूप में हुआ केवल शब्द विशेष ही उसमें अरबी-फारसी के विशेष हैं।

हिन्दुस्तानी

हमारी भाषा का यह नामकरण यूरोपियन लोगों की देन माना गया है। १७वीं शताब्दी में जब पुर्तगाली लोग भारत में आये तो उन्होंने हमारे यहाँ की भाषा का नाम अपनी सूझ-बूझ के अनुसार इन्दोस्तान रक्खा। हिन्दुस्तानी, हिन्दोस्तानी नाम जिस अर्थ में आज प्रचलित हो गया है वस्तुत: वह बहुत नवीन है। मूलत: इसका प्रयोग 'भारत की भाषा' के अर्थ में हुआ जिसका इतिहास बाबरकालीन[2] पहुँचता है और १५वीं-१६वीं शताब्दी में इसका पर्याप्त प्रचार हो गया था।

---

१. डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी—आर्य भाषा और हिन्दी, पृष्ठ २१७।

२. बाबर का एक उद्धरण मेमोर्ज आव् बाबर से दिया जा रहा है जिसका अनुवाद डॉ० रिजवी के अनुसार दिया जा रहा है। ५ जनवरी १५२६ ई०
"मैंने उसे अपने सामने बैठाकर एक व्यक्ति को जिसे हिन्दुस्तानी (भाषा) का भली-भाँति ज्ञान था। अपनी एक-एक बात को उसे समझाने का आदेश दिया" मुगलकालीन भारत—बाबर, १९६०, पृष्ठ १४५।

हाब्सन जाब्सन[1] ने हिन्दुस्तानी को उर्दू का पर्याय समझा है। पुराने विचार के एंग्लो इंडियन्ज़ इसको 'मूर' भी कहते हैं। हाब्सन जाब्सन ने इसके प्रयोग के कुछ उद्धरण भी दिये हैं—

प्रथम—सन् १६१६—इन्दोस्तान या गँवारी भाषा।[2]

सन् १६७३—कोर्ट की भाषा फारसी थी, जनसाधारण में बोलचाल की भाषा 'इन्दोस्तान' थी।[3]

सन् १६७७—के उद्धरण से ज्ञात होता है कि २० पौंड का पुरस्कार इन्दोस्तान भाषा की विशेष योग्यता प्राप्त करने पर दिया जाता था।[4]

इसके बाद के अनेक उद्धरण दिये गये हैं जिनके उद्धृत करने की विशेष आवश्यकता नहीं। मुख्य बात यह है कि १७वीं शताब्दी में जनता की भाषा मध्य-देशीय हिन्दुस्तानी ही थी। आज हिन्दुस्तानी से तात्पर्य यह समझा जाता है कि हिन्दी भाषा का वह रूप जिसमें विदेशी भाषाओं के शब्द अधिक हों।

कबीर की भाषा[5]

भावों की अभिव्यक्ति का साधन ही भाषा है। सन्तकाव्य की भाषा सामान्य जनता की भाषा है। कबीर ने जिस वाणी का प्रयोग किया वह लोक-वाणी थी क्योंकि वह अपने सन्देश को जन-जन के मानस तक पहुँचाना चाहते थे, वह किसी एक प्रदेश के नहीं, सार्वदेशिक थे, अतएव उनकी भाषा भी सार्वदेशिक भाषा थी, इसीलिए उन्होंने कहा—

'संस्कीरत है कूपजल, भाषा बहता नीर।'

---

१. **हाब्सन जाब्सन, १९०३ के पृष्ठ ४१७ से** The language of that country but in fact the language of the Mohammedans of upper India and eventually of the Mohammdans of the deccan, developed out the Hindi dialect of the Doab chiefly, and the territory round Agra & Delhi.

२. **वही पृष्ठ ४१७ से**—Indostan or more vulgar language.

३. **वही पृष्ठ ४१७ से**—The language at court is Persian, that commonly spoke is Indostan.

४. **वही पृष्ठ ४१७ से**—The renew the offer of a reward of lbs. 20 for proficiency in the Gentor or Indostan languages and sanction a reward of lbs. 10 each for proficiency in the Persian language.

५. **कबीर की भाषा के सम्बन्ध में द्रष्टव्य है—**
कैलाश चन्द्र भाटिया—कबीर की भाषा, राष्ट्रवाणी, सितम्बर १९६०, पृष्ठ ९८-१००।

बहते नीर का प्रयोग अपनी वाणी में किया। उनकी वाणी सहज थी, उसमें जनप्रिय लोकोक्तियाँ भरी पड़ी हैं। कबीर द्वारा प्रयुक्त इस जनभाषा अथवा लोकभाषा को किसी एक भाषा के नाम से अभिहित नहीं कर सकते। कबीर की समन्वय साधना तथा लोक-तत्व की प्रधानता इस युग-पुरुष गाँधी में थी। जिस प्रकार काशीवासी होते हुए भी कबीर की भाषा काशी की नहीं वरन् लोक की भाषा है जिसमें पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी भाषा के तत्व अधिक विद्यमान हैं तथा अनेक बोलियों, भाषाओं के शब्द, कारक, चिह्न, क्रिया रूपों का मिश्रण है, उसी प्रकार गांधीजी ने भी गुजरात प्रदेश में जन्म लेकर जन-भाषा का प्रयोग किया जिसमें हिन्दी, उर्दू, चलते अँग्रेजी तथा संस्कृत शब्द तो थे ही पर अज्ञात रूप से विभिन्न प्रदेशों की शब्दावली भी उसमें बढ़ती जा रही थी। वही भाषा का रूप आज आचार्य विनोबा भावे की भाषा का बनता जा रहा है। गांधी जी ने अपनी इस भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम से अभिहित करने की चेष्टा की थी, इसी प्रकार का नाम हम कबीर की भाषा को दे सकते हैं कि वह 'तत्कालीन हिन्दुस्तानी भाषा' थी। कबीर ने इस लोक-भाषा की शक्ति को पहचाना था और उसे अपनाकर स्वाभाविक बल के साथ उसका विकास किया। कबीर की भाषा पर सबसे अधिक विवाद कबीर के निम्नलिखित दोहों को लेकर ही हुआ—

बोली हमारी पूरब की, हमें लखा नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै, घर पूरब का होय॥

'पूर्व की बोली' से कुछ लोगों ने काशी की बोली से तात्पर्य लिया और कुछ लोगों ने इससे अर्थ—देश-विदेश की भाषा नहीं, हृदय-देश में 'होने वाले आध्यात्मिक अनुभव की वाणी या आदि-वाणी' से लिया।

हमारी दृष्टि से दूसरा मत ही मान्य है। वस्तुतः कबीर की भाषा पचमेली सधुक्कड़ी[1] भाषा ही थी जो उस समय की राष्ट्रभाषा थी।

---

१. सधुक्कड़ी पर टिप्पणी देखिए—रामचन्द्र शुक्ल-बुद्ध चरित (भूमिका), सं० १९७९, पृष्ठ १६।

'खड़ी बोली' मुसलमानों की भाषा हो चुकी थी। मुसलमान भी साधुओं की प्रतिष्ठा करते थे चाहे वे किसी दीन के हों। इससे खड़ी बोली दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों को साथ लगाने वाले और किसी एक के भी शास्त्रीय पक्ष से सम्बन्ध न रखने वाले साधुओं के बड़े काम की हुई जैसे इधर अंग्रेजों के काम की 'हिन्दुस्तानी' हुई।

मध्यदेश[१] और उसकी भाषा की परम्परा

मध्यदेश का वर्णन वेद की संहताओं में नहीं आया। ऐतरेय ब्राह्मण में प्रथम-प्रथम इसका उल्लेख मिलता है। निरन्तर मध्यदेश की सीमाओं में अन्तर होता रहा। मध्यदेश का उल्लेख अलबेरूनी (१०८७) के भारत वर्णन में इस प्रकार आया है :—

भारत का मध्य कन्नोज के चारों ओर का देश है जो मध्यदेश कहलाता है। भूगोल के विचार से यह मध्य या बीच देश है क्योंकि समुद्र और पर्वतों से बराबर दूरी पर है। गर्म और शीत प्रधान प्रान्तों से भी वह मध्य में पड़ता है। इसके सिवाय यह देश राजनीतिक दृष्टि से भी केन्द्र है क्योंकि प्राचीन काल में यह देश भारत के सबसे प्रसिद्ध वीर पुरुषों और राजाओं की वासभूमि थी।[२]

डॉ० चटर्जी[3] ने इस मध्यदेश की भाषा परम्परा में हिन्दी को रखते हुए कहा है हिन्दी कम से कम तीन हजार वर्षों की एक धारा—एक सिलसिले के अन्त में आ रही है""हिन्दी एक प्रवाह या परम्परागत वस्तु है—अचानक सामने आकर खड़ी हुई कोई नई चीज नहीं है।" मध्यदेशीय भाषा-परम्परा में निम्नलिखित धारा के अनुसार हिन्दी की अंात: प्रादेशिकता की मर्यादा मिली—

१. संस्कृत।
२. प्राचीन शौरसेनी जिसका एक साहित्यिक रूप, पालि।
३. शौरसेनी प्राकृत।
४. शौरसेनी अपभ्रंश तथा उसी का रूपभेद नागर अपभ्रंश।
५. राजस्थानी की पिंगल तथा पुरानी ब्रजभाषा।
६. मध्यकालीन ब्रजभाषा-ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली की मिश्र शैली।
७. दकनी।
८. दिल्ली की खड़ी बोली।
९. आधुनिक नागरी हिन्दी और उसका मुसलमानी रूप उर्दू।

उपर्युक्त मध्यदेशीय भाषा-परम्परा में से आधी धारा तक का वर्णन पीछे किया जा चुका है, शेष धारा का वर्णन भी इन्हीं पृष्ठों में आगे होगा—

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—मध्यदेश का विकास, विचारधारा, पृष्ठ १३६-१५२।
२. वही, पृष्ठ १५१।
३. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—शौरसेनी भाषा की प्राचीन परम्परा, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ८१।

मध्यदेशीय भाषा

मध्यदेश की भाषा को ही मध्यकाल में मध्यदेशीय भाषा भी कहा गया है। मध्यदेश और उसमें प्रयुक्त भाषा 'सुभाषा' नाम से सर्वप्रथम उल्लेख केशवदास ने कवि प्रिया।[1] (१६००) में किया है।

फ़कीरुल्ला ने भी (१६६६ ईस्वी) मान कुतूहल का अनुवाद फारसी में करते हुए इस मध्यदेश को 'सुदेश' कहा है। उन्होंने इस खण्ड की तुलना ईरान के शीराज से की है। इस प्रदेश की भाषा को सबसे अच्छा बताया है।

बनारसीदास जैन का 'अर्द्ध कथानक'

बनारसीदास जैन ने अपने ग्रन्थ 'अर्ध कथानक'[2] में १६६८ ई० में स्पष्ट रूप से इस ग्रन्थ की भाषा 'मध्यदेश की बोली' कहा है—

चौपाई

मध्यदेस की बोली बोलि।
गर्भित बात कहौं हिय खोलि ॥
भाखूँ पूरब-दसा चरित्र ।
सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥७॥

दोहरा

याही भरत सुखेत में, **मध्यदेश सुभ ठाँउ।**
बसै नगर रोहतगपुर निकट बहोली गाँउ ॥८॥

अर्द्ध कथानक की भाषा—

अर्द्ध कथानक की भाषा के सम्बन्ध में डॉ० हीरालाल जैन[3] ने संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है—

---

१. आछे आछे असन, बसन, बसु, बासु, पसु,
दान, सनमान, यान, बाहन बखानिये।
लोग, भोग, योग, भाग, बाग, राग रूपयुत,
भूषननि भूषित *सुभाषा मुख जानिये* **।**
सातों पुरी, तीरथ, सरित सब गंगादिक,
केशोदास परण पुराण गुन-गनिये ।
गोपाचल ऐसे गढ़ राजी रामसिंह जू सु,
देशनि की मणि महि मध्यदेश जानिये ।

२. अर्द्ध कथानक, स्व० नाथूराम प्रेमी, सन् १९५७, पृष्ठ २।

३. वही, पृष्ठ भूमिका, १६-१६।

१. व्यंजन 'श' के स्थान पर 'स'

पार्श्व—पास
वंश—बंस
होशियार—हुसियार

'ष' का भी 'स'

वर्ष—बरस
विशेष—विसेस

कहीं-कहीं अपवाद भी मिलते हैं, दुष्ट, विषाद, भेष, हरषित।

२. **स्वर भक्ति से व्यंजन गुच्छ टूट जाते हैं।**

जन्म—जनम
पदार्थ—पदारथ
पार्श्व—पारस, पास रूप भी चलता है

३. संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त से बनी सकर्मक क्रियाओं के साथ 'न' का प्रयोग—

खरगैसन कौ रायनैं दिए परगने च्यारि।

४. कारक—करण—सौं—एक पुत्र सौं सब किछु होइ।
सम्प्रदान—कौं—पिता पुत्र कौं आई मीच।
सौं—कहै मदन पुत्री सौं रोइ।
कूँ—तब चटसाल पढ़न कूँ गयौ।
अपादान सूँ—तब सुँ करै उद्दम की दौर।
सम्बन्ध—के, की, का, कौ आदि
अधिकरण—मैं, माँहि आदि

अर्द्ध-कथानक में उर्दू फारसी के शब्द काफी तादाद में आये हैं और अनेक मुहावरे तो आधुनिक खड़ी बोली के कहे जा सकते हैं। बनारसीदास जी ने अर्द्ध कथानक की भाषा में ब्रजभाषा की भूमिका लेकर उस पर मुगलकाल में बढ़ती हुई प्रभावशाली खड़ी बोली का पुट दिया है और इसे ही उन्होंने 'मध्यदेश की बोली' कहा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेश में काफी प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रकार अर्द्ध कथानक भाषा की दृष्टि से खड़ी बोली के आदिमकाल का एक अच्छा उदाहरण है।

ग्वालियरी

इस युग की भाषा 'ग्वालियरी' नाम से भी पर्याप्त प्रचलित थी जिसको

ओर अगरचन्द नाहटा[1] ने 'ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ' लेख लिखकर ध्यान आकर्षित किया। जगकीर्ति ने सं० १६८६ में इसका प्रयोग किया है। दकिनी में भी ग्वालियरी का प्रयोग मिलता है। राहुल[2] जी ने सबरस की एक प्रति से कुछ उद्धरण दिये हैं—

१. होर ग्वालेर के चातुरां गुन के गुरां यों बोले हैं
२. होर ग्वालेर के सुजान, यों बोलत हैं जान···
३. जहां लगन ग्वालेर के हैं गुनी·······

ग्वालियर के चतुरों की भाषा ~~का~~ निस्सन्देह महत्व रहा होगा।

ग्वालियरी का स्पष्ट उल्लेख जयकीर्ति ने किया है—

'ग्वालेरी भाषा गुपिल मंद अरथ मित भाव।'

सन् १८११ में लिखित ब्रजभाषा के व्याकरण में लल्लूलाल[3] ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

देस-देसतें होत सो भाषा बहुत प्रकार।
बरनत हैं तिन सबन में ग्वालियरी रससार॥

"Braj Bhakha or the language spoken by the Hindus in the country of Braj, in the District Goaliyar........"

मध्यदेश की भाषा ही भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपने नाम बदलती रही। प्रारम्भ से ही यह देश की भाषा का परिनिष्ठित रूप सुरक्षित रक्खे रही। यही वह भाषा रही जिसमें सुप्रसिद्ध कवि काव्य रचना करते रहे। यहीं की भाषा है जिसमें लोकनायक जनता को उपदेश देते रहे चाहे वह ईसा पूर्व बुद्ध द्वारा प्रयुक्त पालि हो, चाहे मध्यकालीन कबीर की सधुक्कड़ी भाषा हो और चाहे वह आधुनिक काल की बापू और विनोबा की हिन्दुस्तानी हो।

---

१. १५वीं शताब्दी के अन्त अथवा १६वीं के प्रारम्भ की रचना है इति श्री हितोपदेश ग्रन्थ *ग्वालेरी भाषा* लब्ध प्रगासेन नाम पंचमो आख्यान हितोपदेश सम्पूर्ण।"
२. हरिहर निवास द्विवेदी—मध्यदेशीय भाषा-ग्वालियरी, सं० २०१२, पृष्ठ २४।
३. General Principles of infections and conjugation in the Braj Bhakha ; Lallo Lal Kavi, 1811.
हिन्दी विद्यापीठ ग्रन्थ वीथिका, १९५७, पृष्ठ १७९।

मध्यदेश की परम्परा में ही १०वीं शताब्दी से आधुनिक लोकभाषाएँ—ब्रज तथा खड़ी हाथ में हाथ डालकर अवतीर्ण हुईं।[1] प्रारम्भ में कभी कोई अधिक प्रकट होती थी कभी कोई। खड़ी बोली की ही भिन्न आकारान्त प्रवृत्ति क्यों हुई इसका कारण पंजाबी का प्रभाव है। डॉ० चाटुर्ज्या का मत है किसी कारण वश दिल्ली में विकसित नई भाषा (खड़ी बोली) पर पंजाबी, बांगरू जनपद हिन्दुस्तानी का सम्मिलित प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है। खड़ी बोली में दित्व व्यंजन-सुरक्षा को भी पंजाबी का प्रभाव माना जा सकता है। ब्रजभाषा अपनी परम्परा सुरक्षित रखते हुए स्वाभाविक रूप से विकसित हुई—सविभक्तिक पद का विप्रयोग चलता रहा—घरहिं, द्वारे, मधुपुरिहिं आदि। उकार बहुला प्रवृत्ति जो प्रारम्भ में अपभ्रंशों में थी, मध्यकाल में राउर वेल, सन्देश रासक, जैसे ग्रन्थों में रही वह आजतक ब्रज में चली आ रही है। ब्रज के आधुनिक उकार बहुल रूप प्राचीन प्रधान अपभ्रंश की ओर ध्यान आकर्षित कर देते हैं जिस परम्परा में ब्रज भाषा विकसित हुई है।

दण्डी ने काव्यादर्श (१।३६) में आभीरादि भाषाओं को ही अपभ्रंश

---

१. इस सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र के विचार दृष्टव्य हैं—
"खड़ी बोली का आरम्भ ब्रजभाषा के साथ ही साथ हुआ माना जाना चाहिए। हिन्दी अपने जन्म से ही ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के साथ खड़ी बोली की प्रवृत्ति को लिये आयी थी। हिन्दी के विकास में इतिहासों में जो, हिन्दी की मूल अपभ्रंश के उदाहरण उद्धृत किये हैं, उनसे, और राहुल जी द्वारा आविष्कार किये हुए सिद्धों के गीतों से यह स्पष्ट होता है कि दोनों की प्रवृत्तियाँ सहज थीं।.........तो ब्रजभाषा के हाथ में हाथ दिए खड़ी बोली उतरी, पर आरम्भ से ही उसने लचकना या झुकना न जाना था, जो उसकी आकारान्तात्मकता से स्वयंसिद्ध है। फलतः वह काव्य भाषा न बन सकी, क्योंकि उस समय कविता के लिए भाषा में कोई बन्धन नहीं स्वीकार किया जा सकता था। जिस भाषा में कवि शब्दों को तोड़-मरोड़ कर जैसा भी चाहे वैसे ही अनुकूल बना लेने के लिए स्वतन्त्र हो तो वही भाषा सुगम हो सकती है और ऐसी ही भाषा वह प्रयोग कर सकेगा यदि इस विधि का अनुकरण खड़ी बोली में हो तो वह खड़ी बोली नहीं रह पाती। इस प्रकार यह खड़ी बोली उपेक्षित रही, पर मर नहीं सकी। यदाकदा जैसे अमीर खुसरो की रचनाओं में, कहीं-कहीं भूषण में, गंग में इसका रूप प्रस्फुटित होता रहा और इसके अस्तित्व की साक्षी मिलती रही। डॉ० सत्येन्द्र—गुप्तजी की कला, १९५९, पृष्ठ १-२।

माना है[1]। नाट्यशास्त्र[2] में हिमवत् सिन्धु सौवीर इसका प्रचार क्षेत्र बताया गया है। पालि अपने ऋतु-उत, वृक्ष-रुक्ख के कारण भी इसी परम्परा का प्रारम्भिक रूप सुरक्षित रक्खे हुए है।

इसके अतिरिक्त द्वित्व की सरलता की ओर झुकाव ब्रज में बना रहा, इसके भिन्न खड़ी बोली परसर्ग युक्त शब्दों को ग्रहण करती हुई द्वित्व प्रधान शब्दों को सुरक्षित रक्खे रही। खड़ी बोली के इस आदि रूप के माध्यम से सन्तों ने अपने सन्देश प्रचारित किये थे जिसमें अपभ्रंश के अंश विद्यमान थे और जो पंजाबी, राजस्थानी की विशेषताओं को समाहित किये हुये भी थी।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हुये कहते हैं, खड़ी बोली और ब्रज के विकास पर ठीक ढंग से विचार होना चाहिए। ब्रजभाषा खड़ी बोली की आरम्भकाल से उसके कुछ पहले से ही एक अटूट शृंखला में विकसित होती आ रही है। इस भाषा के बहुत से पद सन्तों की वाणियों के रूप में संकलित हैं जो इसकी शक्ति और विकासावस्था के सूचक हैं। ब्रजभाषा कोई काल्पनिक वस्तु नहीं, वह शौरसेनी की परम्परा में उत्तराधिकारिणी और ११वीं से १८वीं शती तक के काल की सर्वश्रेष्ठ ब्रजभाषा के रूप में स्वीकृत तथा सांस्कृतिक विचारों का प्रबल माध्यम रही है।'[3]

गोरखनाथ की बानी में जिसके समय[4] पर विशेष विवाद है ब्रज तथा खड़ी दोनों का ही प्रारम्भिक रूप सुरक्षित है—

खड़ी—गगन मंडल में गाय वियाई कागद दही जमाया।
छाछ छाँडि पिंडता पानी सिधा भाणस खाया॥

ब्रज—माती माती सपनी दसौ दिसि धावै।
गोरखनाथ गारुड़ी पवन बेगि ल्यावै॥

१—आमीरादिगिरः काव्य स्वपभ्रंश इतिस्मृत: काव्य दर्श १/३६

२—हिमवत्सिन्धु सौवीरान ये च देशाः समाश्रिता :—
उकार-बहुलां तज्ज्ञ स्तेषु भाषां प्रयोजयेत्। नाट्यशास्त्र अध्याय—१७
ब्रजभाषा में इसके विस्तृत परिचय के लिए देखिए—
डा० चन्द्रभान रावत-उकार बहुला प्रवृत्ति की परम्परा और ब्रज को बोली, भारतीय साहित्य, वर्ष १ अंक ४/६ ६५

३—शिवप्रसाद सिंह-सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, १९५८।

४—७ वीं से १२ वीं शताब्दी तक, राहुल-नवीं शताब्दी, द्विवेदी हजारी प्रसाद-दसवीं बड़थ्वाल-१०५० स० डा० फर्कुहर-१२५७।

शुक्लजी ने भी बुद्ध-चरित की भूमिका में लिखा है, "हिन्दी की काव्य भाषा के पूर्व रूप का पता विक्रम की ११वीं शताब्दी से लगता है। जैसा पहले कहा जा चुका है यद्यपि इस भाषा का ढाँचा पच्छिमी (ब्रज का सा) था पर यह साहित्य की एक व्यापक भाषा हो गई थी। इस व्यापकता के कारण और प्रदेशों के शब्द और रूप भी इसके भीतर आ गये थे।·······कविताएँ टकसाली भाषा की हैं।"

एक ही पद्य में दोनों रूप देखिये—

> कोहे चलिउ हम्मीर बीर गअजुह संजुत्ते।
> किअउ कट्ठ हाकंद मुच्छि मेच्छिअ के पुत्ते॥

खड़ी बोली—चलिअ = चल्या, चला, तथा ब्रज—किअउ = कियो

ब्रज तथा ब्रजभाषा

ब्रज शब्द का संस्कृत रूप 'व्रज' है जिसके मूल में संस्कृत धातु 'व्रज्' है जिसका अर्थ है 'जाना'। 'व्रज्' शब्द का व्यवहार भिन्न-भिन्न कालों में बदलता रहा। व्रज शब्द का प्रथम-प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता में मिलता है जिसमें अधिकांशत: यह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[1] हरिवंश पुराण तथा भागवत आदि पौराणिक साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग कृष्ण के पिता नन्द के मथुरा के निकटस्थ व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ में ही हुआ है।[2] इसके अतिरिक्त बाराह पुराण, मत्स्य पुराण आदि में भी व्रज की सीमाओं की ओर निर्देश है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में तद्भव रूप 'ब्रज' अथवा 'बृज' निश्चय ही मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में मिलता है।[3]

ब्रज-मंडल

ब्रज-मंडल के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

> इत बरहद, इत सोनहद, उत सूरसेन को गाँव।
> ब्रज चौरासी कोस में, मथुरा मंडल माँह॥

ग्राउज़ महोदय ने इसके आधार पर ही ब्रज-मंडल की हदों को स्पष्ट किया है, वे कहते हैं कि ब्रज-मंडल के एक ओर की हद 'बर' स्थान है, दूसरी ओर सोन

१—वैदिक ऋषि त्रिष्टुप छन्द में अग्निदेव की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे तरुण। शीत से पीड़ित मानव तेरी सेवा में उसी प्रकार आते हैं जिस प्रकार कि गायें उष्ण गोशाला में आती हैं—'गाव उष्णामिव व्रजं' डा० अम्बा प्रसाद सुमन-ब्रजभाषा : उद्गम और विकास, राजर्षि ग्रन्थ अभिनन्दन, पृष्ठ ४३१

२—तद् व्रजस्थानमधिकम् शुशुभे काननावृतम्। हरिवंश पुराण

३—धीरेन्द्र वर्मा-ब्रजभाषा, १९५४ ई० पृष्ठ १६।

नदी और तीसरी ओर सूरसेन का गाँव है। 'बर' अलीगढ़ जिले का बरहद ही है। सोन नदी की हद गुड़गाँव जिले तक जाती है और सूरसेन का गाँव यमुना के किनारे पर बसा हुआ आगरे का वह तहसील में बटेश्वर गाँव ही है। ग्राउज़ ने श्री नारायण भट्ट का 'ब्रज-विलास' से यह श्लोक उद्धृत किया—

पूर्व हास्यवननीय पश्चिमस्यो पहारिकं।
दक्षिणे जह्नु संनाकं भुवनाख्यं तथोत्तरे॥

इस प्रकार ग्राउज़ द्वारा बैठाई गई सीमाओं की आलोचना करते हुए डॉ० गुप्त[4] कहते हैं मथुरा का प्रदेश प्राचीनकाल में शौरसेन का प्रदेश भी कहलाता था और कृष्ण के पितामह शूरसेन के नाम पर इस प्रदेश का नामकरण हुआ कहा गया है। प्राचीन इतिहास वेत्ताओं ने मथुरा नगरी को ही शौरसेन प्रदेश की राजधानी लिखा है। ब्रज की हद बताने वाले पीछे उद्धृत दोहे से ज्ञात होता है कि शूरसेन का गाँव मथुरा के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान है। ग्राउज़ महोदय ने जैसा कि ऊपर कहा गया है वर्तमान बटेश्वर को सूरसेन का गाँव माना है। आगरा गजेटियर में बटेश्वर का दूसरा नाम सूरजपुर दिया हुआ है। सूरसेन नगर या गाँव नहीं दिया हुआ है। दूसरे ब्रज की हद को बटेश्वर तक ले जाने में ब्रज-मंडल का आकार बेडौल हो जाता है और उसकी एक हद आगरे की बाह तहसील में दक्षिण पूर्वी कोने की ओर सुदूर निकल जाती है। हर प्रकार ब्रजमंडल का गोलाकार रूप नहीं रहता। मंडल शब्द से गोलाकार का ही बोध होता है।

सूरसारावली में सूरदास ने ब्रजभूमि को चौरासी कोस की हद की ओर निर्देश किया है—

चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल मोहन।
सामवेद, ऋग्वेद यजुर में कहेउ चरित ब्रजमोहन॥

अष्टछाप में 'ब्रज' गोचारण, गोपालन, ग्वाला के निवास स्थान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अक्रूर और उद्धव मधुबनियाँ तो हैं लेकिन ब्रज के बासी नहीं हैं—ब्रज का अर्थ भी यही है 'ब्रजन्ति गावो यस्मिन्निति ब्रज:' जिस स्थान पर नित्य गाएँ चलती है अथवा चरती हैं उस स्थान को ब्रज कहते हैं।

भागवत् में भी जब शुकदेव जी से राजा परीक्षित पूछते हैं।
'कस्मान्मुकुन्दो भवगान् पितुर्गेहाद् ब्रजं गत:' १०-१-८।

४—डॉ० दीनदायल गुप्त-ब्रज का भौगोलिक विस्तार, ब्रज भारती, वर्ष ४, अंक १०-११-१ पृष्ठ १-७।

भगवान् मुकुन्द किस कारण पिता के घर से ब्रज में गये ? और

ब्रजे वसन्किम करोन्मधुपुर्यां च केशवः (१०-१-६)

केशव ने ब्रज और मधुपुरी (मथुरा) में निवास कर क्या कार्य किया ?

इस प्रकार 'ब्रज' और 'ब्रजमंडल', 'मथुरा', 'सूरसेन' प्रदेश की सीमाओं और उनके अर्थों में पर्याप्त मतभेद रहा है। इतना स्पष्ट ही है कि 'ब्रज' से तात्पर्य मथुरा के आसपास का भाग है जिसमें वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुल आदि प्रसिद्ध धाम अवश्य आते हैं चाहे उनका वर्तमान रूप वह न रहा हो। इस ब्रज की संस्कृति व सभ्यता का प्रसार जितने व्यापक क्षेत्र में हो गया उसको ब्रजप्रदेश कहते हैं जिसमें—

उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के जिले।

पंजाब के गुड़गाँव जिले का पूर्वी भाग।

राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा रायपुर का पूर्वी भाग।

मध्यप्रदेश में ग्वालियर का पश्चिमी भाग सम्मिलित है।

कन्नोजी को यदि स्वतन्त्र बोली न माना जाय तो पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फरुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रजप्रदेश में सम्मिलित हो जाते हैं।

लिंग्विस्टिक सर्वे अव् इंडिया भाग ६ में ब्रज के क्षेत्र के अन्तर्गत नैनीताल का तराई क्षेत्र भी सम्मिलित कर लिया गया है।

आधुनिक ब्रजभाषा क्षेत्र उत्तर तथा दक्षिण में हिन्दी की दो अन्य पश्चिमी बोलियों अर्थात् खड़ी बोली तथा बुन्देली से घिरा हुआ है। इसके पूर्व में हिन्दी की पूर्वी बोली अवधी का क्षेत्र है और पश्चिम में राजस्थानी की दो पूर्वी बोलियाँ अर्थात् मेवाती और जयपुरी बोली जाती हैं।

आधुनिक ब्रजभाषा लगभग १ करोड़ २३ लाख[1] जनता के द्वारा बोली जाती है और लगभग ३८,००० वर्ग मील के क्षेत्र में फैली हुई है। तुलनात्मक

---

१. यही जनसंख्या डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी भाषा के इतिहास, १९४९, तथा ग्रामीण हिन्दी, १९५० में ७९ लाख दी है और ब्रजभाषा, १९५४ में १ करोड़ २३ लाख दी है। इसका तात्पर्य है १९२१ के आधार पर ७९ लाख है और १९५१ की जनसंख्या के आधार पर ही यह बढ़कर १ करोड़ २३ लाख हुई है, अनुमानतः १९६१ की जनसंख्या के आधार पर यह कम से कम १ करोड़ ५० लाख अवश्य पहुंच गई होगी।

दृष्टि से ब्रजभाषा बोलने वालों की जनसंख्या आस्ट्रिया, बलेगरिया, पोर्तुगाल अथवा स्वीडन की जनसंख्या से लगभग दुगुनी है और डेनमार्क, नार्वे, अथवा स्विट्जरलैंड की जनसंख्या से चौगुनी है। इस बोली का क्षेत्र आस्ट्रिया, हंगरी, पोर्तुगाल, स्काटलैंड अथवा आयरलैंड से अधिक है।[1]

मिर्ज़ा खां[2] ८४ कोश की भूमि को ब्रज कहते हैं जिसका केन्द्र मथुरा है। लल्लूजी लाल[3] ने अपनी व्याकरण में इसकी सीमाओं का उल्लेख भी किया है—यह भाषा ब्रज, ग्वालियर जिला, भरतपुर, बैसवाड़ा, भदावर, अन्तर्वेद तथा बुन्देलखंड में बोली जाती है। इस प्रदेश के काल-क्रमानुसार नाम ये हैं[4]—

प्राचीन जनपद	(महाभारत के आधार पर)	—शूरसेन
महाजनपद	(बुद्ध भगवान के समय में मध्यदेश)	—शूरसेन
मध्यकाल के मुख्य राज्य नगर	(चीनी यात्री ह्वेनसांग के आधार पर)	—मथुरा
मुगल काल में	(अकबर के सूबों के आधार पर)	—आगरा
वर्तमान बोली		—ब्रज

ब्रज का भाषार्थक प्रयोग

जैसाकि पिछले पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है ब्रजभाषा के रूप तथा लक्षण १०-११वीं शताब्दी से प्रकट हो रहे थे पर इसका नामकरण बहुत बाद में हुआ। बहुत काल तक इसके अन्य नाम चलते रहे जिनमें से पिंगल, मध्यदेशी,

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, पृष्ठ ३३-३४।

२. ब्रज—Braj is the name of a Country in India eighty four kos round, with its centre at मथुरा which is a quite well known district. On 195 b (fol) he adds Gwalior to the territories in which भाखा is spoken. The word eighty is later insertion.
ब्रजभाखा व्याकरण—मिर्ज़ाखाँ (१६७६ ए० डी०) अनुवादक, जियाउद्दीन, सन् १९३५।

३. लल्लू जी लाल का ब्रजभाषा व्याकरण, १८११, सीमाओं का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

४. धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी की बोलियाँ तथा प्राचीन जनपद, विचारधारा, पृष्ठ २५।

ग्वालियरी आदि का उल्लेख किया जा चुका है। अन्तर्वेदी[1] भी इसका समानार्थक है।

भाषा—भाखा

प्राचीन जनपदों में साहित्यकाल भाषा से इतर लोकभाषा के अर्थ में 'भाषा' या 'भाखा' शब्द प्रयुक्त किया जा रहा है—

चन्द वरदाई ने भी अपने काव्य की भाषा को 'भाषा' ही कहा—

षट् भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया।

तुलसी ने भी अपनी काव्य-भाषा को 'भाषा' ही कहा—

भाषा बद्ध करब में सोई। (मानस)

तथा

सपनेहुँ साँचिहु मोहि पर जौ हर-गौरि-पसाउ।
तो फुर होउ जो कहेउँ सब **भाषा-भनति-प्रभाउ**॥[2]

नन्ददास ने भी—

ताही सो यह कथा जथामति **भाखा** कीनी।

सूर[3] ने भी—

व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादश स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद **भाषा** करि गाइ। (सूरसागर)

केशवदास[4] ने भी—

भाखा बोल न जानई जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तिहिं कुल केशौदास॥

---

१. पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने भारती। सन् १९५४ में एक दोहा उद्धृत किया है—

अन्तर्वेदी नाथरी, गाड़ी पोरस देस।
अरु जामें अरबी मिले मिश्रित भाषा भेस॥

२. तुलसीदास—रामचरितमानस, बालकाण्ड दोहा ३१
एक बार तुलसी ने यह भी कहा—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच।
काम जो आवे कामरी, का लै करै कमाच॥

३. डॉ० हरवंश लाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य, संशोधित सं०, पृष्ठ १५७।

४. केशवदास—कविप्रिया, सन् १९५२, पृष्ठ १३।

कुलपति मिश्र—

जिती देवबानी प्रगट है कविता की घात ।
ते भाषा में होय तौ सब समझें रस बात ।।

प्रिथीराज[1]—

चारण भाट सुकवि भाखा चित्र ।
बरि एकठा तो अरथ कहि ।।

भाषा-भाखा के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करते हुए मिरजा खां ने इस प्रकार लिखा है—

भाखा-भाषा—प्रयोग से भाषा या 'बोली' का अर्थ है। ब्रजभाषा, पश्चिमी हिन्दी की एक बोली, बहुधा इसको हिन्दी भी कहते हैं। 'लुगाइत-हिन्दी' कोश में भी वह 'भाखा' शब्द का अर्थ भाषा, बोलना और आज्ञार्थक बोल भी दिया है।

आलंकारिक काव्य और प्रेमी तथा प्रेमिका की प्रशंसा से सम्बन्धित कविताएँ भी इसी में रचित हैं। यह उस दुनिया की भाषा है जहाँ हम रहते हैं। इसका प्रयोग अर्थात् भाखा का भाषा रूप में सामान्यत: संहसकिर्त (संस्कृत), पराकिर्त (प्राकृत) को छोड़कर होता है। यह ब्रज के व्यक्तियों की भाषा है।[2]

भाखा का स्पष्टीकरण करते हुए लल्लूलाल जी[3] भी कहते हैं कि ब्रह्माण्ड तीन लोकों में विभक्त है—

---

१. प्रिथीराज—बेलि क्रिसन रुकमणी री, वेलियो गीत २९९।

२. मूल अंग्रेजी में जियाउद्दीन द्वारा अनुवादित—
भाखा-भाषा, Speech, language or dialect by usage. ब्रज-भाखा, a dialect of western Hindi. The author often calls it Hindi too. In his dictionary "लुगातइ हिन्दी" he gives the meaning of the word भाखा–Speech or to speak and also the imperative 'Say'.
Omit poetry and the praise of the lover and the beloved is almost composed in this language. This is the language of the world in which we live. Its application (i.e. of the भाखा as a language) is generally inclusive of all other languages excepting संहसकिर्त (संस्कृत) पराकिर्त (प्राकृत). It is particularly the language of ब्रज people.

३. लल्लूजी लाल—General Principles of Inflictional and Conjugation in the Braj Bhakta, 1811, भूमिका से।

१. सुरलोक—स्वर्ग—जहाँ देवता निवास करते हैं।
२. पाताल लोक—नरक—नाग निवास करते हैं।
३. नरलोक—मृत्यु लोक—जहाँ मनुष्य निवास करते हैं।

प्रत्येक लोक की भाषा भिन्न-भिन्न है—

सुरलोक —देववाणी —संस्कृत
पाताल लोक—नागवाणी —प्राकृत
नरलोक —मनुष्य —भाखा

तीसरी नरवाणी या 'भाखा'। इस भाखा का हम व्याकरण लिख रहे हैं। 'भाखा' संस्कृत शब्द है, जिसका मूल अर्थ सामान्य भाषा से है। किन्तु अब इसका प्रयोग नरबानी या हिन्दुओं की जीवित भाषा से लिया जाता है। विशेषकर यह 'भाखा' ब्रज प्रदेश, और ग्वालियर में बोली जाती है। ब्रज, दिल्ली और आगरे के बीच में एक जिला है।[1]

प्रारम्भ में 'भाखा' कहलाने वाली भाषा मुख्यत: ब्रज प्रदेश में बोले जाने के कारण 'ब्रजभाषा-ब्रजभाखा' कहलाई। ग्वालियर भी केन्द्र होने के कारण उसके अनुसार ग्वालियरी भी कहलाई। जिसका विवरण हम पीछे दे चुके हैं। यह भाषार्थक प्रयोग अर्थात् ब्रज का ब्रजभाषा के अर्थ में रस विलास के कवि गोपाल तथा काव्य निर्णय के रचयिता भिखारीदास ने किया है।

इस प्रकार 'भाखा' जो प्रारम्भ में प्राकृताभास अपभ्रंश का बोध कराता था कालान्तर में 'ब्रजभाषा' का द्योतक ही नहीं, पर्याय बन गया।

ब्रजबुलि[2]

यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना परमावश्यक है कि ब्रजबुलि का ब्रजबोली या ब्रजभाषा से कोई तात्पर्य नहीं है। यह तो सर्वथा पृथक् बंगाली लेखकों की

---

१. **वही, मूल दिया जा रहा है।**

B, h a k, ha is a Sanskrit word originally signifying speech in general, but ncw applied to the Nur Baux or living language of the Hindus, particularly that spoken in the Country of Braj ard in the district of Gcaliyur. Brij is district lying between Dillee and Agra.

२. **'ब्रजबुलि' पर इधर काफी कार्य हो चुका है, कनिका निश्वास को काशी विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त उल्लेखनीय कार्य है—**

डॉ० सुकुमार सैन— हिस्ट्री आफ् ब्रजबुलि लिटरेचर।

'ब्रजबुलि' थी जिसका विकास मैथिली बोली से हुआ जिसमें हिन्दी शब्दों का मिश्रण है तथा जिस पर हिन्दी व्याकरण का भी प्रभाव पड़ा है। बंगाल के गोविन्ददास और ज्ञानदास जैसे मध्यकालीन कवियों ने कविता के माध्यम के रूप में इस भाषा को ही अपनाया। आधुनिक काल में कवीन्द्र रवीन्द्र भी इसके माधुर्य से आकृष्ट हुये। डॉ० चटर्जी ने इस पर टिप्पणी देते हुये अपनी थीसिस में लिखा कि ये कविताएँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक **कृत्रिम भाषा** को समूचे लोग काव्य-लेखन का माध्यम बना सकते हैं।

भाषा का यह कृत्रिम तथा मिश्रित रूप प्राचीन होते हुए भी 'ब्रजबुलि' शब्द बहुत काल का है। 'ब्रजबुलि' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी में मिलता है। 'बंगाली कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त की रचना में पहले-पहल इस शब्द का प्रयोग हुआ है।'[1]

'ब्रजभाषा' शब्द का स्पष्ट रूप से प्रयोग भिखारीदास ने किया—

भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति सुगम जु होय॥

काव्य निर्णय।१।१४

कुलपति मिश्र ने 'रस रसायन' में किया—

ज्ती देवबानी प्रगट है कविता की घात।
ते भाषा से होय तौ सब समझें रस बात॥

तथा

ब्रजभाषा भाषत सकल सुरबानी समतूल।
ताहि बखानत सकल कवि जान महा रसमूल॥
ब्रजभाषा बरनी कठिन बहु विधि बुद्धि विलास।
सबको भूषन सतसैया करी बिहारीदास॥

कवि गोपाल[2] ने कृष्ण रुक्मिणी वेलि का ब्रजभाषा अनुवाद प्रस्तुत किया—

मरुभाखा निरजल तजी, करि ब्रजभाखा चौज।
अब गोपाल यातें लहैं, सरस अनूपम मौज॥३४४॥

---

१. राम पूजन तिवारी—ब्रजबुलि की भाषागत तथा व्याकरणगत विशेषताएँ, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृष्ठ १०२-११०।

२. अगर चन्द नाहटा—कृष्ण रुक्मिणी बेलि का ब्रजभाषा में अनुवाद, ब्रजभारती, वर्ष १०, सं० ४-६ पृष्ठ १०।

समरथ ने रसिक प्रिया की टीका करते हुये लिखा—

सुर भाषा ते अधिक हैं ब्रजभाषा कों हेत।
ब्रज भूषन जाको सदा भूषन करि लेत ॥

घनानन्द ने भी लिखा है—

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन और सुन्दरतान के भेद को जानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घन जू के कवित्त बखानै ॥

ब्रजभाषा का प्रसार

ब्रजभाषा का प्रारम्भिक रूप ११वीं शताब्दी से प्राप्त होता है जिसके संक्षिप्त व्याकरण की रूपरेखा दी जा चुकी है। १६वीं शताब्दी तक मध्यदेश की भाषा के रूप में ब्रज पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुकी थी, पर साहित्यिक भाषा के रूप में इसकी प्रतिष्ठा और फलस्वरूप इसका प्रसार का वास्तविक आरम्भ १५१६ ई० में उस तिथि से होता है जब गोवर्द्धन में श्रीनाथ जी के मन्दिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महाप्रभु बल्लभाचार्य ने भगवान् के स्वरूप के सम्मुख नियमित रूप से कीर्तन करने का संकल्प किया। इस कार्य के लिए उन्होंने कवि गायकों को ढूँढ निकाला और उन्हें प्रश्रय देकर उनमें नवीन धार्मिक उत्साह भरा। इसी प्रोत्साहन का फल था कि पुष्टि मार्ग से सम्बन्धित दो महान् एवं सर्वाधिक जनप्रिय कवि सूरदास और नन्ददास ने ब्रज मण्डल की स्थानीय बोली में गीत लिखे और गाये और इस प्रकार उस साधारण बोली को एक साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित करने में समर्थ हुये।[1]

अष्टछाप के कवियों, गोस्वामी विट्ठलनाथ, गो० गोकुलनाथ आदि के प्रभाव से अनेक भक्ति कविगण इधर आकर्षित हुए और १७-१८वीं शताब्दी में कृष्ण-काव्यधारा उमड़ पड़ी। जैसे बाढ़ आ जाने पर नदी अपनी मर्यादा को तोड़कर इधर-उधर जलप्लावन कर हानि भी कर देती है, उसी प्रकार परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने भक्ति-मर्यादा का यत्र-तत्र उल्लंघन भी किया है। कुछ काल तक कृष्ण-काव्य और ब्रजभाषा पर्याय बन गये जिसके फलस्वरूप कृष्ण-काव्य परम्परा में सुदूर पूर्व तथा दक्षिण (मध्यप्रदेश) तक के कवियों ने योगदान दिया। गुजरात का तो कृष्ण काव्य से सीधा सम्बन्ध प्राचीन काल से रहा है। आज भी मथुरा तथा गुजरात का बल्लभ सम्प्रदाय के कारण सीधा और निकट का सम्बन्ध बना हुआ है, फिर गुजराती भी तो शौरसेनी की परम्परा से ही विकसित हुई। राजस्थान की मीराँ मेवाड़ में कृष्ण के विरह में गाती रही, फलस्वरूप लगभग २०० वर्षों तक सम्पूर्ण मध्यदेश में ब्रजभाषा तथा कृष्ण-काव्य का पर्याप्त विकास हुआ।

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, १९५४ ई० पृष्ठ २१-२२।

पूरब तथा दक्षिण के ब्रजभाषा-कवि

१६वीं शती में अवध में नरोत्तमदास ने 'सुदामा चरित' की रचना की, १८वीं शती में इटावा के देव ने कृष्ण-काव्य ही लिखा। १८वीं शती के भिखारीदास भी प्रतापगढ़ के ही रहने वाले थे जो ब्रजभाषा के पण्डित तथा आचार्य परम्परा में माने जाते हैं। दूसरी ओर पद्माकर, भूषण, केशव आदि कवि बुन्देलखण्डी थे। 'ब्रज की वंशीरव के साथ अपने पदों की अनुपम झंकार मिलाकर नाचने वाली मीरा राजस्थान की थी, नामदेव महाराष्ट्र के थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भोजपुरी भाषा क्षेत्र के थे।' (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)

पूर्वी ब्रज-कन्नौजी

ग्रियर्सन ने हिन्दी की कन्नौजी बोली को भिन्न मानते हुए लिखा है 'कन्नोजी निचले दोआब के प्राय: इटावा जिले से लेकर इलाहाबाद के निकटवर्ती प्रदेश तक की बोली है। कन्नौज के प्राचीन शहर के दूसरी ओर जिससे इसने अपना नाम ग्रहण किया है, वह गंगा को पार कर हरदोई जिलों के ओर उत्तर के भूमि भाग तक प्रसारित है। **ब्रजभाखा से इसका बहुत निकट सम्बन्ध है और वास्तव में यह उसकी उपभाषा जैसी ही है।**[1]

ग्रियर्सन कन्नौजी को पृथक् मानकर भी ब्रज की उपभाषा के रूप में ही मानते हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[2] के अनुसार इस उपरूप की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. संज्ञाओं में 'औ' के स्थान पर 'ओ'।
२. व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'उ' अथवा 'इ' का जुड़ना भी यह अवधी की विशेषता है, निकटवर्ती होने के कारण उसी का प्रभाव है।
३. मध्य (ह) का लोप, जो आधुनिक ब्रज के साथ हिन्दी के अन्य रूपों में भी मिलता है।
४. पुंलिंग 'आकारान्त' संज्ञाओं जैसे 'लरिका' आदि का अन्त में 'आ' का विकृत रूप एक वचन में 'ए' में न बदलना एक ऐसी विशेषता है जो समस्त ब्रज में पाई जाती है।
५. संकेतवाचक सर्वनाम 'बौ', 'जौ' कुछ पूर्वी ब्रजभाषा क्षेत्र में पाये जाते हैं, वहु, यहु अवधी के प्रभाव के कारण है।

---

१. डॉ० ग्रियर्सन—भारत का भाषा सर्वेक्षण, हिन्दी अनुवाद, १९५९ ई०, पृष्ठ ३०१।

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, सन् १९५४, पृष्ठ ३४।

६. भूतकालिक कृदन्त देश्रो, लश्रो, गश्रो इत्यादि तथा सहायक क्रिया 'हतो' रूप इत्यादि ब्रज में भी पर्याप्त प्रचलित हैं।

उपर्युक्त तुलनात्मक परीक्षा के आधार पर कन्नौजी को[1] निश्चित रूप से ब्रजभाषा के अन्तर्गत रखना चाहिए।

दक्षिणी ब्रजभाषा या बुन्देली

वास्तव में बुन्देली बोली भी ब्रजभाषा से विशेष भिन्न नहीं है। दक्षिणी रूप बुन्देली की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. खड़ी बोली की पुंलिग संज्ञाएँ ब्रज के दक्षिणी बुन्देली रूप में भी ओकारान्त हैं—छोरो
२. पूर्वी ब्रज में पाई जाने वाले 'हतो' रूप की चाल बुन्देली में भी है। 'तो' रूप शुद्ध बुन्देलखण्डी है। केशव ने दोनों रूपों का प्रयोग किया है—

   तो वह सूरज को सुत को।
   सीता पाद सम्मुख **हुते** गयो सिन्धु के पार।
३. भविष्य रूप 'ह' व 'ग' दोनों वाले मिलते हैं।
४. क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिए 'ब' प्रत्यय ही विशेष प्रचलित है।
५. य—सहित भूतकालिक कृदन्त चल्यौ-चल्यो सभी जगह चलता है। पूर्वी रूप में—य नहीं आता है।
६. ब्रज की 'ड़' ध्वनि बुन्देली में 'र' में बदल जाती है।

ध्वनि-समूह में भेद होते हुए भी व्याकरणिक रूपों में विशेष भेद नहीं है अतएव बुन्देली[2] भी ब्रज का एक रूप ही मानना चाहिए।

---

१. डॉ० अम्बा प्रसाद 'सुमन' का मत भिन्न है 'मेरा अपना मत यह है कि कन्नौजी ब्रजभाषा से पृथक् है।' ब्रजभाषा का उद्गम और विकास, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ४३२।
   कन्नौजी और ब्रजभाषा के सम्बन्ध पर उल्लेखनीय कार्य है डॉ० शंकरलाल शर्मा कन्नौजी बोली का अनुशीलन तथा ब्रज से उसकी तुलना आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कन्नौजी को प्राच्य बोलियों में रखते हैं। "प्राच्य बोलियाँ हैं—कन्नौजी, अवधी, बैसवाड़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि।" इस दृष्टि से कन्नौजी ब्रजभाषा से सर्वथा पृथक् है— शब्दानुशासन प्र० सं०, पृष्ठ ५३९-४० हिन्दी।
२. बुन्देली के विकास तथा उसके गठन पर भी पृथक् से कार्य हो चुका है इसके लिए द्रष्टव्य है; डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल का बुन्देली पर थीसिस, जिस पर लखनऊ विश्वविद्यालय से १९६० में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

३.

प्रारम्भिक ब्रजभाषा[1]

प्रारम्भिक ब्रजभाषा के चिह्न हमको १०वीं शताब्दी के ग्रन्थों से मिलने लगे थे। पर सबसे स्पष्ट दर्शन हमको गोरख उपनिषद् में होते हैं जिसकी भाषा माँ हिन्दुस्तानी मिश्रित राजस्थानी का भी पुट है। वैसे इस ग्रन्थ की प्राचीनता पर भी विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया है—

'आगे मत्स्यनाथ असत्य माया स्वरूपमय काल ताके खंडनकर महासत्य तें सोभत भयो। आप निर्गुणातीत ब्रह्मनाथ तांकु जाने याते आदि ब्राह्मण सूक्ष्म देवी ब्राह्मण वेद पाठी होतु है, ऋग् यजु साम इत्यादि का इनके सूक्ष्म भेद कहिये। ब्राह्मण वहिवै में चतुर-वर्ण को गुरु भयो अस इहाँ च्यारो आश्रम को समावेस गये होय है याते ही अल्पाश्रमी आश्रमन कोह गुरु भयो।'

इस उद्धरण की भाषा पर टिप्पणी लिखते हुये डॉ० शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं यह भाषा १३वीं के पहले की गद्य भाषा नहीं मालूम होती। उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भाषा को दृष्टि में रखकर विचार करें तो स्पष्ट मालूम होगा कि यह परवर्ती शैली है किसी ने बहुत पीछे खड़ी बोली की गद्य शैली की चेतना और प्रेरणा लेकर इस गद्य का निर्माण किया।

स्पष्टतः यह प्रतीत होता है कि ब्रज और खड़ी बोली में द्वन्द्व अपने संक्रान्ति काल १२वीं शताब्दी से ही हो रहा है। ब्रज के समर्थक प्रारम्भिक ब्रज से खड़ी बोली की उत्पत्ति बताते हैं और खड़ी बोली के समर्थक खड़ी का प्राचीनतम रूप गोरखनाथ और सिद्धों, सन्तों की भाषा में देखते हैं। यह कहा जा सकता है कि दोनों भाषाएँ एक साथ ही विकसित हुईं पर काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के कारण ब्रज का समुचित विकास काव्य के व्यापक क्षेत्र में होता गया पर खड़ी बोली बोलचाल के रूप में ही लोक में चलती रही, काव्य के माध्यम के रूप से भी वह खुसरो, कबीर आदि के काव्य में कभी-कभी दृष्टिगत होती है।

---

१. 'ब्रजभाषा' का पूर्व रूप विद्यमान था पर 'ब्रजभाषा' नाम बाद का है, अतएव इसका विवेचन आगे होगा।

ब्रजभाषा को काव्यभाषा के रूप में हम गेय पदों से प्रतिष्ठित कर सकते हैं जिसका विकास सूर से बहुत पूर्व हो चुका था। इसका निश्चित समय निर्धारित करना तो कठिन है पर १२वीं-१३वीं शताब्दी से अवश्य इसका प्रारम्भ हो गया था। गोरखवाणी में भी गेय पद हैं। ग्वालियर के विष्णुदास (सं० १४९२) तथा असम के शंकरदेव के गेय पद पर्याप्त मिलते हैं। सूर पूर्व आज अनेक कवि प्रकट हो चुके हैं जिसकी संभावना डॉ० द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका'[1] ग्रन्थ में प्रकट की थी।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध 'सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य'[2] में निम्नलिखित प्राप्त सामग्री के आधार पर प्रारम्भिक ब्रजभाषा का गठन प्रस्तुत किया है—

१. प्रद्युम्न चरित (१४११ सं०)।
२. हरिचन्द पुराण (१४५३ सं०)।
३. विष्णुदास[3] (१४९२ सं०)।

---

१. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ५२।
'भाषा ऐसी सरस और मार्जित है कि सहसा यह विश्वास नहीं होता कि ब्रजभाषा का यह सूरसागर पहला ग्रन्थ है।'

२. शिव प्रसाद सिंह—सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य, प्रथम सं० १९५८।

३. वही, पृष्ठ १५२ से।
विष्णुदास की भाषा १५वीं शती की ब्रजभाषा का आदर्श रूप है। इस भाषा में ब्रजभाषा के सुनिश्चित और पूर्ण विकसित रूप का आभास मिलता है जो १६वीं शती तक एक परिनिष्ठित भाषा के रूप में दिखाई पड़ा। कूँ (कौं), हूं (हौं), सूँ (सौं) लूँ या लें (लौं) आदि पुरानी भाषा के चिह्न हैं। विष्णुदास की भाषा में भूत कृदन्त के निष्ठा रूप में 'आ' अन्त वाले रूप भी मिलते हैं। स्वर्गारोहण पर्व में धरिया, खरखरिया, कहिया, रहिया आदि अवहट्ठ की परम्परा के निश्चित अवशेष हैं। खड़ी बोली में केवल आकारान्त रूप ही दिखाई पड़ते हैं, किन्तु ब्रज में और खासतौर से प्राचीन ब्रज में दोनों प्रकार के रूपों का प्राधान्य था। तिङन्त के वर्तमान काल का रूप करई (महा०), मनई (स्वर्गारोहण) सुनई, करइ आदि रूप भी अपभ्रंश का लगाव व्यक्त करते हैं। भाषा की अर्ध-विकसित अवस्था की सूचना इन रूपों से चलती है।

४. लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा (१५१६ सं०)।
५. डूंगर बावनी (१५३८ सं०)।
६. मानिक कवि (१५४६ सं०)।
७. कवि ठक्कुरसी (१५५० सं०)।
८. छिताई वार्ता (१५५० सं०)।
९. थेघनाथ (१५५७ सं०)।
१०. मधुमालती (१५५० सं०)।

इसके अतिरिक्त चतरुमल (१५७१ सं०), धर्मदास (१५७८ सं०), छोहल (१५७५ सं०), सहज सुन्दर (१५८२ सं०) गुरु ग्रन्थ (१६०० सं०) के पूर्व के सन्त कवियों की रचनाएँ जिनमें उल्लेखनीय हैं—

नामदेव १४वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध
त्रिलोचन १३२४ ई०
जयदेव १३वीं शताब्दी का अन्त
वेणी १५वीं शताब्दी
रामानन्द १४वीं शती
कबीर १५वी शती
रैदास, धन्ना वही
नानक सं० १५२६
हरिदास निरंजनी (१५१२-१६०० सं०)
श्री भट्ट (१६वीं शताब्दी)

हरिव्यास, परशुराम, नरहरि भट्ट, मीरा आदि सूर पूर्व ही हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर ही डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने जो प्रारम्भिक ब्रजभाषा[1] का रूप प्रस्तुत किया है उसका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

१. प्राचीन ब्रज में अपभ्रंश की ध्वनियों के विकसित रूप भी दृष्टिगत होते हैं—

स्वर—१३—अ, अ̍, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऍ, ऐ, ओ, ऑ, औ।

संध्यक्षर—अए और अओ जिनका ही परवर्ती विकास पूर्ण संध्यक्षर

१. डॉ० शिवप्रसादसिंह, वही, पृष्ठ २३८ से २७४ तक।

औ और ऐ के रूप में हुआ ।

।

२. अ का एक रूप 'अ' पदान्त में सुरक्षित है ।

३. आदि व मध्य में अक्षर में कभी 'अ' को 'इ'—

तस्य =तस्स =तिसु
कपाट=कवाड़ =किवाड़
कायस्थ =काइथ
नकुल =निकुल
क्षण =छिन

४. आदि स्थिति में अ—का आगम—

स्तुति=अस्तुति
स्नान=अस्नान

५. मध्यग 'उ' का 'इ' के रूपान्तर

इ—पुरुष =पुरिष
उ< मनुष्य=मुनिख
अ—मुकुट =मकुट
राजकुल=रावुल=रावरे

६. अन्त्य 'इ' प्रायः परवर्ती दीर्घ स्वर के बाद उदासीन स्वर की तरह उच्चरित होती है । इसको फुसफुसाहट की 'इ' भी कह सकते हैं—

'आ' के बाद—अगलाइ
—पलाइ
'ए' के बाद—हरेइ
—करेइ

७. मध्यग 'इ' का य-श्रुति रूप में बदल जाना—

गोविन्द—गोव्यन्द
चितइ—च्यते

८. उद्वृत्त स्वर से संध्यक्षर स्वर में परिवर्तन—

अ+इ=ए । ऐ अन्त्य स्थिति में ही प्रायः मिलता है

चिन्हइ —चीन्हैं
गहइ —गहैं
दिखावइ —दिखावैं
धरई —धरैं

अ + उ = ओ । औ

मध्य स्थिति—

चउवारे —चौवारे

चउपास —चौपास

अन्त्य स्थिति—

चाल्यउ —चाल्यौ

चढिउ —चढ्यौ

एतउ —एतौ

करउ —करौ

अउगुण, उपजउ, अउगुण, गणउ, दीसइ जैसे रूप भी अपवाद स्वरूप मिलते हैं।

९. स्वर-संकोच की प्रवृत्ति

१—अ उ व = उ

कउण —कुण

जादवराय—जदुराय

२—इ अ = ई

करिय —करी

दिट्ठिअ —दीठी

१०. 'ऋ' का विकास अधिकांशत: 'इ' में हुआ है वैसे सभी स्वरों में विकसित रूप के उदाहरण मिल जाते हैं—

'ऋ'——	——इ	कृष्ण	—किसन
		शृंगार	—सिंगार
	——ई	मृत्यु	—मीच
		दृष्टि	—दीठ
	——ऊ	वृक्ष	—रूक्ख
		वृद्ध	—बूढौ
	——ए	गृह	—गेह
	——र	अमृत	—अम्रत

११. अनुनासिकता के प्रयोग का आधिक्य—

१—नासिक्य व्यंजन के स्थान पर अनुनासिकता—

संताप = सँताप

रंग = रंगि

संसार = सँसार

संभोग = सँभोग

अंधकार = अंधार

२—पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ स्वर करके अनुस्वार का ह्रस्वीकरण–

संभलउ = साँभल्यौ
पंडिअ = पाँडे
पंचई = पाँचई
अकुश = आँकुस

३—अकारण अनुनासिकता—

अश्रु = आँसु
हंस = हँस
श्वास = साँस
पृच्छ = पूँछ

४—सम्पर्कज सानुनासिकता की प्रवृत्ति—

प्राण = पराँण
वाण = बाँण
अमृत = अँम्रति

५—पदान्त में अनुनासिकता—

जियउँ, हरउँ, परउँ, पाऊँ

व्यंजन

१. व्यंजनों में 'अ' का लोप। 'न्ह', 'म्ह', 'र्ह', 'ल्ह', 'ड़', 'ढ़' नवीन विकसित ध्वनियाँ हैं।

२. 'ण' और 'न' का भेद मिट सा गया—

गणपति = गनपति
पोषण = पोषन
गणेश = गनेस
प्रवीण = परवीन
गुणी = गुनी

३. 'ड', 'र' तथा 'ल' तीनों ध्वनियों का परस्पर विपर्यय—

१—ड—र : खड़ी = खरी
बीड़ा = बीरा
थोड़ा = थोरा

२—'ड' का 'र' तोडइ =तोरइ

फाडइ =फारइ

३—'ल'—'र' में

रावल =रावर

आलस्य =आरसु

रक्षपाल = रखवारू

४. 'न्ह', 'म्ह', 'ल्ह' तीन नवीन महाप्राण ध्वनियों का विकास—

न्ह—लीन्हे, दीन्हे, न्हाले

म्ह—ब्रम्ह

ल्ह—उल्हास, मेल्है

५. व्यंजन-परिवर्तन—

'क्ष' —छ नक्षत्र =नछत्र

क्षत्रिय =छत्री

रक्षपाल = रखपाल, रखवारा

—ख वृक्ष =रूख

क—ग में

अनेक =अनेग

भक्ति =भगति

'त' का 'ज' में

मरकत =मर्गज

'ट' का 'ड' में

जटित =जड़े

घट =घड़न

'य' का 'ज' में

अयोध्या = अजुध्या

६. व्यंजनथगुच्छ तथा संयुक्त व्यंजन—

अ—दित्व का सरलीकरण और क्षतिपूरक दीर्घता वाला वही पुराना नियम विशेष परिलक्षित होता है—

अ—आ रक्खन =राखन

कज्ज =काज

इ—ई किज्जइ =कीजइ

दिट्डइ =दीठो

उ—ऊ पुच्छइं =पूछइ
बुज्झइ =बूझइ

टिप्पणी : कज्जल, दिष्ट, नच्चइ जैसे रूप भी कहीं-कहीं चलते हैं।

ब—दोनों व्यंजनों के स्थान पर किसी इतर व्यंजन का आगम—

ध्य—झ
युध्य = जुज्झ = जूझ
ध्यायति = झावहिं
त्स—छ
मत्स्य = मच्छ = मछि
उत्संग = उच्छंग = उछंग
स्त—थ
स्तुति = थुत
हस्तिनापुर = हथनापुर

स—स्वर भक्ति से गुच्छ टूट जाता है—

मार्ग—मारगि, स्वर्ग—सुरग, कृष्ण—किसन, मुक्ति-मुगती

७. **विपर्यय—**

१. **मात्रा विपर्यय—**
ताम्बूल = तंबोर
कौरव = कुरवा

२. **अनुनासिकता का विपर्यय-**
कवंल = कँवलिय
भवंर = भँवर
कुवेर = कुँवर

३. **स्वर विपर्यय—**
परीक्षित = परीछति
समिरउँ = सिमरौं

४. **व्यंजन-विपर्यय—**
प्रत्यक्ष = पतरिछ

व्याकरण

वचन—बहुवचन प्रकट करने के लिए 'नि' या 'न' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

नि—चितवनि, चलनि, पुरनि, मुसक्यानि

न—जेहि जस पंचन कीय।

विभक्ति तथा परसर्ग

आरम्भिक ब्रज में निर्विभक्तिक प्रयोग भी पाये जाते हैं—

कर्म—हिं—तिन्हहिं,

करण—हि । ए—तिहि साधुउ
चितौरे दीनी पीठ

सम्बन्ध—ह—पद्‌मह,

अधिकरण—हिं (इ) एँ—क कुरुखेतहि, सरोवरि, आगरे

परसर्ग रूप

कर्त्ता	(ने) नै	सावंत ने स्नान कियो
		राजा ने आइस दीन्हों
कर्म	कहुँ	तिन्हि कहुँ बुद्धि
	कौ	गुणियन कौ है
	को	राखन को अवतरो
	कों	ताहीं कों भावै वैराग
	कूँ	अवरन कूँ छाया
	कँउ	ससि कँउ दीयो
करण	सौं	इहि मो सों
	सम	तो सम
	तें	अंहकार तें
	ते	ताते अति सुख
सम्प्रदान	कहँ	विप्रन कहं दान
	कौं	विप्रन कौं
	लीयो	रसना रस कै लीयौ
	ताँई	रसके ताँई
	हेत	मेरे हेत
	लगि	जा लगि
	काज	कुंजरि को काजै
	कै	दासी कै निमित्त
अपादान	हुँती	कासमीर हुँती नीसरइ
	तैं	सौं रूप भी मिलते हैं
सम्बन्ध	कउ	तिस कउ अन्त
	कौ	जौजन कौ विस्तारा
	को	मीच्चु को ठांईं

के	जाके चरन
की	भीषम नृप की लाडली
तणी	तणउ रूप भी मिलते हैं।
अधिकरण माँहि	पुर माँहि निवासा
माँझि	दरपन माँझि
माँ	मन माँ वइठ्यो चिन्तइ
में	जदुकुल में भये
मझारि	सोलोत्तरा मझारि
मँहि	कागद मँहि
मज्झि	भुवन मज्झि
	पै, मैं, अन्तर, मइ रूप भी मिलते हैं।

सर्वनाम

उत्तम पुरुष—में 'मैं' और 'हौं' दोनों रूप मिलते हैं। साथ में हउं, भइं रूप भी विद्यमान थे जो आज लुप्त हो गये हैं—

मैं जु कथा यह कहीं
हौं न घाउ घालौं

विकारी रूप मो, मोंहि, मेरो, मोरी, मेरे भी मिलते हैं

मध्यम पुरुष—मूल रूप 'तुम', 'तूँ' हैं जो संस्कृत त्वम्>तुहुँ से विकसित हैं

तुम जनि वीर धरौ सन्देहू
जसु राखनहारा तूँ पई।

'तो', 'तोहि' 'तेरे', 'तिहारो', 'तुम्हारे', 'तेरे' आदि विकारी रूप भी मिलते हैं।

अन्य पुरुष—'सः' वाले रूप भी चलते रहे—

सो सादर पणमइ सरसती।
सो रहे नहीं समझायो।

अन्य रूपों में 'तेइ', 'तिह', 'ता', 'ताकों', 'तासु', 'तिसी', 'तिहि', 'तहीं', 'ताही', 'ते', 'तिन्हें' आदि विकारी रूप भी चलते रहे।

सार्वनामिक विशेषण

परिमाणवाचक—जित, जितें, तिते, तिते, एती, एते आदि

गुण वाचक —ऐसे—ऐसे जाय तुम्हारो राजू।
इसे—गीता ज्ञान हीन नरल इसौ।

कैसे—तिन्ह कौ कैसे सुनू पुराण।
तैसे—तैसे सन्त लेहु तुम जानि।
जैसे—कह्यौ प्रश्न अर्जुन को जैसे।

इस प्रकार आरम्भिक ब्रज का संक्षिप्त व्याकरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रारम्भिक खड़ी बोली का स्वरूप

खड़ी बोली के अतिप्राचीन रूप का आरम्भिक इतिहास दिखाया जा चुका है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्धचरित' की भूमिका[1] में कुछ उद्धरण दिये हैं जिनमें खड़ी बोली का पूर्व रूप भासित होता है—

१. नवजल भरिया मग्गड़ा गयाणि घड़क्कइ मेहु।[2]
(नये जल से भरा हुआ मार्ग, गगन में मेघ धड़कता है)

भरिया—क्रिया का भूतकालिक रूप—खड़ी बोली और पंजाबीपन पुराना रूप, जैसे

'टपका लगा **फूटिया** कछु नहिं आया हाथ।' कबीर
आ० पं० में यही 'भर्यो' है और खड़ी बोली में 'भरा' है।

२. महिवी ढह सचराचरह जिण सिर दिह्णा पाय।[3]
(पृथ्वी की पीठ पर जिसने सचराचर के सिर पर पाँव दिया।

दिन्हा—खड़ी बोली दिया।

३. एक्के दुन्नय जे कया तेहि नीहरिय धरस्स।[4]
(एक दुर्नय (अनीति) जो किया उससे निकली घर से)

कया—खड़ी बोली 'किया'।

४. भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।[5]
(भला हुआ, जो मारा गया, बहिन, हमारा कंत)

मारिआ—मारा गया, भल्ला—भला।

इस प्रकार हिन्दी की काव्य भाषा के पूर्व रूप का पता विक्रम की ११वीं शताब्दी से लगता है! जैसा कहा जा चुका है यद्यपि इस भाषा का ढाँचा पश्चिमी

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल—बुद्ध चरित की भूमिका, सं० १६७९, पृष्ठ ५-६।
२. पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—पुरानी हिन्दी, सं० २००५, पृष्ठ ४८।
३. वही, पृष्ठ ५८।
४. वही, पृष्ठ ६१।
५. वही, पृष्ठ १६२।

ब्रज का सा था पर यह साहित्य की एक व्यापक भाषा हो गई थी। इस व्यापकता के कारण और प्रदेशों के शब्द और रूप भी इसके भीतर आ गये थे। ऊपर उद्धृत कविताएँ **टकसाली भाषा** की हैं।

कहीं-कहीं एक ही पद्य में खड़ी और ब्रज दोनों के रूप प्रतिभासित होते हैं जिसका उदाहरण हम पीछे ब्रज के साथ दे चुके हैं—

चलिअ—चल्या[1]—खड़ी बोली—चला

किअउ—कियउ[2]—ब्रजभाषा —कियो

इस प्रकार खड़ी बोली का यह प्राचीन रूप लोक में अवश्य चलता रहा होगा पर दिल्ली की यह बोली (खड़ी) साहित्यिक या काव्यभाषा नहीं बन सकी। यह भी अन्य प्रादेशिक बोलियों के समान किसी एक कोने में पड़ी थी। पठानों की राजधानी जब दिल्ली बनी तब मुसलमानों को वहाँ की बोली ग्रहण करनी पड़ी जिसमें खुसरो ने (उस बोली में) कुछ पद्य कहे पर परम्परागत काव्यभाषा (ब्रजभाषा) की झलक उनमें बराबर बनी रही। खुसरो के योगदान पर पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है पर फिर भी—

ब्रज रूप—अति सुन्दर जग चाहै **जाको**। मैं नी देव भुलानी बाको।
देख रूप भाया जो टोना। ए सखि साजन ना सखि सोना॥

खड़ी बोली का रूप—टट्टी तोड़कर घर में आया। बरतन बरतन सब सरकाया।
खा गया, पी गया दे गया बुत्ता। ए सखि साजन, ना सखि कुत्ता॥

इस पर टिप्पणी करते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं खुसरो में ब्रजभाषा का पुट देखकर उर्दू भाषा का इतिहास लिखने वाले उर्दू लेखकों को यह भ्रम हुआ कि उर्दू अर्थात् खड़ी बोली ब्रजभाषा से निकली है। पर असल में ब्रजभाषा का मेल परम्परागत काव्य भाषा के प्रभाव के कारण था।.........कहने का तात्पर्य यह है कि पुराने उर्दू कवियों में ब्रजभाषा का पुट केवल यह बतलाता है कि उर्दू कविता पहले स्वभावतः देश की काव्यभाषा का सहारा लेकर उठी, फिर जब टाँगों में बल आ गया तब किनारे हो गई, **यह नहीं कि खड़ी बोली का अस्तित्व उस समय था ही नहीं और दिल्ली मेरठ आदि में भी ब्रजभाषा बोली जाती थी।**[3]

पुरानी खड़ी बोली के विकास में 'खुसरो' 'कबीर' आदि कवियों का योगदान तथा 'दक्खिनी', 'रेख्ता' आदि भाषाओं का विकास पूर्ववत् ही स्पष्ट किया जा चुका है, यहाँ उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं।

---

१. 'इ' के कारण य—श्रुति का आगम।
२. 'इ' के कारण य—श्रुति का आगम।
३. पं० रामचन्द्र शुक्ल, वही बुद्ध चरित की भूमिका, पृष्ठ १४।

प्राचीन खड़ी बोली से सम्बन्धित ग्रन्थों की खोज और उसके स्वरूप का विश्लेषण इधर कुछ वर्षों में ही विशेषकर सम्पन्न हुआ है। इसमें उल्लेखनीय कार्य है—डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम[1] का है। आपका विचार है—

खड़ी बोली का अभ्युदय तो साम्प्रतिक है परन्तु 'प्राचीन यह लगभग उतनी है जितनी ब्रजभाषा उसके अस्तित्व के प्रमाण चौदहवीं शताब्दी[2] से मिलते हैं। पद्य में ही नहीं गद्य-क्षेत्र में भी उसकी स्थिति चिर प्राचीन है। नाथ-सिद्धों की अनेक गद्यमय और गद्य-पद्यमय रचनाओं में ब्रजभाषा, राजस्थानी और पंजाबी के साथ खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। अर्द्ध-शिक्षित जनता के निमित्त कथा-कृतियों में भी इस भाषा का व्यवहार हुआ है। रीतिकाल से पूर्व की (१६५० ई० से पहले की) ऐसी अनेक गद्यमय तथा गद्यपद्य मिश्रित रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें खड़ी बोली शैली के शब्द रूप अन्य भाषाओं के शब्द रूपों के साथ पर्याप्ततः प्रयुक्त हैं। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती के 'मलफूजात' (मुसलमान सन्तों के लिखित प्रवचनों) से सम्बन्धित फारसी ग्रन्थों में भी खड़ी बोली के वाक्य यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं—

(१) पौंनू का चाँद भी बाला होता है। (खड़ी)

(२) तू मेरा गुसाई तू मेरा करतार। (खड़ी)

(३) जो मुड़ासा बांधे सौ पाइन पसरे। (ब्रज मिश्रित खड़ी)

परन्तु इन वाक्यों की प्रामाणिकता सुनिश्चित नहीं। लिपिकों ने इन्हें मूल रूप में रहने दिया होगा, इस सम्बन्ध में सन्देह होता है। राजा मानसिंह से सम्बन्धित एक फरमान में भी खड़ी बोली गद्य की कुछ पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। १६वीं शती के इस नमूने में देखिये श्री महाराजाधिराज "श्री मानसिंह जी औं····दखल मत करो, वो हर साल परवाना तलब मत करो साल तमाम में फी बीगा मजरुआ पीछे सिक्का चक खालसा लीजो अवरव अतर कछू दखल मत करो।"

चौदहवीं शती के ख्वाजा जहांगीर समनानी की १३०८ ई० में निर्मित एक सूफीमत विषयक गद्य-रचना बताई जाती है।

---

१. **डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम—प्राचीन खड़ी बोली गद्य में भाषा का स्वरूप, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४६७-४७६।**

प्राचीन खड़ी बोली का संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत करने में लेखक इस प्रशंसनीय निबन्ध का आभारी है।

२. **हमने इसके प्राचीन रूपों का अस्तित्व १०-११वीं शताब्दी से सिद्ध किया है।**

डॉ० गौतम ने रीतियुग पूर्व की निम्नलिखित प्राप्त गद्य रचनाओं के आधार पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है :—

१. कुतुब शतम् (सं० १६७० गद्यपद्यमय)
२. भोगलु पुरान (सं० १७६२ गद्यमय)
३. गोरष गणेस गुष्टि (सं० १७१५ पद्यमय)
४. महादेव गोरष गुष्टि (सं० १७१५ गद्यमय)
५. नव बोली छन्द
६. नव भाषा
७. सकुनावली

प्रथम दो में ही खड़ी बोली के रूप अधिक प्राप्त होते हैं। कुतुब शतम् अधिक महत्वपूर्ण है—भाषा की दृष्टि से जिसमें १६-१७वीं शताब्दी की व्यावहारिक खड़ी बोली पर प्रकाश पड़ा है।

मुख्य विशेषताएँ

१. **प्राचीनता और अर्वाचीनता का संयोग**—एक ओर 'अम्हे', 'अमे', 'तुम्ह', 'अम्हारा', 'उत्पन्या', 'कृथन्ति', 'भ्रमते', 'धरां', आदि प्राचीन रूप हैं तो दूसरी ओर 'तुम', 'हम', 'तुमाहरा', 'मारा', 'मीठा', 'षारा', 'आया', 'चलती', 'करता', 'बैठा' जैसे नवीन रूप भी हैं।

२. इन रचनाओं में अर्द्ध तत्सम और तद्भव शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं। संज्ञा तथा विशेषण प्रायः तद्भव हैं—
   १ लघु के स्थान पर दीर्घ स्वर—'कीया', 'पीलया', 'ईतनी'।
   २ दीर्घ के स्थान पर लघु—'दुध', 'सुरत'।
   २ 'स' के स्थान पर 'श'—तिरही 'कूँ'
   १ 'श' के स्थान पर 'स'—सहर

३. कहीं-कहीं स्वर सन्धि रहित उद्वृत्त रूप भी सुरक्षित हैं—
   'कउन', 'कइइ' आदि है पर स्वर-सन्धि रूपों की प्रधानता है।

४. संज्ञा के विकारी बहुवचन रूप में 'ओं'—'यों' विभक्तियाँ प्रायः नहीं मिलती केवल भूगोल पुराण में 'अंखों', 'पर्वतों' जैसे रूप मिलते हैं। आकारान्त संज्ञा का एकारान्त अविकारी बहुबचन रूप देवते भी मिलता है।

   बहुवचन की विभक्तियों—'ओं', 'यां', 'नि', 'ने'।

५. आकारान्त विशेषण लगभग सभी रचनाओं में हैं—
   'बड़ा', 'ऊँचा' 'खारा'—

बहुवचन अविकारी तथा एकवचन विकारी विशेषण पदप्रायः एकारान्त हैं—ऐसे, जेते, ऊँचे, दाहिने।

६. कारक चिह्न अधिकतर ब्रजभाषा और राजस्थानी के हैं। खड़ी बोली के केवल 'का', 'रो', 'में', 'पर' मिलते हैं।

कर्म— कु, कू, कूँ, कुँ, की

करण, अपादान—ते, तें, सु, सुं, सो, सेती।

अधिकरण—परि, मैं, महि, मधि।

एक स्थान पर सम्बन्धकारक स्त्री बहुवचन का परसर्ग 'कीआं' भी मिलता है 'जलकीआं, नदीआं, बहतीआं है।

७. क्रियाओं में संयुक्त क्रियाएँ बहुत कम हैं कहीं-कहीं मिलती हैं, जैसे

आकर खड़ा रहा

मरल्या आ

८. पूर्वकालिक रूप—आकर, जोड़कर, मिलि

संयुक्त काल—चलता है, होता है, होइ है, धरै है, होत है, चाहता है, बैठे हैं।

वर्तमान सामान्य—कहै, भ्रमते, उतपते, अनुसरै, भोगवै

लट् तिङन्त

व्यंजन दित्व के

क्रिया रूप—दिता

नामधातु रूप—अंचवते, अनुसुरै

आं वाले रूप—बहतीआं (पंजाबी प्रभाव)

'ण' वाले रूप—गावणा, ध्यावणा, करणा।

भूतकालिक कृदन्त (पूर्ण) तीन प्रकार के हैं—

१. या विभाग—आया, आव्या, कह्या।

२. आकारान्त—हुआ, कहा, रहा।

३. ब्रजभाषा के औ वाले रूप—रहिओ, उत्पन्निओ।

हैं, हूँ, है के साथ 'हइ' 'ऊँ' 'हैनि' जैसे रूप भी प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी—एक दिवस साहिबां ढढणी कूँ पाण पुलावती थी। ढढणी प्रसाद कीया। साहिबां तुझ कुँ क्या उपगार करूँ। हम कूँ क्या उपगार करहुगे। हमारे जडां बूढां के उठ साफ करउ। तेहउ अवर क्या उपगार करउगे। कुतुबशतम् तहाँ गति कउन पावते हैं। भूगोल पुराण।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ब्रजभाषा पंजाबी आदि निकटवर्ती उपभाषाओं का प्रभाव पर्याप्त है। ऐसा होने पर भी इस काल के खड़ी बोली वाले गद्य

की भाषा आधुनिक खड़ी बोली से बहुत निकट है। बहुवचन प्रत्यय 'नि', 'न' अन्त वाले रूपों के साथ-साथ ओं, इयाँ, वाले रूपों का ही बाहुल्य है—पदमनियाँ, फारणेहरियाँ आदि।

हिन्दी के वाक्य गठन के प्राचीन रूप की दृष्टि से भी ये समस्त ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं जिन पर पृथक् से अध्ययन किया जाना चाहिए। एक वाक्य-शैली दृष्टव्य है—

कैसे हैं श्रीराम; लक्ष्मीकर आलिंगित है हृदय जिनका और प्रफुल्लित है मुख-रूपी कमल जिनका, महा पुण्याधिकारी है महा बुद्धिमान है, गुणन के मन्दिर उदार हैं चरित्र जिनका चरित्र केवल ज्ञान के ही गम्य है ऐसे जो—श्री रामचन्द्र। पदम पुराण वचनिका[1]।

खड़ी बोली गद्य का वास्तविक विकास १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ से होता है। राजनीतिक तत्वों, धार्मिक प्रचारकों, शिक्षा प्रसार के माध्यम स्वरूप, समाचार पत्र, प्रेस का आविष्कार, बंगला तथा अँग्रेजी के सम्पर्क से, ईसाइयों का प्रचार आदि ने खड़ी बोली के हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

खड़ी बोली का रूप[2]—कौरवी[3]

डॉ० कृष्णचन्द्र इस बोली के सम्बन्ध में स्पष्टत: लिखते हैं यही वह बोली है जिसको ११-१२वीं शती के पश्चात् पंजाब की ओर से आकर दिल्ली में बसने वाले यवन आक्रान्ताओं ने अपने व्यवहार के लिए चुना था। वास्तव में खड़ी बोली इधर के ग्रामीणों की शुद्ध सम्पूर्ण बोली है।

यह ब्रज, बाँगरू, पंजाबी, राजस्थानी से घिरी है। दिल्ली राजधानी होने के कारण समय-समय पर बदलते हुये शासकों के प्रभाव स्वरूप इस बोली की देशी शब्दावली पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित होती गई। रेख्ता और हिन्दवी की परम्परा में ही यह बोली विकसित हुई है। वस्तुत: यह वही भाषा थी जिसे खुसरो ने हिन्दी हिन्दवी या रेख्ता आ ग्रियर्सन महोदय ने पश्चिमी (हिन्दी) देशज हिन्दोस्तानी तथा महा पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने 'कौरवी' नाम दिया है। इसी में जब फारसी

---

१. वही, प्रेम प्रकाश गौतम के निबन्ध से उद्धृत।

२. इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य है डॉ० हरिश्चन्द्र शर्मा का 'खड़ी बोली का विकास' जिस पर आगरा विश्वविद्यालय से १६५६ में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

३. डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा—कौरवी और राष्ट्रभाषा हिन्दी, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४७७-४८५।

तत्सम शब्दों की अधिकता हो जाती है तो इसको उर्दू और संस्कृत तत्सम बहुला होने पर साहित्यिक हिन्दी कहा जाता है। वास्तव में यह कुरु प्रदेश के ग्रामीणों की बोली है। किसी समय में यमुना के पश्चिम की समस्त वनस्थली जो सरहिन्द तक फैली थी, कुरु जंगल के नाम से विख्यात थीं। कुरु प्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर थी जो मेरठ जिले की मवाना तहसील का आज एक गाँव है। वर्तमान खड़ी बोली प्रदेश वाले सीमा-निर्धारण आधुनिक विद्वानों ने किया है। वह लगभग सभी कुरु प्रदेश के अन्तर्गत आ जाता है। अतः खड़ी बोली को 'कौरवी' नाम से पुकारना अत्यन्त उपयुक्त है।[1]

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इसका क्षेत्र सिरहिन्दी, पश्चिम रुहेलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला जिला माना है जिसमें रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला तथा कलसिया और पटियाला रियासत का पूर्वी भाग आ जाता है।

इस बोली के बोलने वालों की संख्या ५३ लाख[2] के लगभग है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित यूरोपीय देशों की जनसंख्या के अंक रोचक प्रतीत होंगे—ग्रीस ५४ लाख, बलगेरिया ४६ लाख, तथा तीन भाषाएँ बोलने वाला स्विट्जरलैंड ३६ लाख।

टिप्पणी—यह जनसंख्या सन् १६२१ के आधार पर प्रतीत होती है, निश्चित रूप से आज यह संख्या बढ़कर लगभग १ करोड़ ५३ लाख के लगभग होगी।

खड़ी बोली की भौगोलिक स्थिति को देखकर डॉ० उदय नारायण तिवारी[3] ने अपना मत दिया है 'यह तथा इसके आधार पर निर्मित साहित्यिक हिन्दी उस स्थान की भाषाएँ हैं जहाँ ब्रजभाखा शनैः शनैः पंजाबी में अन्तर्भुक्त हो जाती है।

खड़ी बोली का परम्परागत सम्बन्ध डॉ० वर्मा[4] ने इस प्रकार स्थापित किया है—

प्राचीन जनपद	—महाभारत के आधार पर	—कुरु
महा जनपद	—बुद्ध भगवान के समय में मध्यदेश	—कुरु

---

१. कृष्णचन्द्र शर्मा, वही, पृष्ठ ४७७-४७८।

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, सन् १६४६, पृष्ठ ६४-६५।

३. डॉ० उदय नारायण तिवारी—हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, सं० २०१२, पृष्ठ २३०।

४. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी की बोलियाँ तथा प्राचीन जनपद, विचार-धारा, १६५६, पृष्ठ २५।

मध्यकाल के मुख्य राज्य	—चीनी यात्री ह्वेनसांग के आधार पर	—स्थानेश्वर
सूबे और राज्य	—मुसलमान काल में (अकबर)	—दिल्ली
वर्तमान बोलियाँ	—वर्तमान स्थिति में	—खड़ीबोली तथा बांगरू

द्वित्व की प्रवृत्ति के कारण खड़ी बोली पंजाबी की ओर झुकी हुई है। शौरसेनी की प्राचीन परम्परा में आते हुए भी इस पर अन्य प्रभाव विशेष दृष्टिगत होते हैं जिसके आधार पर बद्रीनाथ भट्ट के अनुसार खड़ी बोली की उत्पत्ति—

शौरसेनी + अर्द्ध मागधी तथा पंजाबी + पैशाची के गड़बड़ अपभ्रंश से हुई है।

बांगरू[1] या बांगड़ू

बांगड़ू एक प्रकार से पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली है, पानीपत, कुरुक्षेत्र आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। पंजाबी का बांगड़ू के माध्यम से ही प्रभाव खड़ी बोली पर पड़ा है। यह जाटू या देसड़ी 'चमरवा' तथा 'हरियानी' नाम से भी जानी जाती है। इसके पश्चिमी सीमा पर सरस्वती नदी बहती है। एक प्रकार से हिन्दी को सरहदी बोली मानना अनुचित न होगा। वास्तव में यह खड़ी बोली का ही एक उपरूप है और इसको हिन्दी की स्वतन्त्र बोली बनाना चिन्त्य है।[2]

खड़ी-साहित्यिक और बोली[3]

१·१ स्वरों का जहाँ तक सम्बन्ध है साहित्यिक हिन्दी का 'ऐ' तथा 'औ' अपने संध्यक्षर उच्चारण के स्थान पर क्रमशः शुद्ध अग्र अर्द्ध संवत दीर्घ तथा पश्च अर्द्ध संवृत दीर्घ स्वर में परिवर्तित हो जाते हैं—

पैर —पेर
मैला —मेल्हा (ह् श्रुति का मध्यागम है)
दौड़ —दोड़
और —ओर—अर—होर

---

१. बांगड़ू पर उल्लेखनीय कार्य है डॉ० जगदेवसिंह का **A Grammatical Structure of Bangaru**—जिस पर वैनिस्लावेनिया विश्वविद्यालय (यू० एस० ए०) से पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई।

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९, पृष्ठ ६५।

३. डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा के निबन्ध तथा डॉ० उदय नारायण तिवारी के हिन्दी भाषा के उद्गम और विकास के पृष्ठ २३०-२३४ के आधार पर।

१·२ आद्य 'इ' का 'अ' हो जाना—

इकबाल—अकबाल

शिकारी—सकारी

मिठाई —मठाई

२. 'उ' का 'अ' हो जाना

तुम—तम

३. 'अ' का 'इ' भी हो जाता है

सरकारी—सिरकारी

४. स्वर का लोप भी हो जाता है—

इकट्ठा —कट्ठा

उठवाना—ठुवाना

२—व्यंजनों में मूर्द्धन्य व्यंजनों की प्रधानता है—

'न' का 'ण'

मानुस—माणस

सुनना—सुणणा

२·२ 'ल' का 'ल'।

बाल —बाल

बलद —बलद

२·३ 'ड़' के साथ पर 'ड' रूप भी चलता है, इसी प्रकार 'ढ़' के साथ-साथ 'ढ'

कढ़ाई—कढाई

गाड़ी —गाडी—गड्डी

२·४ द्वित्व की प्रवृत्ति। यह प्रवृत्ति पालि से सीधी लोक में चलती रही और आज इस बोली में सुरक्षित है।

१. प्रथम अक्षर का स्वर अपरिवर्तित—

सा० हिन्दी	बोली रूप
लोटा	लोट्टा
धोती	धोत्ती
जीजा	जीज्जा, जिज्जा
बोली	बोल्ली
बेटा	बेट्टा

२. दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण—

आ—अ	गाड़ी	गड्डी
ई —इ	घीसा	घिस्सा
	मीठा	मिट्ठा
ऊ —उ	ऊपर	उप्पर
	भूखा	भुक्खा

अन्य परिवर्तनों के साथ दित्व—

बाप	बाप्पू
बासन	बास्सन्ह
सीधा	सुध्धा, सुह्डा

२·५ महाप्राण का लोप—

भगवान	बगमान
धीरे	दीरे

२. 'ह' का 'स' में—

है	सैं

२·६ 'श' 'ज़' 'फ़' जैसे संघर्षी ध्वनि रूप नहीं मिलते हैं।

३· व्यंजनान्त संज्ञाओं के तिर्यक के एक वचन रूपों के अन्त में ओं तथा ऊँ आता है—

घर में	घरों मा
घर जा रहा है	घरूँ जार्या

४. क्रिया में 'है' तथा 'था' अन्तर्भुक्त हो जाता है—

करता था	करै हागा
खाता था	खायै हागा
जाएगा	जागा

सम्पूर्ण वर्तमानकालिक क्रिया के स्थान पर सामान्य वर्तमान का प्रयोग—

गया है	जार्या है
गए हैं	जार्ये हैं

५. मुख-सुख के लिए स्वरों का लोप तथा श्रुतियों का आगम—

गया	ग्या
करा	कर्या
मिला	मिल्या
यहाँ से	यँह्स्सै

६. कारकीय परसर्ग—

परसर्गों का व्यवहार साहित्यिक हिन्दी के समान ही होता है। किन्तु 'ने' का प्रयोग कर्मणि और भावे के अतिरिक्त करण में भी कभी-कभी देखा जाता है—

उसने कह दिज्जे यहँसै इबी म्हारा जाण नी हो सक्कै।

सर्वनामों कर्तृ (एजेंट) एक वचन में 'ने' का प्रयोग नहीं होता—

मैं भेज दिया था (मैंने भेज दिया था)

कर्त्ता—ने, ने
कर्म, सम्प्रदान—के, कूँ, नूँ ने,
अपादान—सेत्ती
अधिकरण—पे, 'प'

७. सर्वनामों में तुम के साथ 'तम', मेरा का एक रूप 'म्हारा', तथा तुम्हारा का 'थारा' रूप भी चलता है। शेष सर्वनाम समान ही हैं।

८. दीर्घ स्वर के अनुनासिकता के स्थान पर नासिक्य व्यंजन भी आ जाता है—

ईँट—ईन्ट
पाँच—पान्च

वाक्य-विन्यास प्रायः एक-सा ही है।

कौरवी पौरुषेय व्यक्तियों की बोली है, जिनका व्यवसाय साधारणतया कृषि है। यह क्षेत्र धन-दौलत से विशेष सम्पन्न है। गूजर जाति भी विशेष रहती है जिसकी गूजरी बोली कुछ अपनी निजी विशेषताएँ रखती है। इसके अतिरिक्त मेव जाति भी है। हापुड़ में ब्रजभाषा का पुट कुछ अधिक है जबकि बागपत तहसील में हरियानी भाषा का प्रभाव और मवाने में, मुजफ्फरनगर की दिरव बोली का प्रभाव अधिक है। परिनिष्ठित बोली के स्वरूप के लिए बागपत (वाक्प्रस्थ) बड़ौत को ही माना जाता है।

खड़ी बोली शब्द का प्रयोग

भाषा के अर्थ में 'खड़ी बोली' का पहला प्रयोग लिखित साहित्य में लल्लूजी लाल के प्रेमसागर की भूमिका में मिलता है—

'श्रीयुत गुनगाहक गुनियन-सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में श्री लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मन गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले, यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम 'प्रेमसागर' धरा।'[1]

---

१. प्रेमसागर, ना० प्र० सभा काशी, सं० १९७९, भूमिका, पृष्ठ १।

लगभग इसी समय फोर्ट विलियम कॉलेज के डॉ० जान गिलक्राइस्ट तथा सदल मिश्र ने भी इस नाम का उल्लेख किया है। गिलक्राइस्ट ने १८०३ में प्रकाशित दो पुस्तकों में तीन बार इसका उल्लेख किया है—

'इन (कहानियों) में से कई **खड़ी बोली** अथवा हिन्दुस्तानी के शुद्ध हिन्दवी ढंग की है। कुछ ब्रजभाषा में लिखी जाएँगी।' (हिन्द स्टोरी टेलर—भाग २)

'मुझे खेद है कि ब्रजभाषा के साथ **खड़ी बोली** की भी उपेक्षा कर दी गई थी।'

'ठेठ **खड़ी बोली** में हिन्दुस्तानी के व्याकरण पर विशेष ध्यान दिया जाता है और अरबी-फारसी का प्रायः पूर्ण परित्याग रहता है।'

(दि ओरियंटल फेब्युलिस्ट)

सदल मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान[1] में इसका उल्लेख किया है।

'अब संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को जिसमें चन्द्रावली की कथा कही है, देववाणी में कोई समझ नहीं सकता इसलिए **खड़ी बोली** में किया।'

इस प्रकार सन् १८०३ में कुल इस शब्द की ५ आवृत्ति मिलती हैं। तत्पश्चात् १८०४ में गिलक्राइस्ट ने द हिन्दी रोमन आर्थोएपिग्रेफिक अल्टिमेटम[2] आदि में किया जिसका उल्लेख यहाँ किया जाता है—

शकुन्तला का दूसरा अनुवाद **खड़ी बोली अथवा भारतवर्ष की निराली (खालिस)** बोली में है। हिन्दुस्तानी से इसका भेद केवल इसी बात में है कि अरबी और फारसी का प्रत्येक शब्द छाँट दिया जाता है।

"प्रेमसागर एक बहुत ही मनोरंजक पुस्तक है जिसे लल्लूलाल जी ने हमारे विद्यार्थियों को हिन्दुस्तानी की शिक्षा देने के निमित्त ब्रजभाषा की सुन्दरता और स्वच्छता के साथ खड़ी बोली में किया। इससे अँग्रेजी भारत की हिन्दू जनता के वृहत् समुदाय को भी लाभ होगा।

सन् १८०५ में सदल मिश्र[3] ने पुनः रामचरित्र में इसका उल्लेख किया, 'अब इस पोथी को भाषा करने का कारण सिद्ध है कि मिस्टर जान गिलक्रस्त साहब ने ठहराया और एक दिन आज्ञा दी कि अध्यात्म रामायण को ऐसी बोली में करो जिसमें अरबी-फारसी न आवे। तब मैं इसको **खड़ी बोली** में कहने लगा और सं० १८६२ में इस पोथी को समाप्त किया और नाम इसका रामचरित्र रखा।'

---

१. सदल मिश्र—नासिकेतोपाख्यान, काशी, सं० २००७, पृष्ठ २।
२. गिलक्राइस्ट के उद्धरण डॉ० आशा गुप्ता—खड़ी बोली शब्द का प्रयोग और अर्थ, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ से उद्धृत, पृष्ठ ४८६-४८७।
३. रामचरित्र, पृष्ठ (हस्तलिखित प्रति) इंडिया आफिस लाइब्रेरी, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ७ अंक १ के पृष्ठ ३४ से उद्धृत।

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्राप्त इन उद्धरणों से कुछ प्रश्न उठ खड़े होते हैं—

१. क्या गिलक्राइस्ट महोदय को इस बोली का नाम पता था ?
२. खड़ी बोली किस अर्थ का द्योतक है ?
३. आगरा तो ब्रजभाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत है फिर यह दिल्ली आगरे की बोली से क्या तात्पर्य ?
४. इस भाषा का आविष्कार किया गया ?

१. क्या गिलक्राइस्ट महोदय को इस बोली का नाम पता था ?

ऐसा प्रतीत होता है कि गिलक्राइस्ट को इस बोली का परिचय अवश्य था पर उसका नाम नहीं जानते थे, यह भी हो सकता है कि उस समय तक 'इस भाषा' को 'खड़ी बोली' नाम से लोक में अभिहित ही नहीं किया जाता हो।

. पहला प्रमाण तो यह दिया जा सकता है कि सदल मिश्र को जो आज्ञा मिली उसमें खड़ी बोली शब्द का निर्देश नहीं है। यही कहा गया है **ऐसी बोली** में कहो कि जिसमें अरबी फारसी न आये।

दूसरे इसरे पूर्व गिलक्राइस्ट महोदय ने (१७९८ ई० में जो ग्रन्थ[1] लिखे उसमें भी कहीं इस बोली का नाम-निर्देश नहीं है) इससे पूर्व सर्वत्र हिन्दवी शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

२. खड़ी बोली किस अर्थ का द्योतक है ?

'खड़ी बोली' के 'खड़ी' शब्द को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अनेक कल्पनाएं कर डाली हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मत दृष्टव्य हैं—

वर्ग प्रथम खड़ी तथा पड़ी : पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—खड़ी बोली—मलेच्छ भाषा[2] खड़ी बोली उर्दू से बनाई गई है अर्थात् हिन्दी मुसलमानी भाषा है।....हिन्दुओं की रची हुई पुरानी कविता जो मिलती है वह ब्रजभाषा या पूर्वी बैसवाड़ी, अवधी, राजस्थानी,

---

१. ओरियंटल लिंग्विस्ट' तथा गिलक्राइस्ट डिक्सनरी का अपेंडिक्स उल्लेखनीय हैं।
२. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी- पुरानी हिन्दी, सं० २००५ पृष्ठ १०७ - १०८। प्रादेशिक बोलियों के लिए' पड़ी बोली' का प्रयोग इससे पूर्व कहीं नहीं मिलता। यह तो खड़ी की तर्ज पर' पड़ी' की कल्पना की गई है। 'पड़ी' का प्रयोग आगे चलकर डॉ० चाटुर्ज्या ने भी इस अर्थ में किया है।

गुजराती आदि ही मिलती है अर्थात् पड़ी बोली[1] में पाई जाती है। **खड़ी बोली या पक्की[2]** बोली या रेख्ता या वर्तमान हिन्दी के आरम्भ काल के गद्य और पद्य को देखकर यही जान पड़ता है कि उर्दू[3] रचना में फारसी अरबी तत्सम या तद्भवों को निकालकर संस्कृत या हिन्दी तत्सम और तद्भव रखने से हिन्दी बना ली गई है। इसका कारण यही है कि हिन्दू तो अपने-अपने घरों की प्रादेशिक और प्रान्तीय बोली में रंगे थे, उसकी परम्परागत मधुरता उन्हें प्रिय थी। विदेशी मुसलमानों ने **आगरे, दिल्ली, सहारनपुर, मेरठ की पड़ी भाषा को 'खड़ी' बनाकर अपने लश्कर और समाज के लिए उपयोगी बनाया।** किसी प्रान्तीय भाषा से उनका परम्परागत प्रेम न था।

डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या[4]

१८वीं शताब्दी के अन्त तक तो हिन्दू लोगों ने भी इस प्रतिष्ठित दरबारी भाषा की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। इसे लोग 'खड़ी बोली' कहने लगे थे जबकि ब्रजभाषा, अवधी आदि अन्य बोलियाँ पड़ी बोली—(गिरी हुई बोली) कही जाने लगी थीं।

भगवान दीन[5]

फारसी में कुछ ब्रज और कुछ बाँगड़ू की टेक लगाकर बोली को 'खड़ा' कर दिया था और इसका नाम पड़ गया 'खड़ी बोली'।

---

१. वही प्रयोग दुबारा हुआ है।

२. यह कल्पना आचार्य अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने भी की' ना० प्रा० १९१३ में विचार मुद्रित हुए। आचार्य किशोरी दास बाजपेयी खड़ी बोली के नाम का आधार खड़ी पाई मानते हैं। हिन्दी शब्दानुशासन प्र० सं० पृष्ठ ५४५।

३. जगन्नाथ दास रत्नाकर ने भी उर्दू का ही रूपान्तर खड़ी बोली को माना है।

४. डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या-भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, १९५७ ई०, पृष्ठ २१६।

५. भगवान दीन-हिन्दुस्तानी पत्रिका १९४६, डॉ० आशा गुहा के लेख से उद्धृत।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[1]—ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव में खड़ी सी लगती है, कदाचित् इसी कारण इसका नाम 'खड़ी बोली' पड़ा।

वर्ग द्वितीय : खड़ी—खरी (विशुद्ध)

सदल मिश्र— इस अर्थ में सर्व प्रथम प्रयोग सदल मिश्र का ही है—खड़ी बोली अथवा भारतवर्ष की निराली (खालिस) बोली में है।

गार्साद तासी तथा ईस्टविक[2]—विशुद्ध या बिना मिलावट की।

कैलोग[3] शुद्ध बोली के अर्थ में ही प्रयोग किया है।

This form of Hindi has also often been termed Khari boli, or the 'Pure speech' and also, by some European scholars, after the analogy of the German, 'High Hindi'.

कृष्णचन्द्र शर्मा[4]—वास्तव में खड़ी बोली इधर के ग्रामीणों की शुद्ध-सम्पूर्ण बोली है, जिसे खड़ी बोली की अपेक्षा 'खरी-बोली' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

चन्द्रबली पाण्डेय—खड़ी बोली का अर्थ प्राकृत, ठेठ या शुद्ध बोली है।

वर्ग-तृतीय : खड़ी-गँवारी बोली

खड़ा-बिना पका, असिद्ध, कच्चा, जैसे खड़ा चना। आगरे जिले में ऐसी बोली को जो तू तेरे आदि भद्दे, गँवार, कर्कश, और कठोर शब्दों के व्यवहार के कारण अखरे, ठाड़ी बोली[5] कहते हैं।

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा-हिन्दी भाषा का इतिहास, सन् १९४९, पृष्ठ ६४।

२. आप हेलबरी कालेज में हिन्दुस्तानी के अध्यक्ष थे। हार्टफोर्ड कोष में लिखा है

अ—खड़ा—Erect, Upright, Steep, Standing.

आ—खड़ी बोली—The true genuine language or the pure language.

३. कैलोग-हिन्दी व्याकरण, सन् १८७५, सं०१९५५, भूमिका, पृष्ठ १८।

४. कृष्ण चन्द्र शर्मा—कौरवी और राष्ट्रभाषा हिन्दी, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४७७।
इससे पूर्व उन्होंने लिखा है कि 'आज भी जिसे' 'दो टुकड़े बात कहना' बोलते हैं कोई उनसे सीख जाय।'

५. बुन्देलखण्ड में भी खड़ी बोली को ठाड़ी बोली या तुर्की कहते हैं—मारवाड़ी में इसको 'ठांठ' बोली कहते हैं—
डॉ० विश्वनाथ प्रसाद—आगरे की खड़ी बोली, भारतीय साहित्य, वर्ष २, पृ० ४८७।

आगरा गजेटियर[1]—अधिकांश व्यक्ति ब्रज बोली ही बोलते हैं जो पूर्वी भाग 'अन्तर्वेदी' नाम से अभिहित भाषा का प्रतिरूप है जिसको वहाँ पर गाँववारी या खड़ी बोली कहते हैं।

अब्दुल हक[2]—खड़ी और खरी का फ़र्क तो किया किन्तु अर्थ प्राय: वही रक्खे मुरव्वजा, आम मुस्तनद ज़बान और शायद प्लेट्स के कोश के आधार पर 'वल्गर' विशेषण से ही संकेत लेकर यह भी कह डाला कि खड़ी बोली के माने हिन्दुस्तानी में आमतौर पर गंवारी बोली के हैं जिसे हिन्दुस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है। वह न कोई खास ज़बान है और न ज़बान की कोई शाखा।

वर्ग-चतुर्थ : खड़ी बोली—चलती भाषा

ग्राहेम बेली—इस पक्ष का प्रबल समर्थन टी० ग्राहेम बेली ने किया। अब्दुल हक की मान्यता 'गँवारी बोली' का खण्डन करके अनेक तर्क वा प्रमाणों को प्रस्तुत करते हुए विद्वानों में इस सम्बन्ध में फैले हुए भ्रम को दूर किया और फिर अन्त में उसका सामान्य अर्थ 'चलती भाषा', 'प्रचलित और स्थापित भाषा' सिद्ध किया। बेली ने टकसाली रूप में इसे गृहीत किया। दिल्ली और आगरे की बोलचाल की भाषा के अर्थ में खड़ी बोली शब्द का प्रयोग फोर्ट विलियम कालेज के उन अधिकारियों के भी रुचि के अनुसार ठीक था जिन्होंने उससे 'चलती भाषा' का ही अर्थ विशेष लिया है। बेली[3] ने कड़े शब्दों में गंवारी भाषा का विरोध किया।

माताबदल जायसवाल[4]—**खड़ी बोली का सार्थक अर्थ प्रचलित बोली को ही** निश्चित किया।

---

1. The buck of the people speak the Braj, dialect which is practically identical with so called ! 'Antarvedi' of the eastern parts known locally as gaonwari or Khari boli, Agra Gagetteer, 1905 page 82-83.

२. **उर्दू रिसाला, में प्रकाशित लेख—बाज गलतफहमियाँ।**

3. T. G. Baily—Does Khari Boli, means nothing else than Rustic Speech—B. S. O. S. Vol. Y III, 1935, page 363-71. **इसका अनुवाद ही ना० प्र० पत्रिका (भाग १७, सं० १९९३ में पृष्ठ) १०५ से मुद्रित हुआ है।**

४. **माताबदल जायसवाल—खड़ी बोली नाम का इतिहास, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ७, अंक १।**

शितिकंठ मिश्र[1]—मौलिक प्रयोगों से इसका जो प्रचलित अर्थ निकलता है उसका रहस्य इसकी सर्वजन सुबोधता और सरलता ही है। अतः ग्राहेम बेली के प्रचलित अर्थ को मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति न होनी चाहिए।

वर्ग-पाँचवाँ : खड़ी बोली—स्टैंडर्ड भाषा

गिलक्रिस्ट ने खड़ी बोली के 'प्योर', 'स्टर्लिंग', 'पर्टिक्युलियर ईडियम' आदि विशेषणों को लेकर स्टर्लिंग को इस प्रकार समझाया—

Sterling : Standard, Genuine

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद[2]—यह ठीक है कि आगरा ब्रजभाषा क्षेत्र में है। यहाँ उस समय भी ब्रजभाषा बोली जाती थी और अब भी बोली जाती है। पर साथ ही यह भी ठीक है कि आगरा बहुत पहले से ही उस भाषा का भी केन्द्र बन चुका था, जो दिल्ली की प्रचलित भाषा से बहुत भिन्न नहीं थी और जो एक ही साथ जनसाधारण तथा शिष्ट समाज के व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त होनें के कारण धीरे-धीरे एक स्टैंडर्ड रूप ग्रहण करती जा रही थी। अँ० के 'स्टैंडर्ड' शब्द की व्युत्पत्ति के मूल में भी 'स्टैंड' धातु है जिसका अर्थ है—खड़ा होना'.......इस प्रकार लल्लू जी लाल ने खड़ी बोली का जो थोड़ा सा वर्णन दिया है, उससे और उसके प्रयोग से यह संकेतित होता है कि उनकी दृष्टि में—

(१) खड़ी बोली ब्रजभाषा और रेख़्ता दोनों से ही भिन्न एक बोलचाल की भाषा है।

(२) वह गँवारी भाषा नहीं वरन् एक व्यावहारिक तथा परिनिष्ठित भाषा है, जिसमें साहित्यिक ग्रन्थ लिखे जा सकते थे।

(३) उसमें 'यामनी' भाषा के शब्दों को जोड़ देने से रेख़्ता का रूप हो जाता था और उन्हें छोड़ देने से 'हिन्दुवी' का।

(४) वह दिल्ली और आगरे[3] की भाषा है।

---

१. डॉ० शितिकंठ मिश्र—खड़ी बोली का आन्दोलन—पृष्ठ ११-१२।

२. डॉ० विश्वनाथ प्रसाद—आगरे की खड़ी बोली, भारतीय साहित्य, जुलाई १९५७, पृष्ठ ५४।

३. सदल मिश्र ने जो खड़ी बोली का प्रयोग किया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी बोली दिल्ली आगरे तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि शिष्ट, साहित्यिक भाषा के रूप में उसका प्रसार आरा तक हो चुका था।

देखिये लेखक का निबन्ध 'सदल मिश्र कृत' रामचरित की भाषा सम्बन्धी विशेषताएँ—हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १४, अंक ४।

आगे चलकर डाक्टर साहब ने इस लल्लूलाल जी की भाषा की तुलना नजीर की भाषा से करते हुए दोनों की भाषा को समीप सिद्ध किया है—

"नजीर की भाषा और लल्लूलाल जी की भाषा की तुलना की जाय तो उनमें बहुत कुछ समानताएँ पाई जायेंगी, हालांकि एक ने गद्य में लिखा, दूसरे ने पद्य में। एक हिन्दू था और दूसरा मुसलमान। एक ने अँगरेजों की छत्र-छाया में उनके निर्देशानुसार 'यामनी' शब्दों को त्याज्य मानकर लिखा है और दूसरे ने सच्चे लोक-कवि के रूप में हिन्दू मुसलमानों दोनों का प्रतिनिधित्व करते हुए जन-समाज में प्रचलित खड़ी बोली के समस्त शब्द-भंडार का स्वच्छन्द उपयोग करते हुए स्वतन्त्र रूप से लिखा है। लल्लूलालजी की भाषा में जैसे ब्रजभाषा के प्रयोग मिलते हैं वैसे ही नजीर की भाषा में भी। × × × × भाषा के ऐसे ही जनसम्मत आडम्बरहीन सजीव रूप को लक्ष्य करके इंशाअल्लाखाँ ने बिना किसी मिलावट की हिन्दी लिखने की ठानी थी। उसमें किसी गँवारी भाषा का भ्रम तो नहीं किया जा सकता। न तो इंशा ने, न नजीर ने, और न लल्लूलाल ने गँवारी भाषा में साहित्य रचना की। उनकी भाषा भी दिल्ली-आगरे की चलती खड़ी बोली थी, जिसके रूप के विषय में इंशा[1] के शब्दों में कहा जा सकता है, 'जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते-चालते हैं।'

३. दिल्ली-आगरे की खड़ी बोली से तात्पर्य

इस प्रश्न का उत्तर डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के उद्धरणों में समाहित हो जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि खड़ी बोली दिल्ली और आगरे में ही बोली जाती थी, इंशाअल्लाखां और सदल मिश्र के द्वारा इस बोली में साहित्य रचना की गई। यह भाषा तो उस समय की बहुप्रचलित भाषा थी, लेकिन इसका निर्देश केवल परिनिष्ठित रूप की ओर ही है। आज भी पछांह की हिन्दी ही परिनिष्ठित समझी जाती है। यह एक आश्चर्य की बात है कि 'पश्चिम के ही तीन बड़े केन्द्र मेरठ, दिल्ली और आगरे की बोली पर आज का रूप आधारित है और दूसरी ओर हिन्दी के पोषक और उसके लिखित रूप को विकसित करने वाले व्यक्ति अधिकांशतः पूर्व के थे और आज भी हैं, कुछ समय पूर्व से ही आगरा दिल्ली में कुछ अधिक जागर्ति दिखाई पड़ रही है, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल आदि साहित्यकारों की एक बड़ी संख्या पूर्व के केन्द्रों से ही संबद्ध है।'[2]

---

१. इंशाअल्लाखां—रानी केतकी की कहानी, सं० २००६, पृष्ठ २।

२. हिन्दी का परिनिष्ठित रूप—डॉ० राम विलास शर्मा के विचार, भारतीय साहित्य, अक्टूबर १९५७, पृष्ठ १५४।

४. क्या इस भाषा का आविष्कार किया गया ?

प्रेमसागर की भाषा के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए ग्रियर्सन ने लाल चन्द्रिका[1] की भूमिका में लिखा है, इस प्रकार की भाषा इस देश में इसके पहले कभी थी ही नहीं। इसका आरम्भ १९वीं सदी के प्रारम्भ में अंगरेजों के प्रभाव से हुआ। इसके पहले यदि कोई हिन्दू उर्दू से पृथक् गद्य लिखना चाहता था तो अपनी स्थानीय बोली अवधी, बुन्देली, ब्रजभाषा, वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी और न जाने किस-किस में लिख डालता था। जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से प्रेमसागर की रचना करके लल्लू जी लाल ने स्थिति बदल दी। ग्रियर्सन ने यहाँ तक कह डाला कि प्रेमसागर को लिखकर लल्लूजी लाल ने बिल्कुल एक नई भाषा गढ़ डाली।[2]

इस मत के पूर्णतया समर्थक तो नहीं पर कृत्रिम भाषा का रूप मानने वाले शिवप्रसाद[3] जी भी थे। इस प्रवाह में बहकर ही डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने[4] भी लिख दिया है—

"आधुनिक हिन्दी भाषा (खड़ी बोली या उच्च हिन्दी को दो पंडितों लल्लू लाल और सदल मिश्र) का आविष्कार समझना चाहिये।"

ग्रियर्सन के कथन पर विचार प्रकट करते हुए डॉ० प्रसाद लिखते हैं 'इस भ्रमात्मक बात का खण्डन इसी से हो जाता है कि जिस समय आगरे के लल्लू जी लाल ने प्रेमसागर की रचना की, उसी समय आगरे के सदल मिश्र ने भी उसी भाषा में नासिकेतोपाख्यान का प्रणयन किया। यह कितनी असंयत और अग्राह्य बात है कि एक नई भाषा ईजाद की जाय और उसका जादू एकाएक आगरे से लेकर आरा तक फैल जाय। फिर ग्रियर्सन के ही आगे के कथन से इस बात का खंडन हो जाता है कि जब प्रेमसागर लिखा गया तब हिन्दुओं ने समझा कि अरे, यह तो वही गद्य की भाषा है जिसे वे बिना जाने जीवन भर बोलते रहे।'

लल्लू जी लाल कृत प्रेमसागर से पूर्व 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग यद्यपि हिन्दी साहित्य के किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता तथापि निश्चित ही यह बोली

---

१. भारतीय साहित्य, सन् १९५७, पृष्ठ ४९१-९२ से उद्धृत।

२. When, therefore, Lalluji Lal wrote his Prem Sagar in Hindi he was inventing an altogether new language.

३. डॉ० आशा गुप्ता—खड़ी बोली शब्द का प्रयोग, वही लेख, पृष्ठ ५०४ मिलाइए—डॉ० ताराचन्द के मत से हिन्दुस्तानी कोई मनगढन्त नई भाषा नहीं है वह वही खड़ी बोली है जिसे दिल्ली और मेरठ के आस-पास रहने वाले बहुत पुराने वक्तों से बोलते आते हैं।' हिन्दुस्तानी, १९३८, वहीं से उद्धृत, पृष्ठ ४८९।

४. डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय-आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, सन् १९५३, पृष्ठ २७३।

भारत में स्थान एवं स्वरूप भेद से हिन्दवी, हिन्दई, रेख़ता, हिन्दुस्तानी आदि अनेक नामों से प्रचलित थी।

यह कहना कि खड़ी बोली में गद्य लिखने का आरम्भ लल्लू जी लाल आदि ने अंग्रेजों की प्रेरणा से किया था एकदम निराधार और ग़लत है। बहुत पहिले से खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था।[1]

खड़ी बोली के प्राचीन नाम 'हिन्दुवी', 'हिन्दुई', 'रेख़ता' तथा नवीन नाम 'हिन्दुस्तानी' के सम्बन्ध में विवेचन किया जा चुका है। कुछ नये नाम इधर और चल रहे हैं—

स्व० कामता प्रसाद गुरु[2] ने 'ठेठ', 'शुद्ध', 'उच्च' तीन प्रकार की हिन्दी बतलाई हैं।

१. **ठेठ हिन्दी**—वह भाषा है अथवा भाषा का वह रूप है जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न हो। इसमें बहुधा तद्भव शब्द आते हैं।

२. **शुद्ध हिन्दी**—शुद्ध 'हिन्दी' में तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का भी प्रयोग होता है पर उसमें विदेशी शब्द नहीं आते।

३. **उच्च हिन्दी**—(i) कभी-कभी प्रांतिक भाषाओं से हिन्दी का भेद बताने के लिए इस भाषा को 'उच्च हिन्दी' कहते हैं।
(ii) जिस भाषा में अनावश्यक संस्कृत शब्दों की भरमार की जाती है।
(iii) कभी-कभी वह केवल 'शुद्ध हिन्दी' के पर्याय में आता है।

४. **नागरी-हिन्दी**—डॉ० चटर्जी[3] साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त हिन्दी भाषा को 'नागरी हिन्दी' कहना अधिक उचित समझते हैं। इसी को उन्होंने **साधु हिन्दी** या **हाई हिन्दी** भी कहा है। १२वीं-१३वीं शताब्दी की तुर्की विजय के पश्चात् पूर्वी पंजाब से बंगाल तक ये उत्तर भारत में बोली जाने वाली सब बोली तथा भाषाओं का प्राचीनतम सादा सरलतम नाम हिन्दी ही है।

---

१. डॉ० कपिल देव सिंह—ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली, १९५६, पृष्ठ ४१ इसी में आपने द्विवेदी जी के उस पत्र को भी प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है जो २०० वर्ष प्राचीन है और जिसको उन्होंने विशाल भारत १९४०, अंक ४, पृष्ठ ३७० पर प्रकाशित कराया था।

२. कामता प्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण, सं० २००९, पृष्ठ ३०।

३. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—आर्य भाषा और हिन्दी, १९५७ ई०, पृष्ठ १५७-१६५।

५. **हिन्दुस्थानी**— यह डॉ० चटर्जी[1] का ही दिया हुआ नाम है। आप हिन्दुस्तानी की अपेक्षाकृत इस नाम को अधिक महत्व देते हैं जिसके अन्तर्गत आप नागरी हिन्दी तथा उर्दू दोनों रूपों को सम्मिलित करते हैं।

अन्त में डॉ० चटर्जी का सुझाव है कि अब वह समय आ पहुँचा है जबकि हम हिन्दुस्थानी के सरल रूप राहोरास्ते एवं हाट बाजार की बोली को, जोकि सदा सर्वदा अजस्र गति से बहती हुई प्रवाहिनी है, मान्य कर लें।

खड़ी बोली के इन विभिन्न रूपों की चर्चा करने के पश्चात् यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि खड़ी बोली हिन्दी भाषा का प्रयोग आजकल तीन अर्थों[2] में चल रहा है।

१. **व्यापक**—शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है।

२. **साहित्यिक**—किन्तु आजकल वास्तव में इसका उत्तर-भारत के मध्यदेश के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया तथा इसी भूमि-भाग की बोलियों और उससे सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है। इस भूमि भाग की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस भूमि-भाग में हिन्दुओं के आधुनिक साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं, शिष्ट बोलचाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एकमात्र खड़ी बोली हिन्दी ही है। साधारणतया 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है।

३. **हिन्दी भाषा**—भाषाशास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिये हुए भूमि-भाग में तीन-चार उपभाषाएँ मानी जाती है। राजस्थानी बोलियों के समुदाय को 'राजस्थानी' के नाम से पृथक् उपभाषा माना गया है। बिहार की मिथिला और पटना -गया की बोलियों तथा उत्तर-प्रदेश की बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बोलियों को बिहारी उपभाषा नाम से पृथक् माना जाता है। उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों की बोलियों का समूह 'पहाड़ी भाषाओं' के नाम से अलग है। इस तरह सूक्ष्म दृष्टि से हिन्दी भाषा की सीमाएँ रह जाती हैं—उत्तर में तराई, पश्चिम में पंजाब के अम्बाला और

---

१. वही, पृष्ठ १६०।
२. **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९ ई०, पृष्ठ ६०।**

हिसार के जिले तथा पूर्व में फैजाबाद, प्रतापगढ़ और इलाहाबाद के जिले। दक्षिण में सीमा में कोई परिवर्तन नहीं होता, वह रायपुर, खंडवा तक ही जाकर रुकती है। इसी के अन्तर्गत बोली जाने वाली हिन्दी की आठ उपभाषाओं में से एक खड़ी बोली हिन्दी का बोली रूप भी है, जो भाषा शास्त्र की दृष्टि से फिर चौथा रूप होगा।

इन समस्त रूपों में से 'हिन्दी' भाषा के दो उपरूप हैं—

अ—पछाँह या पश्चिम का रूप—

आ—पूर्वी रूप—

पछाँह या पश्चिमी हिन्दी जो आधुनिक हिन्दी का आधार है, वह भी दो वर्गों में बाँटी[1] जा सकती है—

आ बोलियाँ— जिनके अन्तर्गत आती है खड़ी बोली या दिल्ली की उर्दू, जो हिन्दी का प्रचलित और स्वीकृत रूप है और स्वीकृत रूप है और वह बोली जो 'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी या' जनपद हिन्दी कहलाती है, जो मेरठ और रुहिलखंड विभाग में प्रचलित है तथा जाट या बांगरू या हरियानी बोली और पूर्वी पंजाब में बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी के रूप।

ओ या औ बोलियाँ—कन्नौजी, ब्रजभाषा और बुन्देली। पहिले की बोलियाँ, पुलिंग के समान रूप से उधार लिए हुए शब्दों को 'आ' की प्रवृत्ति में रखने के कारण पंजाबी से समानता रखती है और 'औ' या 'ओ' को बनाए रखने के कारण राजस्थानी बोलियों मे मेल खाती हैं।

इन दोनों वर्गों के प्रतिनिधि रूप ही क्रमशः खड़ी बोली और ब्रजभाषा यहाँ अध्ययनार्थ लिये गये हैं जिनका तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना ही इस पुस्तक का मुख्य ध्येय हैं।

यह तुलनात्मक विवेचन हिन्दी के उन रूपों का है जिनके पीछे वर्तमान केन्द्रीय भाषा की उस महत्त्वपूर्ण परम्परा का उत्तराधिकार है जिसके कारण वह आस-पास के समस्त प्रदेशों में सर्वाधिक सरलता से समझी जाती है। हिन्दी का यह उत्तराधिकार आज की पछाँही हिन्दी के प्रदेश से संबद्ध प्राचीन संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंशादि के, ग्रन्थों से मिला है। हिन्दी वस्तुतः बहुत प्राचीन काल से आरम्भ होकर आज तक चली आने वाली एक लम्बी शृङ्खला के अन्त में आती है। विभिन्न युगों से चली आती हुई यह शृङ्खला मध्य देश की भाषा के उत्तरोत्तर विकास में सदैव प्रतिष्ठा की अधिकारिणी रही है।

---

१. **सुनीति कुमार चाटुर्ज्या—हिन्दी का उत्तराधिकार, भारतीय साहित्य, जनवरी १९५६ पृष्ठ १९।**

ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली

का

तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी भाषी प्रदेश
पाकिस्तान
पूर्वी पंजाबी
अम्बाला
शिमला
हिसार
बांगरू
देहली
मेरठ
नैनीताल
नैपाली
नैपाल
काठमांडू
मथुरा
जयपुरी
आगरा
जयपुर
कन्नौज
अवधी
मारवाड़ी
भोजपुरी
मैथिली
दरभंगा
इलाहाबाद
मिर्जापुर
मगही
कोटा
हाड़ौती
बुंदेली
बघेली
भीली
मालवी
इन्दौर
जबलपुर
गुजराती
राजकोट
नर्मदा
ताप्ती
नीमाड़ी
छत्तीसगढ़ी
उड़िया
मराठी
ब्रज भाषा
शुद्ध ब्रज भाषा
साहित्यिक खड़ी बोली का जनपदीय रूप
भाषाओं की सीमाएं
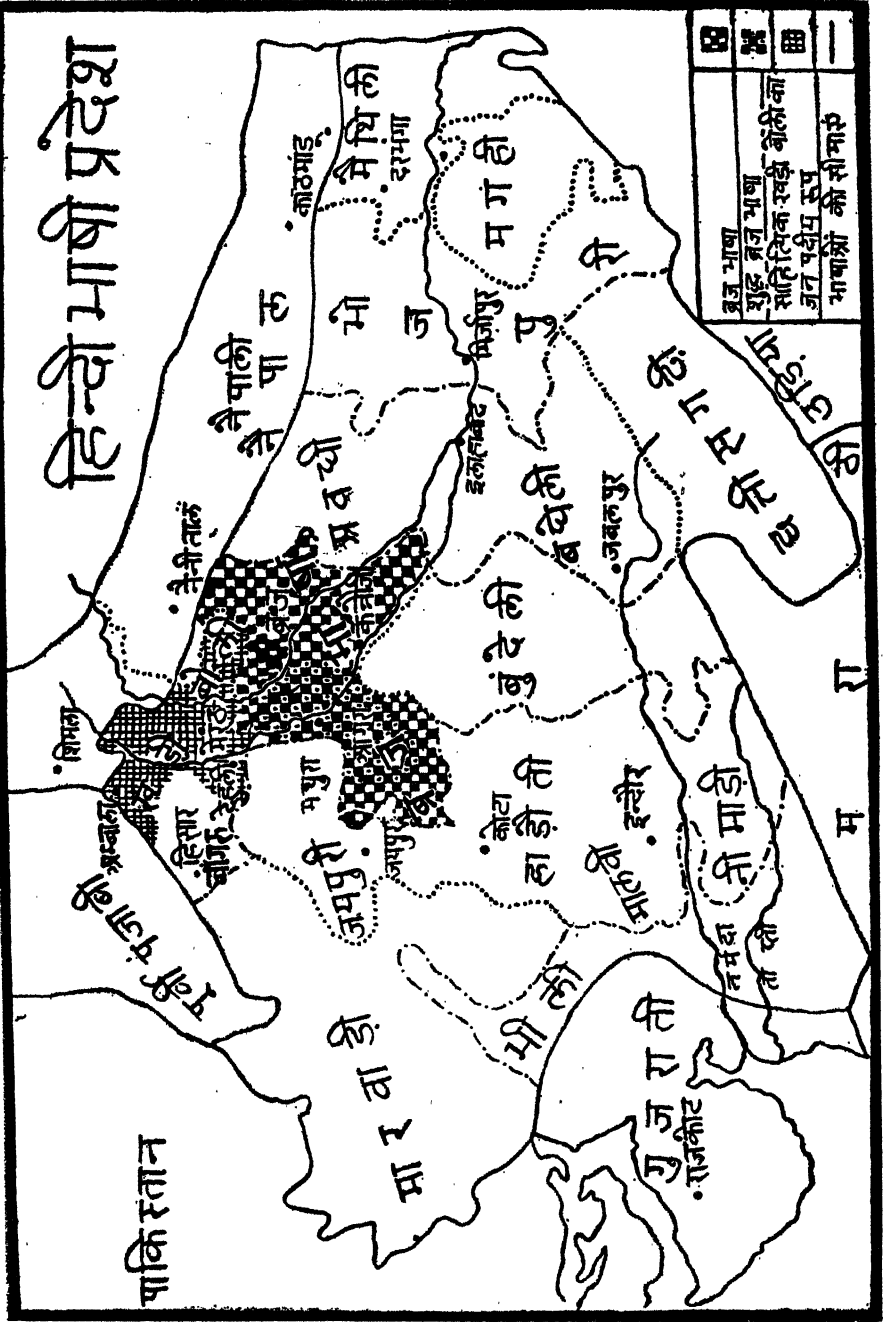
ब्रजभाषा[1] तथा खड़ीबोली[2] का तुलनात्मक अध्ययन

ध्वनि-विचार

१. स्वर—१·१ स्वर—मूल स्वर; संध्यक्षर स्वर
 १·२ अनुनासिक स्वर
 १·३ स्वर संयोग
 १·४ स्वर संयोग और श्रुति

२. व्यंजन—२·१ व्यंजन
 स्पर्श—अल्पप्राण, महाप्राण; संघर्षी; नासिक्य; कम्पनयुक्त-लुंठित; पार्श्विक; अर्द्धस्वर
 २·२ व्यंजन-गुच्छ
 २·३ व्यंजनों में शब्द सम्पर्क से अनुरूपता-संधि

३. अक्षर-निर्धारण

४. विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन
 ४·१ फारसी-अरबी
 ४·२ अँग्रेजी।

---

१. ब्रजभाषा—ग्रियर्सन द्वारा ब्रजभाषा के ८ क्षेत्रीय उपरूप घोषित किये गये थे, उनमें से प्रथम और आदर्श-ब्रजरूप के जिलों में मथुरा, अलीगढ़ और पश्चिमी-आगरा माना है। लेखक का यह सौभाग्य है कि वह मथुरा का मूल निवासी है जहाँ पर जीवन के प्रारम्भिक २८ वर्ष व्यतीत किये तत्पश्चात् ३ वर्ष वह आगरे में रहा और अब ४ वर्ष से अलीगढ़ रह रहा है। आगे दिये हुए रूपों में प्रचलित रूपों को मान्यता दी गई है फिर भी जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ मथुरा, अलीगढ़ आगरे के रूपों की विभिन्नता भी प्रदर्शित करदी गई है।

२. खड़ी बोली—खड़ी बोली के बोली रूप का केन्द्र मेरठ अवश्य है पर उसके परिनिष्ठित रूप का विकास दिल्ली-आगरे में ही हुआ। लेखक इस दृष्टि से भी सौभाग्यशाली है कि वह ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र में जन्म से रहता हुआ भी नगर में खड़ी बोली का ही व्यवहार करता है। मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तीनों ही नगरों में खड़ी बोली का ही प्रयोग होता है। परिनिष्ठित हिन्दी का मानदण्ड यदि लिंग का ठीक-ठीक प्रयोग मान लिया जाय तो भी स्व० जगन्नाथप्रसाद के शब्दों में प्रान्तीयता का प्रेम छोड़कर दिल्ली, मथुरा, आगरे के प्रयोगों का अनुकरण करना चाहिए, क्योंकि मेरी समझ में यहीं के प्रयोग शुद्ध और माननीय है। दिल्ली मथुरा, आगरा इन तीनों में मतभेद हो तो आगरे को प्रधानता देनी चाहिए।..............शुद्ध लिंग प्रयोग सीखने वालों को दिल्ली आगरा, मथुरा वालों के मुँह की ओर देखना चाहिए।

नवम् हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षपदीय भाषण

ब्रजभाषा

१. स्वर

१.१.१ मूल स्वर

१.१.१.१ ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ए, ओ

१.१.१.२ दीर्घ स्वर—आ, ई, ऊ, ए, ओ

१.१.२ संध्यक्षर स्वर

ऐ (अए~अइ)

औ (अओ~अउ)

टिप्पणी

१. /अ/का उदासीन स्वर [अ] की तरह उच्चारण भी मिलता है—गढ़अ/ अन्त्य 'अ' साधारणतया नियमित रूप से लुप्त हो जाता है अथवा कहीं-कहीं उदासीन स्वर की भाँति और कहीं-कहीं फुसफुसाहट वाले स्वर की भाँति उच्चरित होता है। संयुक्त व्यंजनों तथा 'ड़', 'ढ़' के बाद इसका उच्चारण सुनाई भी देता है, जैसे,

गस्त—गस्त्अ

बढ़—बढ़्अ

२. फुसफुसाहट वाले रूप 'ब्यारइ' के अन्तिम [इ] में आज भी सुरक्षित है।

३. अर्द्ध संवृत अग्र स्वर—ए तथा अर्द्ध संवृत पश्च स्वर—ओ के ह्रस्व रूप [ए] तथा [ओ] ब्रजभाषा की विशेषता है जो क्रमशः 'ए' तथा 'ओ' रूप में ही लिखे जाते हैं। ये ह्रस्व रूप आज भी कहीं-कहीं सुनाई देते हैं। जिनकी ओर सर्वप्रथम संकेत हेमचन्द्र ने अपनी व्याकरण में किया था।

४. संध्यक्षर 'अए~अइ' का उच्चारण मूल स्वर—अग्र अर्द्ध विवृत (एॅ) की तरह भी होता है।

है—हॅ

बैर—बॅर

संध्यक्षर [औ] 'अओ-अउ' का उच्चारण भी मूल स्वर (पश्च अर्द्ध विवृत) (ऑ) की तरह भी होता है :—

दूसरॉ

गयॉ

मूल स्वरों के ये उच्चारण प्रायः अन्त्य स्थिति में ही होते हैं।

५. 'ऋ' का उच्चारण प्रायः 'रि' की तरह होता है और लिखित रूप से भी प्रायः बहिष्कृत है।

खड़ीबोली

१. स्वर

१.१.१ मूल स्वर :

१.१.१.१ ह्रस्व = अ, इ, उ

१.१.१.२ दीर्घ = आ, ई, ऊ, ए, ऐ [ऐँ], ओ, औ, [औँ]

नवीन = [ऑ] ध्वनि केवल अँग्रेजी के आगत शब्दों में व्यवहृत होती है।

१.१.२ संध्यक्षर स्वर :

ऐ (अइ)
औ (अउ)

टिप्पणी

१. अ, इ, उ स्वरों के आ, ई, ऊ स्वर क्रमशः केवल दीर्घ रूप ही नहीं है वरन् दोनों स्वरों में उच्चारण-स्थान की दृष्टि से भी भेद है, जिससे स्वरों के गुण पृथक् हो जाते हैं।

२. /अ/ का उदासीन स्वर [अ] की तरह भी उच्चारण मिलता है।

३. [ए] से [ऐ~ऐँ] और [ओ] से [औ~औँ] नितान्त भिन्न है।

ए = अर्द्ध संवृत अग्र दीर्घ स्वर = बेल [बेल]

ऐँ = अर्द्ध विवृत अग्र दीर्घ स्वर = बैल [बैँल]

ओ = अर्द्ध संवृत पश्च दीर्घ स्वर = ओट [ओट]

औँ = अर्द्ध विवृत पश्च दीर्घ स्वर = औट

४. 'ऐ' और 'औ' लिखित रूप में एक ही प्रकार से लिखे जाने पर भी परिनिष्ठित हिन्दी में दो-दो रूपों में उच्चरित होते हैं :—

ऐ — { बैल = (बैँल) अग्र अर्द्ध विवृत दीर्घ स्वर
गैया = (गइया) संध्यक्षर स्वर, केवल अर्द्ध स्वरों के पूर्व

औ— { औरत (औँरत) पश्च अर्द्ध विवृत दीर्घ स्वर
कौआ = कौवा (कउआ) संध्यक्षर स्वर = अर्द्ध स्वर 'व' के पूर्व

५. प्रत्येक स्वर अक्षर के आरम्भ व अन्त में आ सकता है।

६. 'ऋ' का उच्चारण सामान्यतः 'रि' की तरह ही होता है अतएव लिखित रूप में चलते हुए भी उसको स्वरों में नहीं रक्खा गया है।

१.२ अनुनासिक स्वर

१.२.१. उदासीन स्वर तथा फुसफुसाहट वाले स्वरों को छोड़कर शेष सभी स्वरों का अनुनासिक रूप भी व्यवहृत होता है :—

अ— अँ —अँगिया, हँसत
आ—आँ —आँखि, बाँह
इ— इँ —इँदरसे, नाहिँ
ई— ईँ —ईँट, भईँ
उ— उँ —कुँवर
ऊ— ऊँ —सुनाऊँ
ए— एँ —सेँदुर
ऐ— ऐँ —नेँकु
ओ—ओँ—मोको
औ—औँ—क्यौँ

(पुरानी ब्रज में ह्रस्व ए तथा ओ का भी अनुनासिक रूप मिलता था, यातेँ, त्योँ)

१.२.२. अनुनासिकता के कारण :—

१. नासिक्य ध्वनि के स्थान पर
सन्देश = सँदेश
नन्द = नँद

२. नासिक्य ध्वनि के संयोग से पड़ौसी ध्वनि में
नाम = नाँम
राम = राँम

३. अकारण अनुनासिकता :—

अकारण अनुनासिकता तो ब्रज की एक प्रमुख विशेषता है, पूर्वी ब्रज में यह प्रवृत्ति विशेष परिलक्षित होती है :

भूको = भूँको
हाथ = हाँत
बाकी = बाँकी ।

टिप्पणी—वस्तुतः देखा जाय तो ब्रज की अनुनासिकता की ही प्रवृत्ति है जिसने इसमें कोमलता, संगीतात्मकता, लावण्य, मधुरता आदि गुणों का संचार किया—

'साँकरी गरी में काँकरी गरत है' वाक्य में अनुनासिकता का आधिक्य द्रष्टव्य है जिसके आधार पर फ्रेंच विद्वान् ने ब्रज में जो माधुर्य पाया उससे उसने फ्रेंच से तुलना करते हुये अधिक मधुर बता दिया। फ्रान्सीसी भाषा भी अनुनासिकता के गुण के लिए प्रसिद्ध है ।

खड़ीबोली

१.२ अनुनासिक स्वर

१.२.१. अनुनासिकता का खड़ीबोली हिन्दी में भी विशेष महत्त्व है। किसी भी स्वर को अनुनासिक किया जा सकता है :—

अ— अँ —हँस
आ—आँ —आँधी
इ— इँ —बिँदिया
ई— ईँ —आईँ, ईँट
उ— उँ —कुँवर
ऊ— ऊँ —ऊँघना
ए— एँ —बातेँ
ऐ— ऐँ —भैंस, हैँ
ओं—ओँ—सोँठ

नोट—ओ का अनुनासिकता के साथ उच्चारण प्रायः औँ जैसा ही हो जाता है।

१.२.२. अनुनासिकता

अनुनासिकता सकारण तथा अकारण दोनों ही प्रकार से प्राप्त होती है। ब्रजभाषा की तरह अकारण अनुनासिकता का बाहुल्य नहीं है। 'हाँथ', 'बाँकी' जैसे रूपों को बोलने वाले व्यक्ति की नासिका में दोष माना जायेगा, ये रूप स्वीकृत रूप नहीं माने जा सकते हैं।

अनुस्वार से भेद

हंस = पक्षी विशेष
हँस = क्रिया विशेष

[प्राय: लिखित रूप में अनुस्वार और चन्द्र बिन्दु का प्रयोग ठीक-ठीक नहीं किया जाता है]

शुद्ध स्वर से भेद

आद्य स्थिति : आधी = १।२ भाग
आँधी = धूलमय तेज हवा
मध्य स्थिति : बाट = मार्ग, प्रतीक्षा
बाँट = क्रिया, तोलने का पदार्थ
अन्त्य स्थिति : भागो = क्रिया विशेष
भागोँ = बहुवचन रूप—'भाग' का।

ब्रजभाषा

स्वर संयोग

स्वर संयोग या स्वरानुक्रमों के ब्रजभाषा में पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं जिनको चार्ट रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :—

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ए̆	ऐ	ओ	ओ̆	औ
अ			+	+	+	+	+	+	+			
आ			+	+	+	+	+			+		
इ	+	+			+		+	+	+			
ई												
उ	+	+	+	+			+					
ऊ												
ए			+	+	+	+	+					
ए̆							+					
ऐ							+	+				
ओ			+	+	+	+						
ओ̆			+		+		+					
औ		+		+								

[+]—चिह्नित स्वर-संयोग है।

टिप्पणी

१. स्वरानुक्रमों के अनुनासिक रूप भी मिलते हैं। जैसे, कुँअर, साईँ, भाँईँ

२. दो स्वरों के साथ-साथ तीन स्वरों के संयोग भी मिलते हैं :

इ आ इ—सियाई—स् इ आ ई

अ उ आ—कौआ —क् अ उ आ

अ इ आ—चिरैया—च् इ र् अ इ आ

अ इ ओ—अइयो —अ इ ओ

खड़ीबोली

१·३ स्वर-संयोग

	—अ	—आ	—इ	—ई	—उ	—ऊ	—ए	—ऐ	—ओ	—औ	विशेष
अ—	+	+		+		+	+				
आ—	+	+		+		+	+		+		
इ—	+	+					+		+		
ई—											
उ—		+		+			+		+		
ऊ—	+	+									
ए—	+	+		+			+				
ऐ—											
ओ—	+	+		+	+	+	+		+		
औ—											

+—चिह्नित स्वर-संयोग हैं।

टिप्पणी

१. हिन्दी के परिनिष्ठित रूप में स्वर-संयोगों की संख्या हिन्दी की बोलियों में प्राप्त स्वर-संयोगों से अपेक्षाकृत कम है :—

भोजपुरी[1]—७२
अवधी[2] —२४

२. तीन स्वरों का अनुक्रम भी पाया जाता है :—

इ आ ऊ = पिआऊ = प् इ आ ऊ
आ इ ए = गाइए = ग् आ इ ए

३. ब्रजभाषा के बहुत से स्वर-संयोग खड़ीबोली[3] में नहीं पाये जाते :—
जैसे कहि=कई रूप के स्थान पर खड़ीबोली में कही।

लई	,, ,, ,,	ली।
आउ	,, ,, ,,	आ।
अइयो	,, ,, ,,	आना।

इस प्रकार परिनिष्ठित रूप में स्वर-संयोग कम ही होते जा रहे हैं।

---

१. डॉ० विश्वनाथ प्रसाद-फोनेटिक एण्ड फोनोलोजिकल स्टडी ऑव् भोजपुरी, थीसिस, लन्दन वि० वि० सन् १९५०, पृष्ठ ११८-११९।

२. अवधी—डॉ० बाबूराम सक्सेना—एवोल्यूशन ऑव् अवधी, १९३६।
डॉ० उदय नारायण तिवारी—अवधी के ध्वनिग्राम, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४६३।

३. खड़ीबोली—डॉ० हरिश्चन्द्र, खड़ीबोली का विकास, थीसिस, आगरा विश्वविद्यालय, १९५९।

ब्रजभाषा

१·४ स्वर-संयोग और श्रुति

श्रुतियों में 'य' तथा 'व' श्रुतियाँ ही प्रधान हैं। सामान्यतः अग्रस्वर 'इ' तथा 'ए' के संयोग से य-श्रुति तथा पश्च स्वर 'उ' तथा 'ओ' के संयोग से व-श्रुति का आगम होता है :—

य-श्रुति—

प्रथम स्वर इ। ई के परे	—अ		जिअनि	=	जियनि
	—आ		पतिआरौ	=	पतियारौ
	—ए		लिए	=	लिये
द्वितीय स्वर इ। ई के पूर्व	अ	—	गई	=	गयी
	आ	—	दुहाई	=	दुहायी।
प्रथम स्वर ए, ऐ के परे	—इ		देइ	=	देय
द्वितीय स्वर ए, ऐ के पूर्व	अ	—	दए	=	दये
	आ	—	अथाए	=	अथाये
	इ	—	लिए	=	लिये

व-श्रुति—

प्रथम स्वर उ।ऊ के परे	—अ	चुअत	=	चुवत
	—आ	भुआल	=	भुवाल

इसी प्रकार ई, ए, तथा औ के संयोग से तथा द्वितीयस्वर ओ। औ के संयोग से भी व-श्रुति आ जाती है।

उ+ओ, ए+ओ, तथा ओ+ओ के संयोग से भी व-श्रुति का आगम होता है।

कभी-कभी य। व दोनों ही श्रुतियाँ सुनाई देती हैं।

स्वर-अनुरूपता :

रुपिया = रिपिया (मथुरा, जयपुर में)
सुनी = सिनी (मथुरा में कहीं-कहीं)
चतुर = चतर (बुलन्दशहर में)
कुँवर = कँवर (जयपुर में)

१·४ स्वर-संयोग व श्रुति[1]

जब दो स्वरों का संयोग होता है तो इनके मध्य श्रुति रूप में कुछ सुनाई देता है। 'श्रुति' का सामान्य अर्थ ही यह है जो कानों को सुनाई दे अथवा जो सुनी जा सके 'श्रयते इति श्रुतिः'। इन श्रुतियों में 'य्' और 'व्' अर्द्ध स्वरों के श्रुति-रूप ही प्रधान हैं। 'य्' और 'व्' अन्तःस्थ हैं जिनका अर्थ ही यह है जो मध्य में स्थित हों, चाहे जब चले आवें।

सामान्यतः अग्रस्वरों के साथ य-श्रुति तथा पश्च स्वरों के साथ व-श्रुति का रूप ही सुनाई पड़ता है :—

य-श्रुति—जब पूर्व इ। ई के परे कोई स्वर हो :—

इ। ई——|——अ = पीअ = पीय
|——आ = किआ = किया
|——ए = किए = किये
|——ओ = साथिओ = साथियो

जब इ। ई के पूर्व कोई स्वर हो :—

अ——| = गई = गयी
आ——| = पाई = पायी
उ——|——इ। ई = छुई = छुयी
ए——| = खेई = खेयी
ओ——| = धोई = धोयी

जब ए। ऐ के परे 'अ' हो :—

= खेआ = खेया
= सेआ = सेया

जब ए। ऐ के पूर्व अ, आ, ओ हो :—

अ——गए = गये
आ——आए = आये (आवे रूप भी बनता है)
ओ——खोए = खोये (खोवे रूप भी सुनाई पड़ता है।)

व-श्रुति :—

उ।ऊ के परे कोई स्वर

—अ——सूअर = सूवर
—आ——हुआ = हुवा
—ओ——छुओ = छुवो

ओ के परे कोई स्वर

—आ——खोआ = खोवा
—ओ——खोओ = सोवो

---

१. श्रुति के विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य है :—
कैलाशचन्द्र भाटिया—श्रुति, त्रिपथगा, १९६०।

ब्रजभाषा

२·१ व्यंजन-ध्वनियाँ

स्पर्श	क्	ख्	ग्	घ्	=१६
	ट्	ठ्	ड्	ढ्	
	त्	थ्	द्	ध्	
	प्	फ्	ब्	भ्	

स्पर्श-संघर्षी—

च्	छ्	ज्	झ्	४

नासिक्य—(ङ्), (ञ्), (ण्), न्, न्ह्, म्, म्ह् ४ २

लुण्ठित— र्, र्ह्

उत्क्षिप्त—(ड़्), (ढ़्) २

पार्श्विक—ल्, ल्ह् २ २

संघर्षी—स्, ह्

अर्द्ध स्वर—य्, व् २

टिप्पणी

१. अरबी-फारसी-अँग्रेजी से गृहीत शब्दों में विशिष्ट ध्वनियाँ 'फ़्' 'क़्', 'ख़्' 'ज़्' 'ग़्' क्रमशः 'फ्', 'क्', 'ख्', 'ज्', 'ग्' के समान उच्चरित होती हैं।

२. तालव्य 'श्' का उच्चारण भी प्रायः दन्त्य 'स्' ही होता है। मूर्द्धन्य 'ष्' लिखित रूप में चलते हुए भी कहीं 'ख्' और कहीं 'स्' बोला जाता है।

३. /ड्/ तथा /ढ्/ के [/ड़्] और [ढ़्] संस्वन मात्र है। [ड़्] तथा [ढ़्] का प्रयोग आदि स्थिति में कभी नहीं होता है।
व् के भी दो संस्वन हैं, [व़्] तथा [व़्]

४. (ङ्), (ञ) तथा (ण) तीनों नासिक्य ध्वनियाँ साहित्यिक ब्रजभाषा में तत्सम रूप में लिखित शब्दों के मध्य में वर्गीय व्यंजन वर्णों के पूर्व ही लिखी जाती हैं, जिनका उच्चारण भी बहुधा (न्) ही होता है।
गणेश का उच्चारण ब्रजभाषा में बहुत कुछ (गड़ेँस) जैसा होता है।
[ञ्] का उच्चारण भी ब्रज के कुछ शब्दों में कहीं-कहीं सुनाई देता है, जैसे, सात्र-सात्र,

२·२ व्यंजन-गुच्छ

ब्रजभाषा में आदि-स्थिति में ही व्यंजन-गुच्छ मिलते हैं, अन्त-स्थिति में कम।

आदि :—

क्+य्	=	क्य्	=	क्या
ग्+य्	=	ग्य्	=	ग्यारओ
ग्+व्	=	ग्व्	=	ग्वालिनी, ग्वाल्
च्+य्	=	च्य्	=	च्यौं
छ्+व्	=	छ्व्	=	छ्वै
ज्+व्	=	ज्य्	=	ज्यों
त्+य्	=	त्य्	=	त्यारी
द्+व्	=	द्व्	=	द्वारे
न्+य्	=	न्य्	=	न्यारो
ब्+य्	=	ब्य्	=	ब्यारू
म्+य्	=	म्य्	=	म्याने
भ्+व्	=	भ्व्	=	भ्वहि
स्+य्	=	स्य्	=	स्याम्
ह्+व्	=	ह्व्	=	ह्वै

चार्ट रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :—

	य्	व्
क्	+	
ग्	+	+
च्	+	
छ्		+
ज्	+	+
त्	+	
द्		+
न्	+	
ब्	+	
म्	+	
भ्		+
स्	+	
ह्		+

अन्त :—

कुछ ही व्यंजन-गुच्छ प्राप्त होते हैं, जैसे चल्त, अन्त, आदि।

२'३ व्यंजनों में विशेष परिवर्तन

२'३ १. ध्वनि-परिवर्तन

	खड़ीबोली	ब्रजभाषा
१.१	(व्)	(ब्)
	वन	बन
	वचन	बचन
	दिवस	दिबस
१.२	(श्)	(स्)
	देश	देस
	वेश	बेस
१.३	(व्)	(म्)
	जीवन	जीमन
१.४	(म्)	(व् ब्)
	श्यामल	साँवलिया, साँवल
१.५	(ल्)	(र्)
	बीरबल	बीरबर
	निकला	निकरो
	ताला	तारा
	थाली	थारी
	काले	कारे, करिया
	पनाले	पनारे
	भोली	भोरी
१.६	(र्)	(ल्)
	साहूकार	साहूकाल (कम प्रयुक्त)
	रज्जु-रेजु	लेजु
१.७	(ल्)	(न्)[1]
	चलता है	चल्तु है–चन्तु है
	खोलता	खोन्ता
	बाल्टी	बान्टी
	कल्सा	कन्सा

---

१. मथुरा, अलीगढ़ आदि में निम्न जातियों में विशेष कर यह उच्चारण पाया जाता है। घर में चौका करने वाली महरी के मुख से मैंने इस प्रकार का उच्चारण सुना है।

	खड़ीबोली	ब्रजभाषा
१.८	(न्)	(ल्)
	नम्बर	लम्बर
	नम्बरदार	लम्बरदार
१.९	(ड़्)	(र्)
	भीड़	भीर
	कपड़ा	कपरा
	साड़ी	सारी
	नगाड़े	नगारे

(बुलन्दशहर में खड़ीबोली के प्रभाव से दरी का दड़ी, नम्बरदार का नम्बड़-दाड़, घोड़ा को घोरा और साथ ही घोड्डा रूप भी मिलता है)

१.१०	(ण्-ञ्)	(न्)
	प्राण	प्रान
	रण	रन
	गण	गन
	कुञ्ज	कुन्ज
१.११	(क्ष्)	(छ्)
	क्षमा	छमा
	लक्ष्मी	लच्छिमी
	क्षण	छन
	क्षोभ	छोभ
१.१२	(क्ष्)	(ख्)
	क्षीर	खीर
	अक्षय	अखै
१.१३	(क्)	(च्)
	क्यों	च्यों-चौं

२·३ २. हकार का लोप

'हकार का लोप' सामान्यतः पश्चिमी हिन्दी की विशेषता है विशेषकर ब्रज में 'हकार' के लोप के उदाहरण बहुतायत से पाये जाते हैं। शब्द के मध्य तथा अन्त में यह प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

	खड़ीबोली	ब्रजभाषा
२.१	जाता है	जातु ए
	दुपहरी	दुपेरी
	बहु	बऊ
	मुँह	मूँ
	टहलना	टैलना

	खड़ीबोली	ब्रजभाषा
२.२ महाप्राण व्यंजनों से महाप्राणत्व का लोप	दूध	दूद
	साँझ	साँज
	हाथ	हात
	तरफ़-तरफ	तरप

२·३ ३. द्वित्व

द्वित्व की प्रवृत्ति खड़ीबोली के बोली रूप में पर्याप्त है, उसी से प्रभावित होकर ब्रज में भी रूप आ गये हैं, साहित्यिक खड़ीबोली में ये रूप मान्य नहीं।

दरवाजा	दरवज्जो
कुल	कुल्ल
बस कर	बस्सकरो = सन्धि-जन्य प्रभाव है

२·३ ४. (य) का आगम

सायं-शाम	स्याम
लोटा	लोट्या
करामात	करायमात
माने	म्याने, मायने

२·३ ५. स्थान विपर्यय

संकल्प	सल्कम्प (सीमित क्षेत्र में)
इन्साफ़	निसाफ

२·३ ६. अनुरूपता

(द्)	(स्)
बादशाह	बादसा-बास्सा
(र्)	समीपवर्ती ध्वनि च्, ज्, त्, द्, न् या स् में
मोरचा	मोच्चा
कर्जा	कज्जा
करता	कत्ता
गरदन	गद्दन
सेरनी	सेन्नी
मर्द	मद्द
(स्)	(त्)
बिस्तरा-बिस्तर	बित्तरा-बित्तर
रस्ता	रत्ता

२·३ ७. अर्द्धस्वर (य) तथा (व्)

शब्दों के मध्य (य्) तथा (व्) क्रमशः 'ए' तथा 'औ' में परिवर्तित हो जाते हैं।

पवन	पौन
नयन	नैन

२·३८. **सन्धि**

बोलचाल में प्राय: दो परस्पर ध्वनियों में सन्धि हो जाती है। 'शब्द संपर्क से जो अनुरूपता'[1] होती है उसको भी मैं सन्धि के फलस्वरूप ही मानता हूँ।

१. **महाप्राण ध्वनि और हकार**[2]

बहुत	भौत
जहर	झैर
बहिन	भैन
अगहन	अघैन

२. **सन्धि से हकार का लोप भी प्राय: हो जाता है**

चलता है	चलतु है = चलत्वै
फिरते हो	फित्तौ

३. खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा दोनों में ही सामान्यत: निम्नलिखित परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाते हैं :—

३.१	**अघोष + घोष**	**घोष + घोष**
	रुक + गई	रुग्गई
	दुबक + गई	दुबग्गई
	बहुत + दिन	बहुद्दिन
	खाट + डालो	खाड्डालो
३.२	**घोष + अघोष**	**अघोष + अघोष**
	साग + करो	साक् करौ (ब्रज० करौ)
	कब् + खाया	कप् खाया (ब्रज० खायौ)
३.३	**घोष या अघोष + नासिक्य ध्वनि**	**नासिक्य + नासिक्य**
	सब् + मत्	सम्मत्
	बात् + नहीं	ब्रज० बान्नाएँ
३.४	**त् + च्, ज्, ल्**	**च् + च्, ज्ज्, ल्ल्**
	काँपता + चला (खड़ी)	काँपच्चलो (ब्रज)
	काँपत् + जाये	काँपज्जाये (ब्रज)
	मत् + लेओ	मल्लेओ
३.५	**थ् + स्**	**स् + स्**
	हाथ + से	हास्से (खड़ी) हासै्स (ब्रज)

३.६ 'र्' की अनुरूपता शब्दों की सन्धि में भी उसी प्रकार होती है जैसे अनुरूपता में स्पष्ट किया जा चुका है।

---

१. **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, १९५४, पृष्ठ ४८-५० ।**

२. **यह प्रवृत्ति खड़ीबोली में भी बढ़ती जा रही है ।**

३. अक्षर-निर्धारण

ब्रजभाषा के अक्षरिक स्वरूप का अभी तक पूर्ण रूपेण अध्ययन नहीं हो सका है फिर भी हम कुछ ब्रजभाषा के अक्षर-स्वर के साँचे इस प्रकार हैं :—

उदाहरण

नोट : स=स्वर
व=व्यंजन
ा=दीर्घता
~=अनुनासिकता

साँचा	
स	=ए
सा~	=ऊँ
सस	=उइ
ससा	=इआ
सा सा	=आई
सा सा~	=आऊँ
स व	=अब
व स	=तु
व सा	=ता
व सा~	=भाँ
व स स	=तउ
व स व	=बुन
स व स	=अरु
व स व सा	=परै
स व स व	=अलग्
व स व व सा	=कुत्तौ
व स व व	=चल्त
व स व व स	=चल्तु
व व सा व सा	=त्यारी
व व सा	=क्या
व व सा~	=च्यों
व व सा व	=ज्वान्

(साँचा =इ)

इसके अतिरिक्त डॉ० चन्द्रभान रावत ने मथुरा की ब्रजभाषा के अध्ययन में निम्नलिखित साँचे और पता लगाये हैं :—

स व स स
व व स व स स
व स व स स
व स स व स
व स व व व स व
स व व स व स
स व स व स व व स

खड़ीबोली-हिन्दी

अक्षर-निर्धारण

हिन्दी के आक्षरिक स्वरूप पर लेखक विशेष अध्ययन कर रहा है। इस अध्ययन के निमित्त ही अब तक १०,००० शब्दों के विश्लेषण के आधार पर एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है[1]। इस अध्ययन का सार रूप ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सा	=आ
सा~	=एँ
सा~व	=आँख
स व	=इन
सा व	=ऊन
स व व	=उच्च्
स व व व	=अस्त्र्
व स	=कि
व सा	=थी
व सा~	=हाँ
व स व	=घर
व स~व	=हँस
व सा व	=धूल
व सा व व	=शान्त
व सा~व	=साँप
व स व व	=सिक्ख्
व स व व व	=शस्त्र्
व सा व व	=मूल्य्
व व स व	=ध्रुव
व व स व व	=प्रश्न
व व सा	=क्या
व व सा व	=द्वीप्
व व सा व व	=प्राप्त्
व व सा~	=क्यों

दो ध्वनियों के मध्य निम्नलिखित प्रकार से सीमा निर्धारित की जा सकती है :—

स	—सा	=हु-आ	स	—व	=अति
सा	—स	=खा-इ	स~	—व	=बँ-धी
सा	—सा	=आ-ओ	सा	—व	=आ-ठ
स~	—स	=कुँ-अर	सा~	—व	=आँख
स	—स~	=हुईँ	साव	—वव	=आश्-श्रम
सा	—सा~	=सा-ईँ	व	—व	=अच्-छा

---

१. डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया—हिन्दी-अक्षर, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ५४७-५७५ तक।

ब्रजभाषा

४. विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन :

४·१ अरबी-फ़ारसी

ब्रज में फ़ारसी के शब्दों की संख्या भी पर्याप्त है, कुछ शब्द अरबी तथा तुर्की भाषा के भी हैं, पर वे सब भी फ़ारसी के माध्यम से ही आये हैं। इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ आदि स्वर तथा अइ, अउ आदि संध्यक्षर स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कुछ शब्दों के आदि में 'इ' स्वरका आगम होता है।

निमाज़ =नमाज़
सिरदार =सरदार्
जिहाज् =जहाज्

आदि स्थिति में 'उ' स्वरागम :—

बुलन्द =बलन्द

हमज़ा के साथ होने पर 'अ' साधारणतया आ में बदल जाता है :—

नफ़: =नफा
अ:सा =आसा

'हमजा' का लोप हो जाता है और उसके स्थान पर 'आ' अथवा 'ओ' हो जाता है :—

=आ वैसे, तकियह़. =तकिया
खलीफ़ह़. =खलीफा
=ओ जैसे, दमामह़. =दमामो
रिसालह़. =रिसालो

फ़ारसी के क़, ख़, ग़, फ़, ज़ क्रमशः क्, ख्, ग्, फ्, ज् उच्चरित होते हैं।

क़लम =कलम
ख़त =खत
अफ़सोस =अफसोस =अपसोस
ग़ुस्सह़. =गुस्सा
ज़मीन =जमीन

'ज़' और अन्य संघर्षी ध्वनियाँ भी प्रायः समाप्त हो जाती हैं। 'श' का 'स', उच्चारण होता है।

शेर =सेर

'ज़' के स्थान पर 'द' उच्चारण भी मिलता है, जैसे,

कागज़ =कागद

'क़' का 'ग' तथा 'ग़' का 'क' भी हो जाता है :—

तक़ाज़ह़. =तगादा
सुराग़ =सुराक

खड़ीबोली

४. विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन ४·१ अरबी-फ़ारसी

हिन्दी में अरबी तथा तुर्की शब्द फ़ारसी के माध्यम से ही आ पाये हैं अतएव इन भाषाओं की ध्वनियों का सीधा प्रवेश हिन्दी में न हो पाया। अरबी की जो विशिष्ट ध्वनियाँ हैं वे पहले ही फ़ारसी में अपना रूप बदल चुकी थीं अतएव वे फ़ारसी की ध्वनियों के रूप में ही प्रविष्ट हो सकीं।

स्वरों में फ़ारसी की इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ ध्वनियाँ हिन्दी में समान हैं अतएव इनमें कोई परिवर्तन का प्रश्न नहीं होता। फ़ारसी अग्र विवृत (अ) हिन्दी में अर्द्ध विवृत मध्य स्वर (अ) हो गया :, फ़ा० क़दम्-हिन्दी-क़दम

पश्चिमी हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल 'अइ' तथा 'अउ' संयुक्त स्वर क्रमशः 'ऐ' तथा 'औ' में बदल जाते हैं,

मइदान्=मैदान, मउसम्=मौसम

व्यंजनों में फ़ारसी क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्, क्रमशः हिन्दी में क्, ख्, ग्, ज्, फ् हो गये। उर्दू में प्रभावित क्षेत्रों में इनका शुद्ध उच्चारण भी चलता है और उसके फलस्वरूप ये ध्वनि-चिह्न भी हिन्दी में गृहीत हो गये हैं, उदाहरणार्थ, कीमत, खबर, गरीब, जमीन, फन लिये जा सकते हैं।

हमजा के स्थान पर प्रायः 'आ' हो गया है : आदि स्थिति में लोप भी हो गया है,

जम् : =जमा, : अरब=अरब

फ़ारसी (ह़) के स्थान पर हिन्दी में 'ह' ही बोला जाता है :

ह़वा=हवा, ह़ुनर=हुनर

अन्त्य 'न्' हिन्दी शब्दों में अनुनासिकता में बदल जाता है, खान्=खाँ

अरबी-फ़ारसी के कारण कुछ नवीन व्यंजन-गुच्छ भी हिन्दी में गृहीत हुए हैं—त्फ़्, व्त्, म्द्, फ़्त्, फ़्ल्, फ़्र्, स्न्, स्ल्, ज़्र, श्त्, श्क्, श्म्, ल्द्, ल्फ़्, क्त्, ख़्त्, ख़्व्, ग्ज़् आदि जिनका प्रयोग बहुधा शुद्ध उच्चारण में किया जाता है पर बोलचाल में इन व्यंजन-गुच्छों को स्वरागम अथवा स्वर-भक्ति द्वारा तोड़ दिया जाता है :

निर्ख़ =निरख
हुक्म =हुकुम

कुछ अन्य प्रकार के परिवर्तन भी द्रष्टव्य हैं :—

विपर्यय— लम्हा =हिं० लहमा
मुकल्चेह् =हिं० मुचल्का

लोप—

स्वरलोप— मु : आमले ह्=मामला

४·२ विदेशी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन : अँग्रेजी :

हिन्दी-प्रदेश में अँग्रेजी राज्य की स्थापना तथा अँग्रेजी शिक्षा के विकास एवं प्रचार के साथ-साथ अँग्रेजी सभ्यता, संस्कृति का प्रभाव भी जन-जीवन पर पड़ता गया। इसके फलस्वरूप पर्याप्त मात्रा में अँग्रेजी शब्द हमारे व्यवहार में आ गये है[1]। शब्दों को गृहीत करते समय उनकी ध्वनियों में अपनी-अपनी (ब्रज तथा खड़ी) ध्वनि-प्रक्रिया के अनुसार परिवर्तन हो गया है।

स्वर—अँग्रेजी के मूल स्वर (इ), (ई), (उ), (ऊ), (अ), (आ) सामान्यतः ब्रज तथा खड़ीबोली के स्वरों से भिन्न नहीं, फलस्वरूप आगत शब्दों के इन स्वरों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता।

उदाहरणार्थ हम निम्नलिखित शब्द ले सकते हैं :—

ध्वनि	अंग्रेजी शब्द	अंग्रेजी उच्चारण	ब्रज[2]	खड़ीबोली-हिन्दी
(इ)	English	(इङ्लिश्)	इंग्लिस	इंग्लिश
(ई)	Team	(टीम्)	टीम्	टीम्
(उ)	Football	(.फुट्बॉल्)	फुट्बाल्	फुट्बाल्
(ऊ)	Boot	(बूट्)	बूट्	बूट्
(अ)	Gun	(गन्)	गन्	गन्
(आ)	Pass	(पास्)	पास्	पास्

अँग्रेजी के शेष मूल स्वर (ऐॅ), (एॅ), (अॅ), (आॅ), (अ), (ए) साधारणतः इन बोलियों में नहीं हैं अतएव इन स्वरों के स्थान पर इन ध्वनियों से निकटतम ध्वनियों का व्यवहार किया जाता है :—

अग्र अर्द्धसंवृत ह्रस्व स्वर (ऐॅ) के स्थान पर (इ) ~ (ऐ)

Cheque	(चेॅक्)	चिक्	चेक ~ चैक

अग्र अर्द्धविवृत स्वर (एॅ) के स्थान पर (ऐ)

Gas	(गॅस्)	गैस्	गैस्
Paddle	(पॅड्ल)	पैडिल्	पैडिल्

इसी स्वर के स्थान पर ब्रजभाषा में (अ) भी हो जाता है।

Camp	(कॅम्प्)	कम्पू

---

१. इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य है—
डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया—हिन्दी में अँग्रेजी आगत शब्दों का भाषा तात्त्विक अध्ययन, आगरा वि० वि०, पी-एच० डी० थीसिस, १९५८

२. ब्रजभाषा के रूप मुझको डॉ० चन्द्रभान रावत, गाँव लोहवन, जिला मथुरा से हुये हैं।

पश्च अर्द्धविवृत ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर (ऑ) तथा (ऑ) के स्थान पर (आ)

Docter	(डॉक्ट्)	डाक्दर[1] क़ाग्दर	डाक्टर
Form	(फ़ॉम्)	फारम्	फारम्
Order	(ऑड्)	आडर्	आडर्

[अ] भी हो जाता है :

Officer	(ऑफ़िस)	अफ्सर् ~ अप्सर्	

मध्य अर्द्ध विवृत ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर (अ) तथा (ए) के स्थान पर (अ)

Nurse	(नॅस)	नर्स	नर्स

संध्यक्षर स्वर

अँग्रेजी के लगभग सभी संध्यक्षर स्वरों का इन बोलियों में अभाव है।

		खड़ी बोली	**ब्रज**
[एँइ] के स्थान पर [ए]			
Jail	(जेँइल)	(जेल्)	(जेल्)
[ओँउ] के स्थान पर [ओ]			
Postcard	(पोँउस्ट्काड्)	पोस्काट्-पोस्टकार्ड	पोस्काट्
[अइ] के स्थान पर [आइ~ऐ]			
Time	(टाइम्)	टाइम	टैम
License	(लइसन्स्)	लाइसेन्स	ल्हैसंस
Light	(लाइट्)	लाइट	लैट
[अउ] के स्थान पर [आउ~औ]			
Down	(डउन्)	डाऊन	डौन
Town	(टउन्)	टाउन	टौन

शेष संध्यक्षर स्वरों से युक्त शब्द बहुत कम संख्या में गृहीत हुए हैं, फिर भी केन्द्राभिमुखी संध्यक्षर स्वरों के अन्त में (र) का उच्चारण लगभग सभी शब्दों के अन्त में होता है, जैसे चेयर,।

---

१. इसमें अनुनासिकता भी आ जाती है—डाँक्दर।

व्यंजन

अँग्रेजी की (प), (ब), (क), (ग), (म), (न), (ड), (ल), (य), (स) व्यंजन ध्वनियाँ तो हिन्दी की दोनों ही उपभाषाओं में समान हैं। अँग्रेजी वर्त्स्य (ट), (ड) ध्वनियाँ कहीं दन्त्य (त) और (द) में बदल जाती हैं। पर सामान्यतः इन ध्वनियों को मूर्धन्य ध्वनियों में ही परिवर्तित कर दिया गया है। अँग्रेजी स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ (च) और (ज) इन भाषाओं में उतनी संघर्षी नहीं है। वैसे ब्रज तथा खड़ी दोनों में ही ये ध्वनियाँ स्पर्श-संघर्षी हैं। सघोष पार्श्विक कृष्णध्वनि (ल) का व्यवहार नहीं होता है। संघर्षी (र) सामान्यतः लुंठित (र) में बदल दिया जाता है, फिर भी ब्रज में इसके स्थान पर (ल)[1] तथा (ड़)[2] भी मिलता है। अँग्रेजी की संघर्षी ध्वनियाँ (फ़), (ज़), (व़), (व़़), (थ़), (द़), (झ़) का सामान्यतः उच्चारण नहीं किया जाता। संघर्षी ध्वनियाँ (फ़) तथा (ज़) का उच्चारण उर्दू से प्रभावित जनता शुद्ध कर लेती है और (श) का उच्चारण संस्कृत के प्रभाव से कहीं-कहीं शुद्ध सुनाई पड़ता है। अँग्रेजी अघोष (ह़) का सघोष [ह] उच्चारण ही प्राप्त होता है।

व्यजन-गुच्छ

सामान्यतः व्यंजन-गुच्छ आदि स्थिति में हिन्दी की दोनों ही उपभाषाओं में समाप्त कर दिये जाते हैं। खड़ी बोली में कुछ गुच्छ गृहीत भी हो गये हैं।

व्यंजन-गुच्छ	अँग्रेजी शब्द	ब्रज	खड़ीबोली
ब्ल	Black	बिलेक	बिलक-ब्लेक
ड्र	Driver	डरेबर	डरेबर-ड्राइवर
र्म	Form	फारम	फारम-फार्म
स्क	School	इस्कूल, सकूल	इस्कूल-स्कूल
प्ल	Platform	पलेटफारम	पलेटफारम-प्लेटफार्म
प्र	Practice	पराटिस	प्रैक्टिकस

१—ड्राइवर का डलैवर

२—फैर और फैड़ भी मिलता है।

रूप-विचार

ब्रजभाषा

संज्ञा-रूपतालिका :

	पुंलिंग[1]	स्त्रीलिंग
१. अकारान्त	स्याम	बात
२. आकारान्त	सखा	माला
३. इकारान्त[2]	कबि	महरि
४. ईकारान्त[2]	हाती	रानी
५. उकारान्त[3]	नरु	धेनु
६. ऊकारान्त	नाऊ	बहू
७. एकारान्त		सरें
८. ओकारान्त[4]	लच्छो	कलबो, झब्बो
९. औकारान्त[5]	माथौ	

टिप्पणी

१. अकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग ही बहुधा होती हैं। पुंलिंग होने पर वे उकारान्त हो जाती हैं। अकारान्त सँज्ञाएँ पांच रूप ग्रहण करती हैं घर-घर्, घरु, घर, घरै, घरन्

२. इकारान्त तथा ईकारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग ही होती हैं। कुछ अपवाद स्वरूप उदाहरण पुल्लिग के भी मिल जाते हैं।

३. उकारान्त संज्ञाएँ सदैव पुल्लिग ही होती है, अकारान्त शब्द भी उकार बहुला प्रवृत्ति के कारण उकारान्त ही हो जाते हैं।

४. ओकारान्त संज्ञाएँ साहित्यिक ब्रजभाषा में अवश्य प्राप्त होती हैं, पर वर्तमान बोलचाल में तो व्यक्तिवाचक नामों के ही उदाहरण प्राप्त होते हैं।

५. औकारान्त तो ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषता हैं, खड़ीबोली की आकारान्त संज्ञाएँ ब्रजभाषा में औकारान्त हो जाती है।

नोट—ब्रजभाषा की प्रवृत्ति स्वरान्त अधिक है, व्यंजनान्त नहीं। इसी कारण अन्त में प्राय: 'इ', 'उ' अथवा 'औ' आदि स्वर उच्चरित होते हैं :—

चारि
पागलु
खोटौ

खड़ी बोली

संज्ञारूप-तालिका	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग
१. अकारान्त[1]	मोर	भेड़
२. आकारान्त[2]	राजा	कुतिया
३. इकारान्त[3]	कवि	तिथि
४. ईकारान्त[4]	हाथी	लड़की
५. उकारान्त	गुरु	
६. ऊकारान्त	नाऊ	बहू
७. एकारान्त[5]	दुबे	
८. औकारान्त[6]		लौ

टिप्पणी

१. अकारान्त संज्ञाएँ वस्तुत: अब खड़ीबोली में स्वरान्त नहीं रही है, उनका शुद्ध उच्चारण मोर्, भेड़् है चाहे लिखित रूप में उनका रूप भिन्न क्यों न हो। इस प्रकार सभी व्यंजनों से अन्त होने वाले शब्द मिलते हैं—नाक्, राख्, साग्, बाघ्, नाच्, छाछ्, आवाज्, नट् सेठ् अन्धड़्, असाढ़्, आदत् हाथ्, खाद्, बाँध्, आँगन्, साँप् अरब्, लाभ्, काम्, मेल्, नाव्, ओस् राह् ।

२. आकारान्त पुंलिंग संज्ञाएं तीन प्रकार की सम्भव हैं :
   I. संस्कृत की अन् से अंत होने वाली संज्ञाएं—राजा
   II. संस्कृत की तृ से अन्त होने वाली संज्ञाएँ—दाता
   III. विदेशी शब्द —दरोगा

३. इकारान्त रूप की संज्ञाएं बोली रूप में दीर्घ ईकारान्त हो जाती हैं, इसी प्रकार उकारान्त में भी दीर्घत्व आ जाता हैं ।

४. ईकारान्त शब्द बहुधा स्त्रीलिंग होते हैं, कुछ शब्दों को छोड़कर, दही पानी, घी, मोती, हाथी, स्वामी, नाती, बहनोई, तमोली, जी ।

५. एकारान्त रूप प्राय: नहीं मिलते । विशेषण का संज्ञा रूप में प्रयोग मिलता है—पन्च बोले इस छोटे को नहीं मिले ।

६. ओकारान्त तथा औकारान्त की प्रवृति खड़ीबोली की नहीं है । विशेषण से बनी संज्ञाएँ कहीं-कहीं हैं, जैसे, छत्रों को मिलै ।

लिंग—निर्णय

ब्रजभाषा (प्राचीन तथा आधुनिक) तथा खड़ी बोली में प्रत्येक संज्ञा या तो पुंलिंग होता है या स्त्रीलिंग। प्राणहीन वस्तुओं की द्योतक संज्ञाएँ भी किसी एक लिंग में अवश्य रक्खी जावेंगी, जैसे 'माट'। पु०। चोटी। स्त्री०।

ब्रज = बड़ौ गामु	बड़ी छोरी
खड़ी = बड़ा दरवाजा	बड़ी किताब

उपर्युक्त रूपों में गामु, दरवाजा पुल्लिंग होने कारण ही इनके पुंलिंग विशेषण रूप ही प्रयुक्त हुये है इसी प्रकार छोरी, किताब के विशेषण भी स्त्रीलिंग का ही रूप लिये हुये हैं।

हिन्दी में लिंग-निर्णय[1] एक जटिल समस्या है फिर भी ऐसा नहीं कि इसके कुछ नियम ही न हों। शब्द के अर्थ तथा उसके रूप के आधार पर लिंग-निर्णय किया जाता है। लिंग के क्षेत्र में संस्कृत तत्सम तथा तद्भव शब्द का संस्कृत-लिंग भी काम नहीं देता :

संस्कृत	लिंग	हिन्दी	लिंग
देह	पु०	देह	स्त्री०
बाहु	पु०	बाँह	स्त्री०
अक्षि	न०	आँख	स्त्री०

अनियमित रूप से भी पुल्लिग संज्ञाएँ स्त्रीलिंग बनाई जाती हैं

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
भइया	बहिन (खड़ी) व भैंन (ब्रज)
भइया	भाभी। खड़ी।, भाभी, भौजाई। ब्रज।
फूफा	बुआ

प्राणिवाचक संज्ञाओं को स्त्रीलिंग में बदलने वाले प्रत्यय :

—ई प्रत्यय—

यह प्रत्यय प्रधान है :

	अकारान्त-व्यंजनान्त	—देव्	—देवी। देबी ब्रज।
	आकारान्त	—चेला	—चेली
	औकारान्त। केवल ब्रज भाषा में।	—क्वारौ	—क्वारी
	ऊकारान्त	ताऊ	—ताई
—नी	अकारान्त-व्यंजनान्त	मोर	मोरनी
		सिंह	सिंहनी-सिंघनी

१· लिंग-निर्णय के लिए द्रष्टव्य है—

डॉ० हरदेव बाहरी—हिन्दी में लिंग विचार—हिन्दी अनुशीलन, वर्ष २, अंक ३, सं० २००६।

श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी—बम्बई हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षपदीय भाषण।

'अंग्रेजी के गृहीत शब्दों का लिंग-निर्णय' के लिए लेखक के विचार : भारतीय साहित्य, वर्ष २, अंक २।

प्रत्यय		पुंलिंग	स्त्रीलिंग
—नी		डाक्टर	डाक्टरनी
	ओकारान्त केवल ब्रज०	कउऔ	कउअनी
—आनी	अकारान्त-व्यंजनान्त	ठाकुर	ठकुरानी
		पंडित	पंडितानी
		देवर	देवरानी-दोरानी-द्यौरानी
		जेठ	जिठानी
—इन	अकारान्त-व्यंजनान्त	चमार	चमारिन
		कहार	कहारिन
		मास्टर	मास्टरिन (मास्टरनी रूप भी है)
	ईकारान्त	माली	मालिन
		धोबी	धोबिन
	ऊकारान्त	नाऊ	नाइन
	औकारान्त । ब्रज० में ।	चौबौ	चौबिन
—इनि	यह प्रत्यय केवल ब्रजभाषा में ही प्रयुक्त होता है	ग्वाल	ग्वालिनि
—इनी	ईकारान्त	हाथी	हथिनी (आदि दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है)
—इया	आकारान्त	कुत्ता	कुतिया
		पट्ठा	पठिया (ब्रज में केवल)
—आइन	आकारान्त	ठाकुर	ठकुराइन
		डिप्टी	डिप्टआइन (य-श्रुति भी आजाती है)
—अटी	आकारान्त	मींआ	मिअटी (आकारान्त का लोप)
		कट्टुआ	कट्टुअटी
—ड़ी	व्यंजनान्त	दाम	दमड़ी (आदि दीर्घ स्वर का ह्रस्व रूप)
		चाम	चमड़ी

केवल स्वर परिवर्तन से लिंग-भेद :

दीर्घ आ	ह्रस्व अ
पुंलिंग	स्त्री०
भैंसा	भैंस
भेड़ा	भेड़

ब्रजभाषा में आकारान्त को इकारान्त करके भी स्त्रीलिंग बनाते हैं :

डोरा – डोरि

कहीं-कहीं –उली प्रत्यय का योग भी होता है :

करछा करछुली

ढपु ढपुली

वचन

ब्रजभाषा :

वचन दो हैं—एकवचन और बहुवचन। आदरार्थक विशेषण तथा क्रिया के बहुवचन रूप भी एक वचन संज्ञा के साथ व्यवहृत होते हैं।

१. मूलरूप एक वचन तथा बहुवचन में औकारान्त को छोड़कर कोई अन्तर नहीं होता।

	एकवचन	बहुवचन		एक	बहु०
पुल्लिग—	एक गढ़	द्वै गढ़	स्त्रीलिंग	एक माला	द्वै माला
	,, छोरा	" छोरा		एक रानी	द्वै रानी
	,, पनु	" पन			

औकारान्त में अन्तर होता है :

नारौ—नारे
काँटौ—काँटे

२. संयोगात्मक विकृत रूपों में—ऐ प्रत्यय जोड़कर एकवचन :

[प्रत्यय-ऐ]	व्यंजनान्त के साथ	पूत	पूतऐ
	आकारान्त	छोरा	छोराऐ

३. मूल रूप एकवचन प्राय: आकारान्त से ब्रज में औकारान्त हो जाता है

नाड़ा	नारौ
ताला	तारौ
माथा	माथौ

(कभी-कभी आकारान्त ही बने रहते हैं—रास्ता—रस्ता, राजा—राजा।)

४. विकृतरूप बहुवचन की रचना के लिए:

—न, नु, न्नें प्रत्यय लगा देते हैं:—

—न	पु०	छोरा	छोरान छोरन
		माथा	माथे-माथेन
	स्त्री०	रानी	रानिन
		सौति	सौतन
		बात	बातन
—नु		छोरा	छोरानु
—न्नें		छोरा	छोरान्नें

५. लघुवाची तथा हीनतावाची स्त्रीलिंग के बहुवचन में अनुनासिकता

एकवचन	बहु वचन
लठिया	लठियाँ
कुतिया	कुतियाँ

६. सम्बोधन में—

		औकारान्त
उकारान्त	कुम्हारु	कुम्हारो
आकारान्त	राजा	राजाओ
ईकारान्त	धोबी	धोबियाओं
ऊकारान्त	बहू	बहुओं

७. विशेषणों में प्रत्यय संज्ञाओं की भाँति ही लगते हैं।

मूलरूप	उकारान्त	सुन्दरु	सुन्दर
	औकारान्त	अच्छौ	अच्छे

संज्ञा रूप में प्रयुक्त होने पर तिर्यक रूप -न के संयोग से अच्छेन

८. क्रियाओं को बहुवचन रूप में रखने के लिए :

	एकवचन	बहुवचन
१.	उकारान्त	अकारान्त
	जाँतु	जाँत
२.	औकारान्त	एकारान्त
	गयौ	गये
३.	ईकारान्त	ईकारान्त
	गई	गईं

टिप्पणी :अलीगढ़ तथा निकटवर्ती जिलों में विकृत रूप में बहुबचन बनाने के लिए—अन प्रत्यय भी जोड़ा जाता है

बहू : बहुअन

एकारान्त तथा ओकारान्त संज्ञाओं में—ए तथा -औ के स्थान पर पूर्व में इन् तथा पश्चिम व दक्षिण में—एन् लगाया जाता है :

जनो : जनिन्।
जनैन्।

वचन

खड़ीबोली :

खड़ीबोली हिन्दी को भी उत्तराधिकार में ब्रज की भाँति केवल दो वचन ही मिले हैं—एकवचन तथा बहुवचन। उर्दू शैली से वाल्दैन आदि अरबी बहुवचन रूप भी सुने जा सकते हैं।

हिन्दी में बहुवचन के रूप निम्नलिखित प्रकार से बनते हैं :—

१. पुल्लिग व्यंजन तथा कुछ स्वरांत संज्ञाओं में प्रथमा एकवचन तथा बहुवचन के रूप समान होते हैं, जैसे,

एकवचन	बहुवचन
घर	घर
आदमी	आदमी
बर्तन	बर्तन

२. स्त्रीलिंग आकारान्त तथा व्यंजनान्त संज्ञाओं में प्रथमा बहुवचन में {—एँ} लगता है, जैसे :—

एकवचन	बहुवचन
रात	रातें
औरत	औरतें
कथा	कथाएँ

३. पुल्लिग आकारान्त शब्दों में प्रथमा बहुवचन में 'आ' के स्थान में {—ए} का प्रयोग होता है, जैसे :—

एकवचन	बहुवचन
लड़का	लड़के
साला	साले

इनको गुरूजी ने अपवाद भी दिया है।[1]

४. स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्दों में अनुस्वार या -ई के स्थान पर—इया[2] कर दिया जाता है।

---

१ देखिये कामता प्रसाद गुरु हिन्दी व्याकरण, नि० २८६ पृष्ठ २६२–६३।

(अ) साला, भानजा, भतीजा, बेटा, पोता को छोड़कर काका, मामा लाला, नाना, दादा, राना, पंडा, सूरमा आदि के दोनों वचनों में एक ही रूप।

(ब) 'ऋ' 'न' से अन्त होने वाले संस्कृत से बने शब्दों में आकारान्त बहु० में अविकृत रहते हैं, जैसे, पिता, योद्धा, राजा, आत्मा, देवता। यौगिक में दोनों, जैसे :—लड़का-बच्चा लड़के-बच्चे

(स) व्यक्ति वाचक आकारान्त पुल्लिग संज्ञाएं आविकृत रहता हैं जैसे, सुदामा, रामलीला

२. याकारान्त शब्दों में केवल अनुनासिकता की वृद्धि हो जाती है, जैसे, लठिया लठियाँ

अन्यथा—लड़की-लड़कियाँ; पोथी-पोथियाँ

५. अन्य समस्त विभक्तियों के बंहुवचन हुई में समान रूप से {—ओं} लगता है, जैसे घरों, लड़कों, पोथियों इत्यादि। ईकारान्त शब्दों में ई ह्रस्व हो जाती है और ओं के स्थान पर यों हों जाता है।

नोट—बहुवचन का भाव प्रकट करने के लिये—लोग, गण, जाति, जन, वर्ग आदि समूहवाचक शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है।

हिन्दी में बहुवचन की प्रवृत्ति को दुनीचन्द जी[1] ने निम्नलिखित चार्ट से प्रकट किया है:—

	आकारान्त पुल्लिग		शेष पुल्लिग		ईकारान्त स्त्री०		शेष स्त्री०	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
कर्ता	आ	ए	—	—	ई	आँ[2]	—	एँ
कर्म	ए	ओं	—	ओं	—	ओं[3]	—	ओं

६. अरबी—फारसी से भी कुछ प्रत्यय उर्दू शैली में प्रयुक्त होते हैं:

—आत	काग़ज़ क़ागज़ात	हिन्दी में पुन: कागजातों भी बना लेते हैं
	जवाहर जवाहरात	
—आन	मालिक मालिकान	
	साहिब साहिबान	

अँग्रेजी प्रवृत्ति से भी फ़ीट, फ़ीस आदि शब्द चलते हैं। और इस प्रकार के शब्द पुन: मिथ्या प्रतीति से फ़ीसों, साहबानों, कागजातों आदि के रूप में बोले जाते हैं।

समूह वाचक	शब्द लोग	लड़के लोग
		पुरुष लोग

---

१. श्री दुनीचंद—पंजाबी और हिन्दी का भाषा विज्ञान, १९८२ वि० सं० पृष्ठ १८२। मिलाइये, धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९ ई० पृष्ठ २५०।

२. 'इ' के साथ होने के कारण य-श्रुति का आगम हो गया है अतएव —आँ के स्थान पर याँ है।

३. वही कारण।

ब्रजभाषा

संज्ञा रूप

		एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	मूलरूप	घोड़ा	घोड़े-घोड़न
	तिर्यक	घोड़े	घोड़े,घोड़ों, घोड़न,घोड़नि
	मू०	घर	घर
	तिर्यक	घर	घरौं, घरनि, घरन
स्त्रीलिंग	मू०	नारी	नारिन
	तिर्यक	नारी	नारिन, नारियन, नारियाँ, नारयनि
	मू०	बात	बातें बातन्
	तिर्यक	बात	बातन, बातनि

विभक्ति-प्रत्यय

—ऐं	—कर्त्ता	
—ऐं-ऐ	—कर्म	रामैं लड्डू खबाइ ला। हरीए घर कर्‍या।
	—सम्प्रदान	छोराए दूधु लाइ देउ।
—ऐं–ए	—अधिकरण	राजा हियें सुरुचि सौ नेह। मेरे हिये हरि के पद पकंज।
—हिं–हि	—कर्म	महादुष्ट लै उड्यौ गुपालहिं। जियहि जिवाइ।

नोट—अधिकरण ऐं—ए तथा कर्म के लिए हिं-हि का प्रयोग साहित्यिक ब्रजभाषा में ही अधिक होता है।

खड़ीबोली

संज्ञा रूप

पुल्लिग	मू०	घोड़ा	• घोड़े
	वि०	घोड़े	घोडों
	मू०	घर	घर
	वि०	घर	घरों
स्त्रीलिंग	मू०	लड़की	लड़की, लड़कियाँ
	वि०	लड़की	लड़कियाँ
	मू०	किताब । बात	किताब । बातें
	वि०	किताब । बात	किताबों । बातों

विभक्ति प्रत्यय :

खड़ीबोली हिन्दी में सामान्यत: विभक्ति का प्रयोग नहीं होता है। संस्कृत में विभक्तियाँ का ही प्रयोग होता था, जैसे,

रामेण रामाभ्याम् रामैः

यही रूप हिन्दी में होंगे

राम से — रामों से

दोवचन रूप एमाप्त होगया है।

ऊपर के इस उदाहरण से यह स्पष्ट होगया है कि हिन्दी का संस्कृत के विभक्ति प्रधान रूपों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। ब्रजभाषा में अवश्य, जैसा कि दिखलाया जा चुका है, संयोगात्मक रूप अवश्य मिलते हैं, जैसे,

कर्म में घरैपर खड़ी में होगा घर को।

संप्रदान —(ब्रज) रामै (हिन्दी-खड़ी) राम को या राम के लिए

कारकीय परसर्ग

ब्रजभाषा :

कर्त्ता— ने, नें, नै, नैं —खड़ीबोली के 'ने' का प्रयोग नगरो में ही सीमित है।

नें —जि छोरा राम नें मार्यो ऐ।

नै —छोरन्नै रोटी खाई।

नैं —वानैं राम कूँ मारौ।

(टिप्पणी-बहुवचन में लोप भी हो जाता है —हमनु दौड़ लगाई)

न् —मैंन् तो पैले ई कई।

कर्म तथा सम्प्रदान : कु, कुँ, कू, कूँ, को, कों, कौं, इ, ऐ आदि।

को, कौ, का प्रयोग बहुत है।

कूँ —बु गाम कूँ जाइ रह्यौ ऐ। (कर्म)

—दद्दा बाजार ते मोकूँ आम लाये। (सम्प्रदान)

ऐ —रामनै हारिऐ पाँच सेर नमक दयौ।

करण तथा अपादान : ते, तें, तै, सू, सूँ, सों, सौं आदि

से, सै, सौं बहुत चलते हैं

सें —तौसें जि काम न होअगो।

सों —मोसों चलो न जाइगो।

ते —मोते कछू मत कहौ।

सम्बन्ध : कि, के, को, कौ आदि।

के —हरी के दोस्त आए।

कौ —रामकौ पैनु अच्छौ ऐ।

अधिकरण : पै, माँहि, मँह, माहीं, महि, में, मैं आदि

में —घर में चोरु घुसिगौ।

मैं —घर मैं खांइबे कूँ नाज नाएँ।

पै —नसैनी पै चढ़ि जा।

संयुक्त परसर्ग :

के लिए, के काजै, के ताँई रूपों के अतिरिक्त संयुक्त परसर्ग ये हैं :

पै ते। ते —खाट पै तै। ते रोटी उठाय ले।

में ते —बकस में ते किताब निकारि लाओ।

के ने —राम कै नै कई। (इसमें के तथा ने के मध्य कुछ लुप्त रहता है।)

कारकीय परसर्ग

खड़ी बोली

खड़ी बोली हिन्दी में कारकीय परसर्ग का ही प्रयोग अधिक होता है। संयोगात्मक अवस्था में विभक्ति प्रत्यय का प्रयोग कम होता है। यह कहा जा चुका है। कारकीय परसर्गों का ही प्रयोग बाहुल्य है :

कर्त्ता—एजेंट—ने, नें —केकड़े ने मुझे पकड़ लिया।
(Agent) अनुनासिकता मय रूप भी प्रयुक्त होता है।

कर्म —को कागजों को फाड़ दो।

करण —से (साधन) इसे डंडे से मारो।

सम्प्रदान —को —फिर राजा ने गरीब को बहुत दान दिया।

अपादान —से, ते —अब ही। अभी। घर से बाहर गये हैं।
बोली रूप में—घर्त्ते चले। घर से चले।

संबंध—का, के, की—

छीतर का लड़का है।
औरत के मटके खाली होगये।
लड़की के बाल अच्छे हैं।
लड़की की किताबें मेज पर रक्खी हैं।

टिप्पणी : की, का संबंध आगे के शब्द के लिंग से है यही कारण हैं कि कुछ लोग आजकल इसको कारक न मानकर विशेषण का रूप मानना अच्छा समझते हैं क्योंकि हिंदी में विशेषणों का लिंग भी संज्ञा के लिंग के अनुसार बदलता है।

अधिकरण—में, पर, पै— यमुना में बाढ़ आई।
घर पै ही होगो।
नल पर कितनी भीड़ है।

सम्बोधन—हे, अरे, अजी, अए, अबे, बे आदि का प्रयोग होता है।
वे परसुर्ग नहीं हैं।

नोट—ए, अब, बे निम्नस्तरीय प्रयोग हैं।

कारक चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द :

कर्म —तईं। बोली रूप में विशेष।
करण —द्वारा, ज़रिये, कारण, मारे
संप्रदान —हेतु, निमित्त, अर्थ, वास्ते (के लिए)
अपादान —सामने, आगे, साग, अपेक्षा, बनिस्बत
अधिकरण—मध्य, बीच, भीतर, अंदर, ऊपर, नीचे, पास।

सर्वनाम

ब्रजभाषा:

१. पुरुषवाचक सर्वनाम

१.१ उत्तम पुरुष :

	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप	हूँ, हौं, हों, मैं, में	हम
विकृत रूप	मो, मों, मोहि, मोय	हम, हमहि, हमें
संबंधवाची रूप	मेरो, मेरे, मेरी	हमारो, हमारौ, हमारी
विकृत	मेरे, **मोय, मोएँ**	हमारे, **हमें**

विशेष: वे जिनको मोटे अक्षरों में छापा गया है विकृत रूपों के वैकल्पिक रूप ही हैं इस प्रकार पूरे कारकों में रूप होंगे :

कर्त्ता	मैं, हौं हों	हम
कर्म तथा	मोहि, मोकौं, मुजकों	हमकौं, हमन कों, हमनिकों
सम्प्रदान	मोय, मौएँ	हमैं
करण: कर्त्ता	मैंने, हौं	हमने, हमन्नें, हमनि नें
करण तथा	मोसों, मोतें	हमसौं, हमतें, हमन सौं
अपादान	,, ,,	,, ,,
संबंध	मेरौ	हमारौ
अधिकरण	मो-पै, मो-मैं, मो-परि	हम, हमौं / हमन, हमनि | मैं, -परि / -पै

१.२ मध्यम पुरुष:

मूल रूप	तू, तूं, तें,	तुम्
विकृत	तो	तुम्

'तेरे लिए' के संयोगात्मक वैकल्पिक विकृत रूपः—

तोय, ताए	तुमैं

संबंधवाची विशेषण :

पुल्लिग मूल०	तेरो, तेरौ	तुम्हारो, तुमारौ, तिहारौ
विकृत०	तेरे	तुम्हारे, तुमारे, तिहारे
स्त्रीलिंग मूल०	तेरी	तुम्हारी, तुमारी, तिहारी
विकृत०	,,	,, ,, ,, ,,

सर्वनाम

खड़ीबोली :

१. पुरुषवाचक सर्वनाम :

१.१ उत्तम पुरुष

	एक वचन	बहुवचन
मूल रूप	मैं	हम
विकृत	मुझ	हम

संबंधवाची विशेषण

पुल्लिग—मूल	मेरा	हमारा
विकृत	मेरे	हमारे
स्त्रीलिंग	मेरी	हमारी

समस्त कारकों में रूप होंगे

कर्ता	मैं	हम
कर्म तथा	मुझे	हमें
सम्प्रदान	मुझको.	हमको
कर्त्ता (करण)	मैंने	हमने
करण—तथा	मुझ से	हम से
अपादान	,, ,,	,,
संबंध	मेरा	हमारा
अधिकरण	मुझमें	हम में,
	मुझ पर	हम पर

१.२ मध्यम पुरुष :

मूल रूप	तू	तुम
विकृत रूप	तुझ	तुम

'तेरे लिए' के संयोगात्मक रूप : वैकल्पिक :

	तुझे	तुम्हें

संबंधवाची विशेषण:

पुंलिग मूल०	तेरा	तुम्हारा
विकृत	तेरे	तुम्हारे
स्त्रीलिग मूल	तेरी	तुम्हारी
विकृत	,, ,,	,, ,,

ब्रजभाषा

१.३ अन्य पुरुष या निश्चयवाचक दूरवर्ती :

	एकवचन	बहुवचन
मूल रूप	बु, बुँअ, बो, बौ, गु,	वे, बै, ग्वे
स्त्रीलिंग	बा, वा, ग्वा	
विकृत रूप	बा, वा ग्वा	उन, विन, बिन, ग्विन

सम्प्रदान में वैकल्पिक रूप :

पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
बाए, वाए, ग्वाए	उनैं, बिनैं, ग्वनैं

संबंधवाची रूप :

	बिसका,	बिनका,
पुल्लिग		
	बिसके	बिनके
स्त्रीलिग		
	बिसकी	बिनकी

२. निश्चयवाचक निकटवर्ती :

मूलरूप	ये, यि, जि, जिअ, गि, गिअ	ये, जि, जे, गि, गे
स्त्रीलिंग	या, जा, गि, गु	ये जे, गे
विकृत०	या, जा, ग्या	इन, गिन, जिन

संप्रदान के वैकल्पिक रूप :

याए, जाए, ज्याय इनैं, जिनैं

संबंधवाची रूप :

पुल्लिंग	जाका	जाके
स्त्रीलिंग	जाकी	,,

३. सम्बन्धवाचक सर्वनाम :

मूल रूप	जो, जौ	जे,
विकृतरूप	जा	जिन्

संप्रदान के वैकल्पिक रूप

जाय	जिनैं

खड़ीबोली

१·३ अन्य पुरुष या निश्चयवाचक दूरवर्ती :

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप	वह	वे
विकृत	उस	उन

सम्प्रदान के वैकल्पिक रूप :

एकवचन	बहुवचन
उसे	उन्हें
उसके लिए	उनके लिए

सम्बन्धवाची रूप :

पुल्लिग	उसका	उनका
विकृत	उसके	उनके
स्त्रीलिंग	उसकी	उनकी

२. निश्चयवाचक निकटवर्ती :

मूलरूप	यह	ये
विकृत रूप	इस	इन

संप्रदान के वैकल्पिक रूप :

इसे — इन्हें

सम्बन्धवाची रूप :

पुल्लिग	इसका	इनका
विकृत०	इसके	इसके
स्त्रीलिंग	इसकी	इनकी

३. सम्बन्धवाचक सर्वनाम :

मूलरूप	जो	जो
विकृत	जिस	जिन

संप्रदान के वैकल्पिक रूप :

जिसे — जिन्हें

सम्बन्धवाची रूप :

	जिसका	जिनका
विकृत०	जिसके	जिनके
स्त्रीलिंग	जिसकी	जिसकी

ब्रजभाषा

४. नित्यसम्बन्धी :

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप	सो, सौ	सो, ते
विकृत रूप	ता	तिन्

संयोगात्मक वैकल्पिक रूप :

विकृत रूप	ताए	तिनैं
सम्बन्धवाची रूप :	ताको	तिनको
स्त्रीलिंग	ताकी	तिनकी

५. प्रश्नवाचक :

चेतन :	मूलरूप	कौन, को	कौन, को
	विकृत रूप	का, कौन,	का, कौन, किन, किनि

संयोगात्मक वैकल्पिक रूप :

कौनैं, काए किनै, कौनैं

सम्बन्धवाची रूप :

कौनका किनका

अचेतन :

मूलरूप	का कहा	का कहा
विकृत रूप	काहे, काए	काहे, काए

६. अनिश्चयवाचक :

चेतन :	मूलरूप	कोई, कोइ, कोय	कोई, काऊ, कछुक
	विकृत रूप	काऊ	किनऊँ
	वैकल्पिक	काहू । को	

अचेतन :

कछू, कछु कछुक

कुछ अन्य शब्द :

मूलरूप	और, सब, सबरे,	और, सब, सबरे, सगरे
पुल्लिंग	सगरे, सिगरे	सिगरे
स्त्रीलिंग	सबरी, सगरी, सिगरी	सबरी, सगरी, सिगरी
विकृत		सबन, सँबरिन, सगरिन, सिगरिन

विशेष : बहुवचन रूप में ही प्रयोग अधिक हैं ।

खड़ीबोली

४. नित्य सम्बन्धी :

	एकवचन	बहुवचन
मूलरूप	सो	सो
विकृत रूप	तिस	तिन
संयोगात्मक वैकल्पिक रूप :		
विकृत रूप	तिसे	तिन्हें
सम्बन्धवाची रूप :		
पुल्लिग	तिसका	तिनका
स्त्रीलिंग	तिसकी	तिनकी
विकृत	तिसके	तिनके

५. प्रश्न वाचक :

चेतन :

मूलरूप	कौन	कौन
विकृत रूप	किस	किन
संयोगात्मक वैकल्पिक रूप :		
विकृत रूप	किसे	किन्हें
अन्य रूप संप्रदान	किसको	किन को, किन्हों को
करण-कर्त्ता	किसने	किन्होंने, किनने
अचेतन :		
	क्या	क्या

६. अनिश्चयवाचक :

चेतन :

मूलरूप	कोई	कोई
विकृत रूप	किसी	किन्हीं
अचेतन :	कुछ	कुछ
कुछ अन्य शब्द :		
	और	सब, सबरे

७. निजवाचक :

निजवाचक आप, अपना के रूप सम्पूर्ण ब्रज में चलते हैं। 'आप का' बहुवचन का प्रयोग प्रायः शिष्टों तक ही सीमित है। विकृत रूप आपुनें भी है।

सम्बन्धवाची रूप :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	अपनो	अपने
स्त्रीलिंग :	अपनी	अपनी

'अपनी' का दूसरा रूप 'आपनी' भी चलता है।

८. संयुक्त सर्वनाम :

१. सम्बन्धवाचक सर्वनाम के रूप 'कोई' के रूपों से संयुक्त होकर :

जो कोई पानी राखै सो अगारी आओ।

जा काऊ में बलु होइ सो लड़ौ।

२. 'सब' कोई के रूपों से संयुक्त होकर :

ऐसो **सब काऊ** कूँ होइ।

९. विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनाम :

प्रकार वाचक विशेषण :
एसो, वैसो, जैसो, कैसो

परिमाणवाचक विशेषण :
इत्तो, उत्तो, तित्तो, जित्तो, कित्तो

संख्यावचक विशेषण :
इत्ते, उत्तो जित्ते, तित्ते, कित्ते

वैकल्पिक रूप परिमाणवाचक :
इतनौ, उतनौ, जितनौ, कितनौ

संख्यावाचक :
इतने, उतने, जितने, कितने, (जितेक, कितेक तितेक रूप भी बुलन्दशहर की तरफ चलते हैं।

खड़ीबोली

७—निजवाचक

'आप'

'आप' के कई रूप विकृत रूप में चलते हैं =

कर्त्ता	आपने
कर्म	आपको
करण	आपसे
संप्रदान	आपको, आपके लिए
सम्बन्ध	आपका, आपकी, आपके
अधिकरण	आपमें

हिन्दी का 'अपना' वास्तव में 'आप' का सम्बन्ध कारक का रूप ही है किन्तु हिन्दी में निजवाचक होकर स्वतन्त्र हो गया है।

आदरवाचक

'आप' यह शिष्ट लोगों में तू और तुम के स्थान पर चलता है।

८—संयुक्त सर्वनाम

१—सम्बन्धवाचक सर्वनाम के साथ 'कोई' जोड़कर

जो कोई रातभर यहाँ रुक सके वह कहे।

जिस किसी को आवश्यकता हो वह कहे।

२—'सब' के साथ लगकर

सब कोई जा सकते हैं।

९—विशेषण के समान प्रयुक्त सर्वनाम

प्रकारवाचक या गुणवाचक	परिमाणवाचक
ऐसा	इतना
वैसा	उतना
तैसा	तितना
जैसा	जितना
कैसा	कितना

संख्यावाचक रूप भी इतने, उतने, तितने, जितने, कितने जैसे चलते हैं।

विशेषण

सामान्यत: ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली में विशेषण का रूप संज्ञा-विशेष्य के साथ बदलता रहता है। संज्ञा के लिंग का प्रभाव विशेषणों पर भी पड़ता है, कभी-कभी तो विवादास्पद शब्द का लिंग-निर्णय करने के लिए विशेषण का प्रयोग करके ही निश्चय करना पड़ता है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में ओकारान्त विशेषण संज्ञा के अनुरूप ही होते हैं, जैसे,

गीलौ, सूखौ, फीकौ, तीखौ, मोटौ, घनौ, चौरौ, खट्टौ, कड़ओ-करुओ सकरौ आदि।

ओकारान्त विशेषणों का -ए प्रत्ययान्त परिवर्तित रूप गुण-विस्तार के रूप में संज्ञा के साथ मूल रूप बहुवचन, विकृत रूप एकवचन तथा विकृत रूप बहुवचन में व्यवहृत होता है।

कारो कुत्ता आत् है।
कारे कुत्ता आत् हैं।
कारे मर्दन् से कह देओ।

कर्म के सदृश प्रयुक्त ऐसे विशेषणों में उपर्युक्त परिवर्तित रूप का व्यवहार केवल मूलरूप बहुवचन संज्ञा के साथ होता है।

बो आद्मी गोरो है।
बे आदमी गोरे हैं।
बा आदमी को कारो कहत् हैं।
उन आद्मिन को कारो बताउत् है।

व्यंजनान्त विशेषणों में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जैसे

लाल ईंट है,
लाल ईंटें हैं।
लाल ईंट का टुकड़ा है।
लाल ईंट्न के टुकड़ा।

इस प्रकार विशेषण के तीन वर्ग हैं :—

१—मूलरूप तथा विकृत रूप बदलते रहते हैं तथा लिंग का प्रभाव भी पड़ता है :

जैसे,

मूल-ओ	विकृत-ए	स्त्रीलिंग-ई
अच्छौ	अच्छे	अच्छी

२. मूलरूप एकवचन में उकारान्त तथा बहुवचन में अकारान्त

सुन्दरु—सुन्दर सुन्दर

नोट:—विशेषण एकवचन में कभी-कभी उकारान्त नहीं रहता।

३. आकारान्त रूप में भी प्रथम रूप की भाँति,ही परिवर्तन हो जाता है।

सादा—सादे—सादी

विशेषण के साथ पर-प्रत्ययों का प्रयोग

१. विशेषण+लिंग वचन का रूप+स्+लिंग वचन का रूप।

अच्छौ सौ

अच्छा सा द्वित्व रूप अछ्छा भी चलता है।

२. तुलनात्मक रूप प्रकट करने के लिए-ते का प्रयोग:

कुत्ता ते हुस्यार बिल्ली।

३. 'सब' और 'ते' के योग से:

सबते हुस्यारु।

विशेषणों का प्रयोग

संज्ञा+संज्ञा=प्रथम संज्ञा विशेषण के रूप में

हीरा आदमी

प्रत्यय—संज्ञा+संज्ञा=प्रथम प्रत्यय तथा संज्ञा का विशेषण स्वरूप

अकाल मृत्यु।

वाला प्रत्यय के संयोग से:

घरवाला, ब्रजभाषा में घरबारौ

क्रिया में किसी प्रत्यय के योग से=पीना+अक्कड़

—पिअक्कड़

पियक्कड़ —य श्रुति का आगम

क्रियार्थक संज्ञा तथा विशेषण 'वाला' प्रत्यय का योग:

जाने वाला, पाने वाला

विशेषण के साथ 'वाला' प्रत्यय का योग:

छोटे वाला बकस।

'वाला' प्रत्यय के योग से अन्य प्रयोग भी बन सकते हैं।

कुछ विदेशी विशेषण:

मुफ़्त का 'मुफ्त' तथा 'मुफत' दोनों रूप प्रयुक्त होते हैं:

मुफत किताब

अँग्रेजी के विशेषणों का प्रयोग अभी जन-बोलियों में नहीं हो सका है।

विशेषण

खड़ीबोली :

संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करने वाले विशेषण का प्रयोग हिन्दी में निम्न-लिखित प्रकार से होता है :

गुण: अच्छा लड़का
काली बिल्ली
स्थिति: बीमार लड़की
निर्देश: वह मकान
संबंध: मेरी बहिन
संख्या: बहुत दूध
कई लोग।

१. आकारान्त—स्त्रीलिंग में ईकारान्त हो जाते हैं :

अच्छा लड़का   अच्छी लड़की

अकारान्त—विकृत रूप तथा बहुवचन में एकारान्त हो जाता है :

अच्छा लड़का   अच्छे लड़के

नोट: स्त्रीलिंग रूप ईकारान्त के बहुवचन में कोई परिवर्तन नहीं होता :

अच्छी लड़की   अच्छी लड़कियाँ

अपवाद : कुछ आकारान्त शब्दों में परिवर्तन नहीं होता, जैसे,
सवा, बढ़िया, घटिया, उमदा, दुखिया।

२. व्यंजनान्त विशेषण में परिवर्तन नहीं होता :

लाल कपड़ा   लाल कपड़े
लाल साड़ी   लाल साड़ियाँ

३. -'सा' युक्त रूप भी बनते हैं :

संज्ञा, सर्वनाम : गाय-सा तुम-सा,
विशेषण : पागल-सा, बड़ा-सा
संख्यावाचक विशेषण के साथ: बहुत-सा

नोट—'सा पर मूल रूप तथा विकृत रूप और साथ में ही लिंग का भी प्रभाव पड़ता है।

पुल्लिग   गोरा-सा लड़का   गोरे-से लड़के
स्त्रीलिंग   गोरी-सी लड़की   गोरी-सी लड़कियाँ

'सा' का प्रयोग 'का' या' रा' के साथ भी होता है:

बन्दर का सा मुँह
मेरा सा बस्ता

सा का 'कोई' तथा 'कौन' के साथ प्रयोग :

कोई-सी लड़की

कौन-सी दूकान

४. तुलनात्मक दृष्टि के लिए -से तथा में का प्रयोग

से — मुझ-से बड़ा

कृष्ण-से छोटा

'में' — सबमें अच्छा

दोनों में छोटा

'से' के साथ 'अधिक' तथा 'कम' का प्रयोग :

फूल-से अधिक कोमल

बज्र-से अधिक कठोर

उस लकड़ी-से कम टिकाऊ।

५. विशेषणों का संज्ञा की तरह भी प्रयोग होता है :

बड़ों ने कहा।

बड़ों से मना कर आओ।

बड़ों की छुट्टी है।

उदाहरणार्थ यदि एक शब्द 'गाय' लिया जाय तो इसके लिए उपयोग में आने वाले विशेषणों का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होगा :

१. **रंग को दृष्टि में रखते हुए**—लाल, पीली, काली, सफेद आदि

२. **रूप की दृष्टि से**—दुबली, मोटी, एक सींगवाली, पूँछवाली आदि।

३. **उपयोगिता की दृष्टि से**—दुधारु, ठल्ल, आदि

सार्वनामिक विशेषण :

प्रकार वाचक : ऐसा, वैसा, कैसा आदि।

परिमाणवाचक—इतना, उतना आदि विशेषणों का विवेचन सर्वनाम के साथ किया जा चुका है।

सम्बन्धवाची विशेषण का विवरण भी किया जा चुका है।

कुछ संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग भी विशेषणों के साथ होता है :

तत्सम—अति, अतीव, अत्यन्त, महा, भयानक, आदि। संस्कृत के 'तर' तथा 'तम' प्रत्यय भी प्रयुक्त होते हैं।

तद्भव—भला अच्छा आदि

विदेशी विशेषण : फारसी तथा अँग्रेजी के भी कुछ विशेषणों को गृहीत कर लिया गया है।

संख्यावाचक विशेषण

पूर्ण संख्यावाचक :

	ब्रजभाषा	खड़ीबोली
	एक, द्वै, तीन-तीनि, चार-चारि	एक, दो, तीन, चार
	पाँच, छै, सात, आठ, नौ, दस	पाँच, छै, सात, आठ, नौ, दस
	ग्यारहै, बारहै, तेरहै आदि	ग्यारह, बारह, तेरह आदि

क्रम संख्यावाचक :

ब्रजभाषा	खड़ीबोली
पैहलै, पहिलो, पहलौ, पैलो, पहिलौ, पहिले	पहला, पहिलौ, पैला
दूसरो, दुसरो, दूसरौ, दूजे	दूसरा
तीसरो, तीसरौ, तिसरो, तीजौ, तीसरे	तीसरा
चौथा, चउथो	चौथा
पाँच्मो, पाँच्वो, पँचग्रो, पाँचग्रो	पाँचवाँ
छठो, छटो, छटौ, छटमो	छठवाँ
सात्मो, सतमो, सातग्रो,	सातवाँ
आठमो, अठग्रो	आठवाँ
नमो, दसग्रों	दसवाँ
ग्यारह्मो, ग्यारहग्रों	ग्यारहवाँ

अपूर्ण संख्यावाचक :

	ब्रजभाषा	खड़ीबोली
$\frac{1}{4}$	चौथाई, पउआ	पाव, पउआ
$\frac{1}{3}$	तिहाई, तिहैया	तिहाई
$\frac{1}{2}$	आधो, आधो, आदो	आधा
१$\frac{1}{2}$	डेढ़, ड्योढ़ो	डेढ़
२$\frac{1}{2}$	अढ़ाई (अढ़ैआ)	ढाई, अढ़ाई
३$\frac{1}{2}$	साढ़े तीन, हूठा, अहुँठ	साढ़े तीन
१$\frac{1}{4}$	सवा, सवैया, सवाऔ	सवा
+$\frac{1}{2}$	साढ़े	साढ़े
$\frac{3}{4}$	पौन	पौन

आवृत्तिमूलक संख्यावाचक :

	ब्रजभाषा	खड़ीबोली
(क)	दूनौ, तिगुनो चौगुनौ, पंचगुनो आदि	दूना, दुगुना, तिगना, चौगुना, पचगुना आदि
(ख)	दोऊ, तीन्यौ, चार्यौ, पाँचो	दोनों, तीनों, चारों, पाँचों

समुदायवाचक :

४–गंडा, २०–कौड़ी, १२–दरजन, १४४-बारह दर्जन ग्रौस चलते है। ब्रज में ग्रुस आदि रूप भी मिलते हैं।

क्रिया

संस्कृत की क्रियाएँ पूर्णतः संयोगात्मक है और उनकी रूप रचना विशेष जटिल है। संस्कृत की लगभग २००० धातुएँ दस प्रकार के गणों में विभक्त हैं जिनमें से प्रत्येक गण की धातु के रूप पृथक्-पृथक् प्रकार से चलते हैं। संस्कृत में कालों की संख्या १० है और प्रयोगों की संख्या ६। इस प्रकार संस्कृत की प्रत्येक धातु के ५४० संयोगात्मक रूप बनते हैं :—

प्रयोग		काल		पुरुष		वचन	कुल रूपसंख्या
६	×	१०	×	३	×	३	=५४०

इस प्रकार संस्कृत का क्रिया प्रकरण काफी जटिल है।

मध्य भारतीय आर्यभाषाओं में यह जटिलता कुछ सरल हुई और उसके फलस्वरूप पालि में ५ प्रयोग, ८ काल, ३ पुरुष तथा २ वचन रह गये और रूपों की संख्या ५४० से घटकर २४० रह गई। प्राकृतों में क्रिया की रूप-रचना और अधिक सरल होगई। प्रयोग और अधिक घटकर ३, काल केवल चार और वचन तो दो पहले से ही थे। इस प्रकार मध्य भारतीय आर्य भाषाओं के अन्तिम रूप में केवल—

३×४×३×२=७२ रूप ही रह गये।

मध्य भारतीय आर्यभाषा काल तक क्रियाओं के रूप अधिकांशतः संयोगात्मक ही रहे हैं वैसे अन्तिम समय में अपभ्रंश काल में क्रियाओं में कुछ कहीं-कहीं वियोगात्मक रूप भी दृष्टिगत होते हैं। भूमिका में हम देख चुके हैं कि संक्रान्तिकालीन अवस्था में भाषा का स्वरूप संयोगात्मक अवस्था से किस प्रकार शनैः शनैः वियोगात्मक अवस्था पर पहुँच रहा था और आज वह प्रायः वियोगात्मक है। हिन्दी में आते-आते प्रयोगों में और अधिक कमी हुई—केवल दो प्रयोग ही रह गये। काल की संख्या में पर्याप्त कमी होगई है। संस्कृत से विकसित होकर तो केवल २--३ काल ही आये। वैसे कालों की संख्या १५ के के लगभग है, लेकिन उनके रूप सहायक क्रियाओं के सहारे चलते हैं अतएव रूपों में वैविध्य नहीं है, इस प्रकार मूल रूप से हिन्दी की क्रियाओं में रूपों की संख्या अधिक-से-अधिक ३६ ही मानी जा सकती है।

हिन्दी में वचन की दृष्टि से २ ही वचन हैं—एकवचन तथा बहुवचन, इनके तीन पुरुषों में तीन-तीन रूप होते हैं। हिन्दी के क्रिया रूप नितान्त वियोगात्मक होगये हैं। कहीं-कहीं संयोगात्मक रूप दृष्टिगत होते हैं। पश्चिमी हिन्दी की अपेक्षा पूर्वी रूपों में संयोगात्मक अवस्था अब भी है।

सबसे बड़ी विशेषता हिन्दी के क्रिया रूपों की यह है कि संस्कृत के कृदन्त रूपों से विकसित होने वाली क्रियाओं में लिंग का प्रभाव आगया जिसके फलस्वरूप आज अहिन्दी भाषा भाषियों के सम्मुख हिन्दी की क्रियाएँ जटिल होगई। क्रिया में लिंग के प्रभाव पर आगे चलकर विवेचन किया जावेगा।

ब्रजभाषा

सहायक क्रिया 'होना' जिसका ब्रज रूप 'होनो' है उसकी रूप-रचना निम्नलिखित प्रकार होगी :

सहायक क्रिया-होनो

वर्तमान निश्चयार्थ :

पुल्लिग

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हूँ, हों, हौं	हैं, ऐं
मध्यम पुरुष	है, ऐ	हों, औ
अन्य पुरुष	हैं, ऐ	हैं, ऐं

नोट : स्त्रीलिंग में प्रायः यही रूप चलते हैं। अलीगढ़ में उत्तम पुरुष एक वचन में [ऊँ] रूप भी है।

भूत निश्चयार्थ :

पुल्लिग

	एकवचन	बहु वचन	केवल स्वरमात्र भी	
उत्तम ०	हो, हौ, हतो, हतौ हुतो, हुतौ, रह्यौ, भयो, भयौ, भो, भौ	हे, हुते, हतै, हतुए, भये ओ		ए
मध्यम ०	,, ,,	,, ,,	ओ	ए
अन्य ०	,, ,,	,, ,,	ओ	ए

स्त्रीलिंग

	एक वचन	बहु वचन	केवल स्वर मात्र	
उत्तम०	ही, हती, हुती, भई	हीं, हुतीं, भई	ई	ईं
मध्यम ०	,, ,,	,,	ई	ईं
अन्य ०	,, ,,	,,	ई	ईं

भविष्य निश्चयार्थ :

पुल्लिग

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम ०	ह्वै हौ, हौऊँगो, हुँगो, हौंगो	ह्वै है, होंयेगे, हैंगे, होंगे, हुँगो।
मध्यम ०	ह्वै है, होयगो, हैगो	ह्वै हो, होउगे, हैंगे, होयगे
अन्य ०	ह्वै, होयगो, हैगो, होगो, होइहै	ह्वै है, होंगे, होंहिगे, हुँगे, होंगे, होंयगे

खड़ीबोली

सहायक क्रिया 'होना' के रूप निम्नलिखित होंगे :

क्रिया-होना

वर्त्तमान निश्चयार्थ

पुंल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मैं हूँ	हम हैं
मध्यम०	तू है	तुम हो
अन्य०	वह है	वे हैं

नोट : स्त्रीलिंग रूप भी प्रायः यही रहते हैं।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं हूँ	हम हैं
मध्यम०	तू है	तुम हो
अन्य०	वह है	वे हैं

भूत निश्चयार्थ

पुंल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं था	हम थे
मध्यम०	तू था	तुम थे
अन्य०	वह था	वे थे।

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम ०	मैं थी	हम थीं
मध्यम ०	तू थी	तुम थीं
अन्य ०	वह थी	वे थीं

भविष्य निश्चयार्थ :

पुंल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं हूँगा, होऊँगा	हम होंगे, होवेंगे
मध्यम०	तू होगा, होवेगा	तुम होंगे, होओगे
अन्य०	वह होगा, होवेगा	वे होंगे, होवेंगे

ब्रजभाषा

भविष्य निश्चयार्थ :

स्त्रीलिंग

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम ०	ह्वै हों, हौंगी हुँगी	ह्वै हैं, हौयंगी, हैंगी, हुँगी
मध्यम ०	ह्वै है, है गी होगी	ह्वै हो, हौंगी, हौंगी
अन्य ०	होयगी, ह्वैगी	ह्वै हैं, हैंगी

हुँगी के स्थान पर लोहबन में एकदेशीय निम्नलिखित रूप भी मिलते हैं।

हतुं	हतएँ
हतुऐ	हतौ
हतुऐ	हतएँ

संभाव्य भविष्यत काल

	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग
	एकवचन	बहुवचन
उत्तम ०	हौं, हो हुँ, होऊँ	होहिं, होयँ*
मध्यम ०	होय	होहु, होउ
अन्य ०	होय, होइ, होई	होहि, होयँ

सामान्य संकेतार्थ :

पुंल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम ०	हो तौ, होतो, होतु	होते होत, होत्
मध्यम ०	,, ,,	,,
अन्य ०	,, ,,	,,

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम ०	होती	होतीं
मध्यम ०	होती	होतीं
अन्य ०	होती	होतीं

खड़ीबोली

भविष्य निश्चयार्थ

स्त्रीलिंग

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम ०	मैं हूँगी, होंऊगी	होवेंगी
मध्यम ०	तू होगी, होवेगी	तुम होंगी, होवोंगी
अन्य ०	वह होगी, होवेगी	वे होंगी, होवेंगी

संभाव्य भविष्यत्काल

पुल्लिग

	एक वचन	बहुबचन
उत्तम ०	में हों, हाऊँ	हम हों, होवें
मध्यम ०	तू हो, होवे	तुम हो, होम्रो
अन्य ०	वह हों, होवे	वे हों, होवें

स्त्रीलिंग

पुल्लिग जैसे ही रूप रहते हैं, कोई अन्तर नहीं होता :—

सामान्य संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम ०	होता	होते
मध्यम ०	होता	होते
अन्य ०	होहा	होते

स्त्रीलिंग

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम०	होती	होतीं
मध्यम ०	होती	होतीं
अन्य ०	होती	होतीं

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में साधारणतः किसी साधारण क्रिया के तीन रूप होते हैं :

I. नो से अन्त होने वाली क्रियाएँ—करनी, लेनो, देनो

II. न से अन्त होने वाली क्रियाएँ—आवन्, जान, लेन, देन

III. बो से अन्त होनेवाली क्रियाएँ—निहारबो, बिगारबो,

चल् धातु जिसका ब्रजभाषा में चलबो रूप होगा :

सामान्य वर्तमान

पुंल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हों चलतु हों	हम चलत् हैं
मध्यम०	तू चलतु है	तुम चलत् हो
अन्य०	बु/सो चलतु है	बे चलत् हैं

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम		
मध्यम०		
अन्य०		

सामान्य भूत

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	चल्यो	चले
मध्यम०	चल्यो	चले
अन्य०	चल्यो	चले

सामान्य भविष्यत्

पुंल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	चलुँगो, चलोंगो, चलिहों	चलंगे, चलेंगे, चलिहैं
मध्यम०	चलैगो, चहिहै	चलोगे, चलिहो
अन्य०	चलैगो, चलिहै	चलेंगे, चलिहैं

खड़ीबोली

खड़ीबोली हिन्दी में धातुऐं दो प्रकार की हैं,

मूल —प्राचीन भा० आ० के तद्‌भवरूप, प्रेरणार्थक, तत्सम या देशज

यौगिक—नाम धातु, संयुक्त धातु तथा अनुकरण मूलक धातु।

सामान्यत: किसी भी धातु का रूप-ना लगाकर बनाया जाता है

धातु—चल् चलना

'चलना'

सामान्य वर्त्तमान

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलता हूँ	हम चलते हैं
मध्यम०	तू चलता है	तुम चलते हो
अन्य०	वह चलता है	वे चलते हैं

स्त्रीलिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलती हूँ	हम चलती हैं।
मध्यम०	तू चलती है	तुम चलती हो।
अन्य०	वह चलती है	वे चलती हैं।

सामान्य भूत

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चला	हम चले
मध्यम	तू चला	तुम चले
अन्य०	वह चला	वे चले

सामान्य भविष्यत

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलूंगा	हम चलेंगे
मध्यम०	तू चलेगा	तुम चलोगे
अन्य०	वह चलेगा	वे चलेंगे

ब्रजभाषा

आसन्न भूतकाल

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	चल्यौ हौं	चले हैं
मध्यम०	चल्यौ हौ	चले हौं
अन्य०	चल्यौ है	चले हैं

पूर्ण भूतकाल

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	चल्यौ हो	चले हे
मध्यम०	चल्यौ हो	चले हे
अन्य०	चल्यौ हो	चले हे

नोट : 'चलौ औ' तथा बहुवचन में चले 'ऐ' रूप भी बोले जाते हैं।

अपूर्ण वर्तमान

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	चलि रौ यूँ	चलि रऐ ऐ
मध्यम०	चलि रौ ए	चलि रौ ए
अन्य०	चलि रह्यौ है	चलि रऐ ऐ

नोट : हकार का लोप प्रायः हो जाता है

अपूर्ण भूत

पुल्लिंग

	एक वचन	वहुवचन
उत्तम०	चलि रौ औ	चलि रए
मध्यम०	चलि रौ औ	चलि रौऔ
अन्य०	चलि रौ औ	चलि रए

दूसरे रूप

उत्तम०	चल्तो। चलते हो चल्त्यै। चलत है	
मध्यम०	चल्तो	चल्तो
अन्य०	चल्तो हतो	चल्तै हते

खड़ीबोली

आसन्न भूतकाल

पुंल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चला हूँ	हम चले हैं
मध्यम०	तू चला है	तुम चले हो
अन्य०	वह चला है	वे चले हैं

पूर्ण भूतकाल

पुंल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चला था	हम चले थे
मध्यम०	तू चला था	तुम चले थे
अन्य०	वह चला था	वे चले थे

अपूर्ण वर्तमान

पुंल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चल रहा हूँ	हम चल रहे हैं
मध्यम०	तू चल रहा है	तुम चल रहे हो
अन्य०	वह चल रहा है	वे चल रहे हैं।

अपूर्ण भूत

पुंल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चल रहा था	हम चल रहे थे।
मध्यम०	तू चल रहा था	तुम चल रहे थे।
अन्य०	वह चल रहा था	वे चल रहे थे।

दूसरे रूप

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलता था	हम चलते थे।
मध्यम०	तू चलता था	तुम चलते थे।
अन्य०	वह चलता था	वे चलते थे।

ब्रजभाषा

पूर्ण वर्तमान

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	चल्यो हूँ। ऊँ	चले हैं। ऐं
मध्यम ०	चलौ। चल्यौ ए	चलौ। चल्यौ हुए
अन्य ०	चलो। चल्यौ ए	चले ऐं

सामान्य संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	चल्तौ। चलतु ओ	चल्ते
मध्यम ०	चल्तौ होतो	चल्तौ होते
अन्य ०	चल्तौ	चल्ते

अपूर्ण संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	चल्तो। चलतु होतो	चलत होते
मध्यम ०	चल्तौ। चलतु होता	चलत होते
अन्य ०	चल्तौ। चलतु होतो	चलत होते

पूर्ण संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	चल्यो होतौ	चले होते
मध्यम ०	,,	,,
अन्य ०	,,	,,

संभाव्य वर्तमान

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	चलतु होउं	चलत हों
मध्यम ०	चलतु हो	चलत होंउ
अन्य ०	चलतु हो	चलत हौं

नोट : शीघ्रता में चलतु का उच्चारण 'चल्तु' भी हो जाता है।

खड़ीबोली

पूर्ण वर्तमान

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	मैं चला हूँ	हम चले हैं
मध्यम ०	तू चला है	तुम चले हो
अन्य ०	वह चला है	वे चले हैं।

सामान्य संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	मैं चलता	हम चलते
मध्यम ०	तू चलता	तुम चले
अन्य ०	वह चलता	वे चलते।

अपूर्ण संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	मैं चलता होता	हम चलते होते
मध्यम ०	तू चलता होता	तुम चलते होते
अन्य ०	वह चलता होता	वे चलते होते

पूर्ण संकेतार्थ

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	मैं चला होता	हम चले होते
मध्यम ०	तू चला होता	तुम चले होते
अन्य ०	वह चला होता	वे चले होते

संभाव्य वर्तमान

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम ०	मैं चलता होऊँ	हम चलते हों
मध्यम ०	तू चलता हो	तुम चलते होवो
अन्य ०	वह चलता हो	वे चलते हों।

ब्रजभाषा

संभाव्य भूत

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम०	चल्यो होऊँ	चले हों
मध्यम०	चल्यो हो	चले होउ
अन्य०	चल्यो हो	चले हों

संभाव्य भविष्यत्

पुल्लिग-स्त्रीलिंग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम०	चलौं	चलें
मध्यम०	चलै	चलौ
अन्य०	चले	चलें

संदिग्ध वर्तमान

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम०	चलतु होऊँगो	चलत होंगे
मध्यम०	चलतु होगो	चलत होंउगे
अन्य	चलतु होगो	चलत होंगे

नोट : चलतु' के स्थान पर चल्तु' उच्चारण भी सुनाई पड़ता है

संदिग्ध भूत

पुल्लिग

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम०	चल्यो होऊँगो	चले होंगे
मध्यम०	चल्यो होयगो	चले होउगे
अन्य०	चल्या होयगो	चले होंगे

आज्ञार्थ प्रत्यक्ष विधिकाल साधारण रूप

उत्तम०	चलौं	चलै
मध्यम०	चल	चलौं
अन्य०	चलै	चलैं

आदर सूचक

चलिए-चलिहौं

परोक्ष विधिकाल

चलियो, चलिए

खड़ीबोली

संभाव्य भूत

पुल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चला होऊँ	हम चले हों
मध्यम ०	तू चला हो	तुम चले हो
अन्य०	वह चला हो	वे चले हों

संभाव्य भविष्यत्

पुल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलूँ	हम चलें
मध्यम०	तू चले	तुम चलो
अन्य०	वह चले	वे चलें

संदिग्ध वर्तमान काल

पुल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलता होऊँगा	हम चलते होंगे
मध्यम०	तू चलता होगा	तुम चलते होगे
अन्य०	वह चलता होगा	वे चलते होंगे

संदिग्ध भूत

पुल्लिग

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चला होऊँगा	हम चले होंगे
मध्यम०	तू चला होगा	तुम चले होगे
अन्य०	वह चला होगा	वे चले होंगे

आज्ञार्थ प्रत्यक्ष विधिकाल साधारण :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम०	मैं चलूँ	हम चलें
मध्यम०	तू चल	तुम चलो
अन्य०	वह चले	वे चलें

आदर सूचक :—

आप चलिए—चलिएगा

परोक्ष विधकाल

तुम चलना, या चलियो

कृदन्त

ब्रजभाषा

आधुनिक भारतीय भाषाओं की भाँति ब्रज में भी क्रिया की रूप रचना में कृदन्तीय रूपों का महत्व है। ये दो प्रकार के होते हैं :

वर्तमानकालिक कृदन्त

भूतकालिक कृदन्त

वर्तमानकालिक कृदन्त

—त या—त् प्रत्यय लगाते हैं

—खात चलत

दक्षिणी ब्रज में—तो और पश्चिमी ब्रज में—तु प्रत्यय भी चलता है।

खात् का स्त्रीलिंग एकवचन रूप खात ही रहता है, जबकि खड़ीबोली में लिंग का प्रभाव पड़ जाता है। बहुवचन में तो प्रभाव ब्रज में पड़ जाता है, जैसे औरत जात ऐं। औरतें जाती ऐं।

भूत संभवानार्थ :

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	चल्तो	चल्ते
स्त्रीलिंग	चल्ती	चल्तीं

भूतकालीन कृदन्त

सामान्यतः—औ लगकर बनते हैं पर कहीं-कहीं –यौ भी जुड़ता है

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिग	चलौ	चले
स्त्रीलिंग	चली	चलीं
पु०	हतो	हतए
स्त्री०	हती	हतीं

—औ (हो) तथा (ए) हे का प्रयोग भी मिलता है,

पु० एक० मैं म्वाँ हतु औ। (मैं म्वाँ औ)

बहु० हम म्वाँ ए।

स्त्री०एक० गु म्वाँ ई या हति ई।

बहु० वे म्वाँ ई या हति ईं।

कृदन्त

खड़ीबोली

हिन्दी काल-रचना में वर्तमानकालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्तीय रूपों का व्यवहार विशेष होता है :

वर्तमानकालिक कृदंत

—ता प्रत्यय

धातु पच्—पचता

बहता पानी, मारतों के आगे, डूबते को तिनके का सहारा आदि उदाहरणों में बहता, मारतों, डूबते इस—ता प्रत्यय के ही विकारी रूप हैं।

भूतकालिक कृदन्त

—आ प्रत्यय बनता है

धातु चल्—चला

अकर्मक क्रिया से बना हुआ भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाचक और सकर्मक क्रिया से बना हुआ कर्मवाचक होता है और दोनों का प्रयोग विशेषण के समान होता है,

जैसे:—एक आदमी जली हुई लकड़ियाँ बटोरता था।

दूर से आया हुआ मुसाफिर।

पूर्वकालिक कृदन्त

अविकृत धातु रूप में रहता है या धातु के अन्त में कर, के, कर (के) लगा कर बनता है।

सुन कर, सुनके, सुनकर के।

खड़ीबोली	ब्रजभाषा
सुन कर	सुनि
सींच कर	सींचि

हिंदी की बोलियों में इकारान्त के संयोगात्मक पूर्वकालिक कृदन्त रूपों का प्रयोग बराबर पाया जाता है। खड़ीबोली में इकार का लोप हो गया है।

कर्तृवाचक कृदन्त

संज्ञा तथा विशेषण के समान प्रयोग होता है।

लिखनेवाला, आनेवाली।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

मैं डरते-डरते उसके पास गया।

वह मरते-मरते बचा।

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

एक कुत्ता मुँह में रोटी का टुकड़ा दबाये जा रहा था।

कालरचना

ब्रजभाषा

साधारण अथवा मूलकाल

१. भूत निश्चयार्थ —बु चल्यौ
२. भविष्य निश्चयार्थ —बु चलैगो । (चलिहै)
३. वर्तमान संभावनार्थ —जदि बु चलै
४. भूत संभावनार्थ —जदि बु चल्तौ
५. वर्तमान आज्ञार्थ —बु चलै
६. भविष्य आज्ञार्थ —तू चलियौ

ख—संयुक्तकाल

१. वर्तमानकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

७. वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ बु चल्तु है (ए)
८. भूत अपूर्ण निश्चयार्थ बु चल्तौ (बु चल्तु हतो)
९. भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ बु चल्तौ होइगो ।
१०. वर्तमान अपूर्ण संभावनार्थ जदि बु चल्तौ हो (ओ) ।
११. भूत अपूर्ण संभावनार्थ जदि बु चल्तौ होतो ।

२. भूतकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

१२. वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ बु चल्यो है (ए) ।
१३. भूत पूर्ण निश्चयार्थ बु चल्यो हतो ।
१४. भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ बु चल्यो होगो ।
१५. वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ जदि बु चल्यौ हो
१६. भूत पूर्ण निश्चयार्थ जदि बु चल्यौ होतो ।

उक्त विवेचन में तीन मुख्य काल हैं—वर्तमान, भूत, भविष्य

मुख्य अर्थ —निश्चयार्थ, आज्ञार्थ, संभावनार्थ
व्यापार की अवस्था —सामान्यता, पूर्णता तथा अपूर्णता

कालरचना

खड़ीबोली

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी की कालरचना का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार से माना है :

क—साधारण अथवा मूलकाल

१. भूत निश्चयार्थ —वह चला
२. भविष्य निश्चयार्थ —वह चलेगा
३. वर्तमान संभावानार्थ —अगर वह चले
४. भूत संभावानार्थ —अगर वह चलता
५. वर्तमान आज्ञार्थ —वह चले
६. भविष्य आज्ञार्थ —तुम चलना

ख—संयुक्त काल

१. वर्तमानकालिक कृदंत + सहायक क्रिया

७. वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ —वह चलता है।
८. भूत अपूर्ण निश्चार्थ —वह चलता था।
९. भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ —वह चलता होगा।
१०. वर्तमान अपूर्ण संभावानार्थ—अगर वह चलता हो
११. भूत अपूर्ण संभावानार्थ —अगर वह चलता होता।

२. भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया

१२. वर्तमानपूर्ण निश्चयार्थ —वह चला है
१३. भूत पूर्ण निश्चयार्थ —वह चला था
१४. भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ —वह चला होगा
१५. वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ —अगर वह चला हो
१६. भूत पूर्ण निश्चयार्थ —अगर वह चला होता।

इस समस्त कालरचना में तीन मुख्य काल हैं—वर्तमान, भूत, भविष्य
तीन मुख्य अर्थ हैं—निश्चयार्थ, आज्ञार्थ, संभावानार्थ
तीन व्यापारों की अवस्थाएँ है—सामान्यता, पूर्णता तथा अपूर्णता।

क्रियार्थक संज्ञा

ब्रजभाषा

१. सामान्यतः क्रियार्थक संज्ञाओं के दो रूप मिलते हैं : ब—वाले
न—वाले

मथुरा की ओर ब—वाले रूपों की प्रधानता है, वैसे कहीं-कहीं न—वाले रूप भी चलते हैं :—

ब—वाले रूप, चलिबौ, गाइबौ, खाइबौ, आइबौ

न—वाले रूप, करनी, व्वा की करनी व्वा के सिर

२. व्यंजनान्त धातुओं में 'अनु' जोड़कर भी क्रियार्थक संज्ञा बनाई जाती है, जैसे, चलनु—व्वाकु चलनु कैसौ ऐ।

नोट : १ ब्रजभाषा से पूर्वी रूपों में—नो लगाकर, जैसे चलनो, खानो

२. ब्रजभाषा के पश्चिमी तथा दक्षिणी रूपों में—बौ लगाकर, जैसे, चलिबौ, खायबौ।

३. व्यंजनान्त धातुओं में 'अनु' के स्थान पर 'अन' भी लगता है, जैसे, पिअन, सिअन।

३. सहायक क्रिया—हो को छोड़कर अन्य ओकारान्त धातुओं में——उन प्रत्यय जोड़ा जाता है, सोउन, बोउन।

४. मूल धातु में गति जोड़कर भी बनाई जाती है, जैसे, चलगति, व्वाकी चलगति अच्छी ऐ।

५. 'अनि' जोड़कर : जैसे, चाहनि,—जा छोरा की चाहनि टेढ़ी ऐ
स्त्रियों तक सीमित।

६. 'इ' जोड़कर :

चालि, जा घोड़ा की चालि अच्छी है ऐ।

क्रियार्थक संज्ञाओं के —न तथा—ब वाले रूपों के विवरण के संबंध में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है "क्रियार्थक संज्ञा के ब्रज में पाये जाने वाले रूपों में—न रूप का प्रयोग पश्चिमी हिंदी की बोलियों, मालवी, निमाड़ी, पहाड़ी बोलियों तथा उत्तर पश्चिमी भाषाओं तक [जिनमें (न~ण) हो जाता है] तक फैला हुआ है। —ब रूप राजस्थानी की अन्य समस्त बोलियों। सहित हिंदी की पूर्वी बोलियों में व्यवहृत होता है।"

क्रियार्थक संज्ञा

खड़ीबोली

क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग साधारणतः भाववाचक संज्ञा के समान होता है। उसका बहुवचन में प्रयोग नहीं होता। साधारणतः उसका निर्माण —ना धातु में लगाकर किया जाता है।

१. —आकारान्त संज्ञा के समान इसका प्रयोग :
   जल्दी उठना अच्छा है।
   वहाँ जाने में कोई हानि नहीं।
   मैंने उसे डूबने से बचाया।

२. क्रियार्थक संज्ञा अपने संज्ञा रूप में होते हुए भी क्रिया के रूप को रखते हुए कर्म भी रख सकती है :
   मैं फल खाना पसन्द करता हूँ।

३. इस संज्ञा का रूपान्तर आकारान्त संज्ञा के समान होता है, विशेषण की तरह प्रयोग में इसमें लिंग तथा वचन के अनुसार विकार भी होता है :
   मुझे दवाई **पीनी** पड़ेगी।
   तुमको उन सबके नाम **लिखने** होंगे।
   विशेषण: तुमको परीक्षा **करनी** हो तो लो।

४. क्रियार्थक संज्ञा का उद्देश्य संबंध कारक में आता है, अप्राणिवाचक कर्त्ता की विभक्ति बहुधा लुप्त रहती है, जैसे, लड़के का **जाना** ठीक नहीं है
   रात को पानी **बरसना** शुरू हुआ।
   इसका दूसरा रूप होगा : रात को पानी का **बरसना** शुरू हुआ।

५. संज्ञा के समान ही इसके पूर्व कोई विशेषण आ सकता है
   सुन्दर लिखने के लिए इनाम मिला।

६. क्रियार्थक संज्ञा का संप्रदान—कारक तत्परता के अर्थ में आता है :
   गाड़ी आने को है। गाड़ी आने वाली है।
   वह जाने को था। वह जाने वाला था।

७. हो, था, पड़, चाहिए क्रियाओं के साथ क्रियार्थक संज्ञाओं का प्रयोग :
   मोहन को जुर्माना देना पड़ा।
   राम को किताब लानी है।
   लड़की को ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।

संयुक्त क्रिया

ब्रजभाषा

संयुक्त क्रियाएँ दो प्रकार से बनती हैं :

अ—प्रधान क्रिया के साथ सहायक क्रिया

आ—दो अथवा तीन क्रियाओं का संयोग

प्रथम प्रकार की संयुक्त क्रियाओं का विवेचन किया जा चुका है।

दो प्रधान क्रियाओं का संयोग

१. धातु के साथ :

चलनौं —गेर चलि। दै दै चलि। दे चल।
चुकनौं —देखि चुक्यौ, जाइ चुक्यौ
देनौं —चलि दए, डारि दै, कर दै।
जानौं —लौटि जाओ, आइ गौ, भाजि गयौ।
सकनौं —चल सकतु ए कै नाइँ।

२. क्रियार्थक संज्ञा के साथ :

२. १ मूल रूप के साथ :
चाहनौं : जि बत तौ सुननी चहिएँ।
करनौं : रोयौ करि, बकौ करि।
परनौं : गीतु सुनानौ परैगौ।
: मोय तेरे घर जानौ परैगो।

२. २ विकृत रूप के साथ :

देनौं : आन्दे, जान्दै
लगनौं : बात हौन लगीं, छोरा रोइबे लग्यौ।
पामनौं : मैं न चलि पाँउगौ, जान् न पावैं, देखौ

२. ३ संज्ञा के मेल से : किसी के साप ते गु मँई भस्म हैगौ।

३. वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ :

जानौं : तेरे बैंगन गिरत जाँत ऐं।
फिरनौ : इत-उत में बुमरत् फिरत् है। खेलत फिरै।
रहनौं : तू कहा कर्तु रहतु ए। चल्तु रहतु।
पाउना : चलत पाए।

४. भूतकालिक कृदन्त के साथ :

आउनौ : चल्यौ आयौ, चल्यौ आ।
चाहनौ : छुयौ चाहत,
दैनौं : दएँ दै तूँ, दए देत।
परनौ : गु पोखरा में कूदी परत्यै।

संयुक्त क्रिया

खड़ी बोली

संयुक्त क्रियाएँ प्रधानतः दो प्रकार से बनती हैं :

अ —प्रधान क्रिया के साथ सहायक क्रिया,

आ—दो अथवा तीन प्रधान अथवा कृदन्तीय क्रियाओं का संयोग

प्रथम प्रकार का संयुक्त क्रियाओं का विवेचन काल-रचना के साथ हो चुका है।

दो प्रधान क्रियाओं का संयोग

१. **धातु के साथ :**

सुन : सुन चलो, फिर देर लगेगी।
चल : डाल चल, दे चलो फिर कब आना होयगा।
देन् : डाल दो,
जा : लौट जाओ, भाग जाओ
सक् : चल सकते हो कि नहीं, अभी बता दो।

२. **क्रियार्थक संज्ञा के साथ :**

२. १ **मूल रूप के साथ :** सुनना, रोना, बकना, जाना आदि—

जाना : मैं जाना चाहता हूँ।
: वह जाने लगा
खोदना : वह जमीन खोदने लगा

२. २ **संज्ञा के मेल से :** ऋषि के शाप से वह भस्म हो गया।

३. **वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ :**

तेरे बैंगन गिरते जाते हैं।
इधर-उधर कुत्ता मारते-फिरते हो।
तुम क्या करते-रहते हो।

४. **भूतकालिक कृदन्त के साथ :**

चला आ।
दिया देता हूँ।
साफ बात किसी से नहीं कही जाती।
वह पोखर में कूद पड़ती है।
वह देखा करता है।

ब्रजभाषा

५. पूर्वकालिक कृदन्त के साथ :

आमनों-आउनो : लै आऔ, निकारि आई, निकसि आई।
चलनो-चलनौ —कौआ अंडा लै चल्यौ।
देनो-दैनौं —मैंने तो किताब दै दई।
जानो-जानों —भजि गये, आय गई।
सूखि गये,
लैनो-लैनौं —खाइ लै, बुलाइ लै, लूटि लए,।
बुलाए लियो, घेरि लियो,
निकरनौं —जि रस्ता कहाँ जाइ निकर्यौ ए ?
रहनौं —जाइ रहे ऐं।
करनौ —आनि कै।
पड़नौ-परनो —जानि पड़त, जानि परत,
छोरी रोइ परी।
पाउनो —धरि पाए
सकनो —चलि सकत, कहि सकत, लै सकै।
बोलनों —झट्ट गोपाल बोलि उठ्यो।

६. अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के साथ :

न निगल्त बनैं, न उगल्त बनैं।

७. पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त के साथ :

हूँ, जि काम करें जातिउँ।

८. पुनरुक्त संयुक्त क्रिया :

गु कछु बोलत्चल्त्वै।

तीन क्रियाओं के संयुक्त रूप :

I. तीन प्रधान क्रियाएँ : चल्यौ जायौ करि
लै लिन दै।

II. दो क्रियाएँ तथा एक सहायक क्रिया :
वु पढ़ि सक्तु ए।
मैं आई सक्तूँ।

खड़ीबोली

पूर्वकालिक कृदन्त के योग से :

अवधारण बोधक : उठना : बोल उठना, चिल्ला उठना, रो उठना, चौंक उठना, काँप उठना,

बैठना : वह उठ बैठा, मार बैठा, कह बैठना, खो बैठना,

जाना : कुचल जाना, छा जाना, खो जाना, सो जाना, भूल जाना, छू जाना, धो जाना,
लिखकर जाओ के लिए 'लिख जाओ'

लेना—खा लेना, दे देना, सुन लेना, छीन कर लेना,

देना—खिला देना, समझा देना, कह देना, खो देना

पड़ना—सुन पड़ना, जाना पड़ना, सूझ पड़ना ।

डालना—तोड़ डालना, फोड़ डालना, मार डालना ।

रहना—लड़के खेल रहे थे ।

शक्तिबोधक : सकनाः खा सकना, मार सकना, दौड़ सकना,

पूर्णताबोधक: चुकना : खा चुकना, पढ़ चुकना, दौड़ चुकना ।

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त से बने हुये :

बनता – न निगलते बनता है और न उगलते ही ।
यह छवि देखते ही बनती है ।

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त से बनी हुई :

निरंतरता बोधक : इस लता को क्यों छोड़े जाती है ।

निश्चय बोधक : मैं इस काम को करे जाता हूँ ।

पुनरुक्त संयुक्त क्रिया :

वह बोलता चालता नहीं है ।
पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, होना-हवाना ।
करना-धरना, समझना-बूझना ।

तीन क्रियाओं का योग :

I. तीन प्रधान क्रियाएँ : ले लेने दो, तुम्हें क्या ।
चलो जाओ करके काम आओ ।

II. दो क्रियाएँ एक सहायक क्रिया के साथ : वह पढ़ सकता है ।
मैं आ सकती हूँ ।

ब्रजभाषा

प्रेरणार्थक क्रिया[1]

ब्रज में दो प्रकार के प्रेरणार्थक प्रत्यय हैं :—

—आ प्रत्यय
—वा प्रत्यय

अकर्मक धातुओं में—आ लगाने से धातु सकर्मक मात्र होकर रह जाती है फिर उनमें प्रेरणार्थक—व प्रत्यय लगाकर बनाते हैं।

अकर्मक —पकत चलत्
सकर्मक —पकाउत चलाउत
प्रेरणार्थक—पकबाउत चलबाउत

१. अ — भविष्य आज्ञार्थ में—चलइओ

२. आ— पूर्वकालिक कृदन्त—चलाइ
भूतकालिक कृदन्त—चलाओ
ह-भविष्य —चलाइहै
ग-भविष्य चलाउँगो

३. आउ- क्रियार्थक संज्ञा —चलाउनो
कर्तृवाचक संज्ञा —चलाउन बारो
वर्तमान कालिक कृदन्त—चलाउत

४. आव- प्रथम निश्चयार्थ —चलावै
उत्तम पुरुष—एकवचन
को छोड़कर ग-भविष्य : चलावैगो

दुहरा प्रेरणार्थक :

चल्वाइ—चल्वाओ, चल्वबउँगो

क—आ, ई ऊ ह्रस्व कर दिये जाते हैं।

खानो—खबाउनो
पीनो—पिवाउनो
चूनो—चुबाउनो

ख— —ए—इ लेनो—लिबाउनो
ओ—उ खोनो—खुबाउनो

व्यंजन भी बदलते हैं :

ट-ड़ फट-फाड्
क-च विक्-बेच्
ह-ख रह्-राख

---

१. धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, १९५४, पृष्ठ ९२-९३ के आधार पर।

खड़ीबोली

प्रेरणार्थक क्रिया

खड़ीबोली हिन्दी में प्रेरणार्थक धातु के चिह्न हैं :

—आ प्रत्यय

—वा प्रत्यय

ये दोनों ही प्रत्यय प्राचीन चिह्नों के रूपान्तर मात्र हैं। अकर्मक धातुओं में —आ लगाने से धातु सकर्मक मात्र होकर रह जाती है, अतः ऐसी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप पुनः—वा प्रत्यय लगाकर बनाते हैं

अकर्मक :	धातु रूप	धातु रूप+आ	धातुरूप+वा
	जलना	जलाना	जलवाना
	पकना	पकाना	पकवाना

सकर्मक : धातुओं में आ या—वा दोनों चिन्हों को लगाया जा सकता है। इससे प्रेरणार्थक का बोध होता है।

लिखना—लिखाना—लिखवाना

करना—कराना—करवाना

'आ' के स्थान पर—ला तथा

'आ' के स्थान पर—छा तथा

'वा' के स्थान पर—लवा का प्रयोग भी होता है।

मूल स्वर में मात्रिक भेद मात्र से :

मरना	मारना	मरवाना
पिसना	पीसना	पिसवाना
लुटना	लूटना	लुटवाना

दूसरे वर्ण के स्वर को दीर्घ करने से :

निकलना	निकालना	निकलवाना
उखड़ना	उखाड़ना	उखड़वाना

स्वर परिवर्तन से :

संवृत से	अर्द्ध संवृत	पुनः संवृत
खुलना	खोलना	खुलवाना
खिचना	खेंचना	खिचवाना

स्वर-व्यंजन-परिवर्तन :

ट-ड छूटना—छोड़ना—छुड़वाना

क-च बिकना—बेचना—बिचवाना

स्वर-परिवर्तन तथा—ला

धातु रूप	लघु रूप+ला पर प्रत्यय	लघु स्वर+लवा प्रत्यय
पीना	पिलाना	पिलवाना
सोना	सुलाना	सुलवाना

नामधातु

ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली

भारतीय आर्य भाषाओं में प्राचीनकाल से ही नामधातुएं पाई जाती हैं। इनका निर्माण संज्ञा या विशेषण में क्रिया के प्रत्यय जोड़ने मात्र से होता है। हिंदी नामधातु के मध्य में आना वाला-आ-प्रत्यय का संबंध संस्कृत नाम धातु के चिह्न-आय्-से जोड़ा जाता है।

संस्कृत शब्दों में प्रत्यय लगाकर :

उद्धार —उद्धारना
स्वीकार—स्वीकारना
धिक्कार—धिकारना
अनुराग—अनुरागना

II. अरबी-फारसी के शब्दों से :

गुज़र —गुज़रना
खरीद—खरीदना
खर्च—खर्चना, खरचना
आजमा—आजमाना
दाग —दागना

III. अंग्रेजी शब्दों से :

फिल्म—फिल्माना

हिन्दी शब्दों से :

। अन्त में 'आ' करके और आद्य 'आ' को ह्रस्व करके।

दुख —दुखाना
हाथ—हथियाना
बात—बतियाना
चिकना—चिकनाना
अपना—अपनाना
पानी—पनियाना
लाठी—लठियाना

रिस—रिसाना

विलग—विलँगाना[1]

नोट : व्रजभाषा में केवल अन्त्य रूप व्रज की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार हो जाता है जैसे, लठियानौ, अपनानौ, बतियानौ आदि।

'नामधातु' के संबंध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं, 'स्वर्ण-पीतल आदि धातुओं से विविध आभूषण तथा पात्र आदि बनते हैं और वे सब फिर धातु रूप में आ जाते हैं। इसी तरह भाषा में धातुओं से विविध आख्यात तथा (कृदन्त) संज्ञा विशेषण आदि बनते हैं।

अनुकरणमूलक शब्दावली में भी -आ- प्रत्यय लगाकर नामधातु या अनुकरण धातु बना लेते हैं :

सी सी करना—सिसियाना, इसीसे

'सिसयाते रहे सब ठंड के मारे'

मे मे करना—मिमयाना

सन सन करना—सनसनाना

गोली सनसनाती हुई चली गई।

बड़बड़—बड़बड़ाना

खटखट—खटखटाना

भनभन—भनभनाना

थरथर—थरथराना

चमके से चमकना नाम धातु है अथवा मूलधातु यह विवादास्पद है।

मूल धातु—सूरज चमकता है।

तारे चमकते हैं

प्रेरणार्थक रूप : चमकना : वर्तन चमका दिये गये।

नामधातु : 'चम' को लेकर चमचम विशेषण

बर्तन चमचम कर रहे हैं।

उससे नामधातु रूप' चमचमाना'

बर्तन चमचमाते हैं।

ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली

बहुत सी नामधातुएँ बोलियों में चलती हैं पर खड़ीबोली हिन्दी में उसका प्रयोग वर्जित सा है, जैसे ब्रजभाषा में दरसत' तथा' दरसावत' आदि प्रयोग खूब चलता है जिससे प्रभावित होकर खड़ीबोली में दर्शाता, चलने भी लगा है पर

---

१. इस प्रकार के शब्दों का प्रचार अधिक नहीं है। इन क्रियायों के स्थान पर संयुक्त क्रियाओं का उपयोग अधिक होता है, जैसे, अलग करना, बात करना, दुख देना।

'दरसाता' नहीं चलता है। ब्रज में 'परसत' 'परस' 'सरसावत' 'सरसात' जैसे रूप चलते हैं। पर हिन्दी में 'परसता' नाम धातु नहीं चलती, पृथक्, से 'छू' क्रिया से 'छूना' क्रिया के रूप चलते हैं।

वाजपेयी जी 'खरीद' को नामधातु नहीं मानते जबकि गुरुजी ने इसको नामधातु लिखा है : इस प्रकार कौनसी धातु वस्तुत: नामधातु है, यह स्वयं विवादस्पद विषय है।

क्रिया में लिंग का प्रभाव

हिन्दी में कृदन्त क्रियाएँ अधिक हैं और लिंग का प्रभाव कृदन्त क्रियाओं पर ही पड़ता है शेष पर नहीं। डॉ० वर्मा ने "हिन्दी भाषा के इतिहास" में लिखा है, हिन्दी में क्रिया के कृदन्त रूपों का व्यवहार बहुत अधिक है। संस्कृत कृदन्त रूपों में लिंगभेद मौजूद था, यद्यपि क्रिया में लिंगभेद नहीं किया जाता था क्योंकि हिन्दी कृदन्त रूप संस्कृत कृदन्तों से में संबद्ध है, अत: यह लिंगभेद हिन्दी कृदन्तों में तो आ ही गया, साथ ही कृदंत से बनी हुई क्रियाओं में भी पहुँच गया है।"

संस्कृत में अकर्मक धातुओं से प्रकृत 'त' प्रत्यत कर्तृरि होते हैं—अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक त-प्रत्यान्त रूप कर्तृवाच्य होते हैं—कर्त्ता लिंग-वचन का अनुसरण करते हैं, वही स्थिति हिंदी की क्रियाओं के साथ है :—

बालक: सुप्त	लड़का सोया।
बालिका: सुप्ता	लड़की सोयी।
बालका: सुप्ता:	लड़के सोये।

सकर्मक क्रियाओं के प्रयोग संस्कृत कर्मवाच्य होते हैं, कर्म के अनुसार क्रिया के लिंग-वचन रहते हैं :

सीतया ग्रन्थ: पठित: —सीता ने ग्रन्थ पढ़ा।

रामेण संहिता पठिता —राम ने संहिता पढ़ी।

कर्म के अनुसार क्रिया के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए किशोरीदास वाजपेयी जी ने कुछ उदाहरण दिये हैं :

बालकेन बालिका दृष्ट—लड़के ने लड़की देखा
बालिकया बालका दृष्टा—लड़की ने लड़की देखी।
बालिकाभि : बालिका दृष्टा—लड़कियों ने लड़की देखी।

कर्ता जो करण रूप में है उसका क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, पहले उदाहरण में पुल्लिग है, दूसरे में स्त्रीलिंग और तीसरे में स्त्रीलिंग बहुवचन है।

कृदन्तीय रूप संस्कृत में भी पुल्लिग के साथ 'गच्छत्' आता है तो स्त्रीलिंग के साथ 'गच्छती' आता है। यही प्रभाव आजकल हिन्दी में पड़ा है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कृदन्त रूपों में लिंग का प्रभाव हिन्दी की कोई अपनी निजी नई प्रवृति नहीं है वरन् वह तो प्राचीन काल से संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में होती हुई हिन्दी को परम्परागत रूप में प्राप्त हुई है।

अव्यय

जिनमें कोई विकार उत्पन्न न हो, वे अविकारी रूप ही अव्यय हैं। व्याकरण के अनुसार अव्यय को चार भागों में बाँटा गया है :

१. क्रिया विशेषण
२. समुच्चयबोधक
३. सम्बन्ध सूचक
४. विस्मयादिबोधक

१. क्रिया विशेषण

जिस अव्यय से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती है उसे क्रिया विशेषण कहते हैं, जैसे, तहाँ, जहाँ, वहाँ, जल्दी, धीरे, अभी तक।

कुछ विभक्त्यंत शब्दों का प्रयोग भी क्रिया विशेषण की तरह होता है जिससे कुछ लोग इनको अविकारी कहने में औचित्य नहीं समझते, जैसे यहाँ का, कब से, आगे को, किधर को, (संस्कृत के विभत्त्यंत प्रयोग) सुखेन, बलात् हठात् आदि।

क्रिया विशेषण के भेद :

प्रयोग, रूप तथा अर्थ के आधार पर तीन भेद हो सकते हैं और प्रयोग के अनुसार भी साधारण, संयोजक, तथा अनुबद्ध तीन भेद हो सकते हैं। सामान्यत: हमने ये भेद किये हैं :

१. सर्वनाममूलक
२. कालवाचक
३. स्थानवाचक
४. रीतिवाचक
५. निषेधवाचक
६. कारण वाचक
७. परिमाणवाचक
८. आवृत्तिमूलक वाक्यांश।

२. समुच्चयबोधक

जो क्रिया की विशेषता न बताकर एक वाक्य का सम्बन्ध दूसरे वाक्य से मिलाता है उसे समुच्चय-बोधक कहते हैं, इसका विशेष विवरण आगे होगा ही।

३. सम्बन्ध सूचक

जो अव्यय संज्ञा के बहुधा पीछे आकर उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ मिलता है उसे सम्बन्ध सूचक कहते हैं। देखा जाय तो विभक्तियों तथा मूल अव्ययों को छोड़कर शेष कोई सम्बन्ध सूचक अव्यय नहीं है, इसीलिये इसका विवेचन विस्तार से नहीं किया जा रहा है, जैसे

धन के बिना
पूजा से पहले

४. विस्मयादिबोधक

विस्मय, हर्ष, शोक आदि सूचक शब्द।

नोट :—निश्चयबोधक अव्यय का भी पृथक् विवेचन किया गया है।

अव्यय.........क्रिया विशेषण

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में क्रिया विशेषणों के रूप, सर्वनाम, विशेषण या क्रिया विशेषणों के आधार पर निर्मित हुए हैं :

१. **सर्वनाममूलक क्रिया विशेषण**

कालवाचक : अब अबै
जब, जबै, जौ, ल्यौ, जौ तक
तब, तबै, तौ तक, तउ, तौ लौ ।
कब, कबै

—ही के योग से :
अब + ही = अभी—अबहिं—अबई

स्थानवाचक :

इतै, हियाँ, हियन, याँ, म्वाँ, जाँ, न्याँ
बितै, हुआँ, हुआन, बाँ, वाँ, माँ, म्हां, हूवाँ
तितै, तहाँ
जितै, जहाँ
कितै

दिशावाचक :

इत
उत
बित
कित
तित

रीतिवाचक :

न्यौं, न्यूँ, नौं, नुँ
ज्यौं, जैसे
तैसे, तैसें
कैसे

२. **कालवाचक**

आज, आजु, अब, आगे, आगें
कल, काल
परसौं, तरसौं, नरसौं
तड़के, भोर
तुर्त-फुर्त, त्राट, तुरत, तुत्त
झट्ट-फट्ट
अगार-पिछार

अव्यय.........क्रिया विशेषण

खड़ी बोली

क्रिया विशेषण प्रायः सर्वनाम तथा विशेषण के आधार पर बने हैं जो क्रिया की विशेषता बताते हैं :

१. सर्वनाममूलक क्रिया विशेषण

कालवाचक :

अब, जब, तब, कब
—ही के योग से
अब + ही = अबही = अभी
जब + ही = जब्ही = जभी
तब + ही = तबही = तभी
कब + ही = कब्ही = कभी

स्थानवाचक :

	तेज उच्चारण में
यहाँ	याँ
वहाँ	वाँ
जहाँ	जाँ
तहाँ	ताँ
कहाँ	काँ

दिशावाचक :

इधर, उधर, जिधर, किधर, तिधर

रीतिवाचक :

यों
ज्यों, जैसे
त्यों
क्यों

२. कालवाचक

आज, कल
परसों, तरसों, नरसौं
सबेरे, अबेरे
तुरत, फुरत
झट
अचानक

३. स्थानवाचक

जोरें (भोरें) आगें, धीरे
पीछें (पछार), अगार, आगें, माऊं
नजदीक, पल्लंग, उल्लंग
समुहीं, सामने

४. रीतिवाचक

बिरकुल्ल, इकिल्लौ
न्यौ, होलै, जोतै

५. निषेधवाचक

न, नहीं
नाँय, नई, नाँई, ना, नि ।
मति

६. कारणवाचक

चौं, कहा, काए कूं

७. परिमाणवाचक

कछु, नैक, नैकु, थोरौ, तनक
भौतु, जाद्दा
इकट्ठे, सबु, सबेरे, सगरे, सिगरे

८. क्रिया विशेषण-वाक्यांश

आवृत्तिमूलक :

कालवाचक :

बेरि-बेरि, फिरि-फिर, घरी-घरी, कैऊ पोत
रोजु-रोजु, इतने खन, अब-तब, कबऊ-जब
कबऊ-जबऊ, जब कबउल, धौंलइ (धौंताय)

स्थानवाचक :

चार्‌यौ ओर, ज्हाँ-त्हाँ, कहू-कहूँ, कहूँ के कहूँ
चाँइ जाँ, इत-उत, इत-बित, चाँय, ठाई
जाँ-ताँ

रीतिवाचक :

चायें जैसो, जैसे तैसें, होलै-होलै, कैसे कैसे
ऐसेंई, ऐसें, जातरैंतें
जोर जोर तें

खड़ी बोली

३. स्थानवाचक

आगे, पीछे
पास, निकट
आस-पास
दूर, सामने
ऊपर, नीचे
साथ, अलग
दाहिने, बाँये
ओर, इस ओर, उस ओर
बाहर, भीतर, अन्दर

४. रीतिवाचक

झटपट, जल्दी से, धीरे से
अचानक, सहसा, यकायक
ठीक, सचमुच, व्यर्थ, वृथा
क्रमशः, सम्भवतः

५. निषेधवाचक

न, नहीं, मत

६. कारणवाचक

क्या, क्यों

७. परिमाणवाचक

कुछ, थोड़ा, बहुत, ज्यादा,
सब, सारे, इकट्ठे,
बिल्कुल, प्रायः,
लगभग, जरा,
और, सिर्फ, केवल, बस

८. क्रिया विशेषण-वाक्यांश

आवृत्तिमूलक :

कालवाचक :

बारबार, बहुधा, प्रतिदिन, अक्सर, हर रोज,
घड़ी-घड़ी, कई बार, पहले-फिर, हरबार,
कभी-कभी, न कभी, कब तक कब-कब

स्थानवाचक :

चारों तरफ, जहाँ-तहाँ, आर-पार, इस तरफ,
उस जगह, चारों ओर, इधर-उधर

रीतिवाचक :

चाहे जैसे ।

अव्यय-समुच्चयबोधक

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा में अरु, औरु, अउर, अउ आदि समुच्चयबोधक अव्यय हैं।

१. विभाजक समुच्यबोधक

कै, कैतो
चाँय.........चाँय
नाँय.........तौ

२. विरोधवाचक समुच्यबोधक

पै, लेकिन

३. निमित्तवाचक समुच्चयबोधक

तो, तौ, पै
तब

४. उद्देश्यवाचक समुच्चयबोधक

जौ, जौ कहूँ

५. व्याख्यावाचक

तातै, तासै, ताते, तातें, तासों

६. संकेतवाचक

चाँय

७. विषयवाचक

कि, अक, अकि, कै

निश्चयबोधक अव्यय

१. समेतार्थक

मैं, ऊ
(पेड़ को) ऊ

२. केवलार्थक

बेई, हम तेई ऐसोई
देखत् ई

अव्यय-समुच्चयबोधक

खड़ी बोली

खड़ी बोली हिन्दी में और, व, एवं, भी आदि समुच्चयबोधक अव्यय हैं; इसके अतिरिक्त निम्नलिखित अव्यय भी समुच्चय का ही बोध कराते हैं :—

१. **विभाजक समुच्चयबोधक**

चाहे-चाहे, या-या, क्या-क्या,
न-न, नहीं-तो

२. **विरोधदर्शक**

पर, परन्तु, किन्तु, लेकिन
मगर, वरन्, बल्कि ।

३. **कारणवाचक**

क्योंकि, जो कि

४. **उद्देश्यवाचक**

कि, जो, ताकि, इसलिए कि

५. **व्याख्यावाचक**

इसलिए, अतः, सो, अतएव ।

६. **संकेतवाचक**

जो-तो, यदि-तो,
यद्यपि-तथापि, चाहे-परन्तु

७. **विषयवाचक**

कि, जो, अर्थात्, याने, मानो ।

निश्चयबोधक अव्यय

१. **समेतार्थक**

भी—'मैं वहाँ गया भी और काम नहीं बना' ।

२. **केवलार्थक**

ही—'राम ही आया है' ।

—आ झगड़ा
घेरा
—आई = लड़ाई
पढ़ाई
धुलाई
—आऊ = बिकाऊ
कमाऊ
—आक = तैराक
— आव = चढ़ाव
घुमाव
—आन = उड़ान
उठान
—आवट = लिखावट
रुकावट
—आवा = बुलावा
पहनावा
—आहट = चिल्लाहट
घबराहट
—अक्कड़ = भुलक्कड़
पियक्कड़
—इयल = सड़ियल
मरियल
मड़ियल
—एरा = लुटेरा
बसेरा
—त = बचत
खपत
—ती = बढ़ती
घटती
—न = चलन
मुसकान
—ना = बढ़ना
—वाला—कर्तृवाच्य—करनेवाला
संबंधवाचक—गाड़ीवाला
संबंधित—गाँववाला
निश्चयार्थक—छोटा वाला बक्स
—आ = भूखा
प्यासा

—आई = अच्छाई
मिठाई
—इया = लठिया
पटिया
दुपहरिया
खटिया
—ईला = रसीला
जहरीला
—ऊ = बाजारू
पेटू
—एरा = ममेरा
चचेरा
सँपेरा
—पन = कालापन
काँग्रेसीपन
—पा = मोटापा
बुढ़ापा
—हरा = इकहरा
—गर = सौदागर
जादूगर
—आना = सलाना, सालाना
मर्दाना
—नाक = दर्दनाक
खतरनाक
—ईन = रंगीन
शौकीन
—मंद = दौलतमंद
अक्लमंद
—दार = जमीदार
प्लेटदार
लम्बरदार
—आना = लीडराना
—नुमा = पतलूननुमा
बटननुमा
—वान = कोचवान
—ची = मिडिलची

परिशिष्ट—१

ब्रजभाषा और अवधी

पूर्वी हिन्दी-क्षेत्र की बोलियों का विकास अर्द्ध मागधी अपभ्रंश से हुआ है। पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत प्रधानत: तीन बोलियों का समावेश है :

१. **अवधी**

२. **बघेली**—छोटा नागपुर के चन्दमकार, रीवाँ के दक्षिण तथा मिर्जापुर, जबलपुर का कुछ भाग तथा मंडला में बोली जाती है।

३. **छत्तीसगढ़ी**—उदयपुर, कोरिया, सरगुजा तथा जयपुर रियासत के कुछ भाग, छोटा नागपुर एवं छत्तीसगढ़ जिले के अधिकांश भाग में बोली जाती है।

इनमें से सबसे प्रधान बोली अवधी है। यह हरदोई, खीरी, फैजाबाद के कुछ भागों को छोड़कर समस्त अवध में, फतेहपुर, इलाहाबाद, जौनपुर तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। इसको ही पूर्वी तथा कौशली भी कहते हैं। अवधी के विकास पर डॉ० बाबूराम सक्सेना ने कार्य करते हुए अवधी की तीन विभाषाएँ मानी हैं :

१. **पश्चिमी**—खीरी (लखीमपुर), सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतहपुर।

२. **केन्द्रीय**—बहराइच, बाराबंकी, रायबरेली।

३. **पूर्वी**—गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर तथा मिर्जापुर।

यही वह भाषा है जिसमें गो० तुलसीदास ने अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का अद्वितीय ग्रन्थ 'रामचरित मानस' तथा जायसी ने अपने पद्मावत की रचना की। साहित्यिक भाषा की दृष्टि से ब्रज के साथ यदि कोई भाषा टिक सकती है, तो वह अवधी ही है।

अवधी की उत्तरी सीमा पर नैपाली, पूर्वी सीमा पर भोजपुरी, दक्षिणी में छत्तीसगढ़ी की सरगुजा बोली तथा पश्चिम में कन्नौजी है।

ब्रजभाषा से साम्य तथा वैषम्य

संज्ञा—ब्रजभाषा में जहाँ एक रूप 'घोड़ा' है, वहाँ अवधी में तीन रूप हैं :—

ह्रस्व रूप—घोड़े
दीर्घ रूप—घोड़वा
दीर्घतर रूप—घोड़ौना

ब्रजभाषा—	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	घोड़ा	घोड़े
तिर्यक	घोड़ा, घोड़े, घोड़ै	घोड़ौ, घोड़ा, घोड़नि, घोड़ान्

अवधी	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	घोड़वा	घोड़वे, घोड़वने, घोड़वन्
तिर्यक	घोड़वा	घोड़वन्

कारकीय विभक्ति

'हि' विभक्ति का प्रयोग ब्रज में भी विशेषकर होता है पर अवधी में तो इस विभक्ति का व्यापक प्रयोग होता है :

कर्त्ता —द्विजन्ह कहा
कर्म —जननि जानकहि तुरत बोलावा
सम्प्रदान—अरध भाग कौसल्यहि दीन्हा।
अधिकरण-जा दिन तें हरि गर्भहि आये।

इसके अतिरिक्त कर्म सम्प्रदान में कहँ तथा अधिकरण में माँह विभक्ति का प्रयोग होता है।

'ए' विभक्ति का अधिकरण में प्रयोग ब्रज तथा अवधी दोनों में ही होता है,

ब्रजभाषा—द्वारे

अवधी —दुआरे

जबकि खड़ीबोली में होगा द्वार, या दरवाजे पर।

कारक चिह्न :

ब्रजभाषा तथा अवधी के कारक चिह्नों में कहीं-कहीं साम्य है। ब्रजभाषा के चिह्न पीछे दिये जा चुके हैं :

अवधी के कारक चिह्न :

कर्म —के; कां, (पुराना रूप कहँ)।
करण —से, सन
सम्प्रदान —को, कां। कहँ।
अपादान —से, तें
सम्बन्ध —के, कर, क, केर
अधिकरण—मैं, मां (महँ), पर

सर्वनामों के साथ विभक्ति का प्रयोग :

एकवचन—जेहि—जेहि कीन्ह अस पापु।
—तेहि—तेहि पावा परनामु।
—केहि—केहि मोहि अस दुख दीन्ह।
बहुवचन—जिन्ह—जिन्ह सब सुख-दुख दीख।
तिन्ह—जिन्ह पावा राखा तिन्ह नाहीं।

सर्वनाम :

पुरुषवाचक खड़ी बोली	ब्रजभाषा	अवधी
उत्तम : मैं	मैं, हों, हौं	मैं
मुझे, मुझको	मोहि, मोकों, मुजकौं	मोका
मैंने	मैंने, हौं	—
मुझसे,	मोसौं, मुज ते	मोसे, मोते, मोतै
मेरा	मेरौ	मोर
मुझ में, मुझ पर	मोपै, मुज पै, मो परि	मोपर
मध्यम :		
तू, तुम	तू, तै, तैं	तयँ
तुमको	तोहि, ताकौ	तोका, तोहि
तमने	तूनें, तैंने	——
तुमसे	तोसौं, तोतें	तो से, तो तन
तेरा	तेरौ	तोर
तुम में, पर	तो पै, मैं	तोरे (पर)

यह :

एकवचन	ब्रजभाषा	अवधी
कर्ता	यह	ई

	कर्म, सम्प्र०	याहि	एका
	कर्ता, करण	यानें	——
	बहुवचन		
		ये, यै	इनका
वह :			
एकवचन	कर्त्ता	वो, वह	ऊ
	कर्म	वाहि, विसे	ओका
	सम्प्रदान	वा । कौ	,, ,,
		विस । कौ	
	कर्त्ता-करण	वा । नें	——
		बिस नें	——
बहुवचन		वे, वै	ओ, ओ सब

जो :

		ब्रज	अवधी
एकवचन कर्त्ता		जो	जे, जवन, जौन
तिर्यक		जा । कौं	जेका
बहुवचन			
	कर्त्ता	जो	जे
	तिर्यक	जिन्हें, जिनि । कौं ।	जेन । का, जेन्ह
सो :			
एकवचन कर्त्ता		सो	से, तवन, तौन
	तिर्यक	ता । कौं	ते । का
बहुवचन			
	कर्त्ता	सो, ते	ते
	तिर्यक	तिन्हें, तिन । कौ	तेन । का, तेहि
कौन :			
एकवचन कर्ता		को, कौ	कवन
	तिर्यक	किसे	के

क्रियारूप

वर्तमान

एकवचन :	खड़ीबोली	मैं हूँ	तू है	वह है
	ब्रज	हौं	है	हैं

	अवधी—पुल्लिंग	अहेउँ, बाट्येउँ	अहस, अहे बाटे,	अहैं बाटै
	—स्त्रीलिंग	आहिउँ बाटिउँ	अहिस बाटिस	अहइ बाटइ
बहुवचन :	खड़ीबोली	हम हैं	तुम हो	वे हैं
	ब्रज	हैं	हौ	हैं
	अवधी—पुल्लिंग	अहो बाटो	अहैव-अहव्-अहै बाटेव-बाट्यौ-बाट्यें	अहीं-आह्यौ-अहैं बाटैं
	—स्त्रीलिंग	अहिन् बाटिन	अहिव् बाटिव	अहईं बाटीं

भूतकाल :

खड़ीबोली	मैं था	तू था	वह था
ब्रज	हो, हुतौ	हो, हुतौ,	हो, हुतौ
अवधी—पुल्लिंग	रहेउँ	रहेस, रहे	रहेस, रहा
—स्त्रीलिंग	रहिउँ	रहिस	रही

भविष्य :

खड़ी	होउँगा	होगा	होगा
ब्रज	ह्वैहौं, होउँगौ, होइहौं ।	ह्वै है होइहै, होवैगौ	ह्वै है, होइहै, होवैगौं, होयगौ,
अवधी	होबूँ	होबे, होबेस	होये

क्रिया रूप

सामान्य वर्तमान :

खड़ी	मारता हूँ	मारता है	मारते हैं
ब्रज	मारौं, मारतु हौं ।	मारै, मारतु है,	मारहिं । मारैं मारहिं, मारतु हैं
अवधी	मारत अहेउँ	मारत अहेस	मारत अहै

सकर्मक क्रिया के रूप : खड़ी—देखना

अवधी में क्रियार्थक संज्ञा—देखब

कर्तृवाच्य, वर्तमान, कृदन्तीय रूप—देखव् देखिव्, देखवा

अतीत कृदन्तीय रूप —देखा

भविष्य कृदन्तीय रूप —देखब

अव्यय-सर्वनामवाचक क्रिया विशेषण :

	यहाँ	वहाँ
व्रज	इत, इतै, यहाँ, यौं	उत, वहाँ, वाँ, उतै
अवधी	एठियाँ, एठियन हियाँ, ईआँ	ओठियाँ, ओठियन हुआँ
	जहाँ	**तहाँ**
व्रज	वित, जहाँ, जाँ	तित, तहाँ, ताँ
अवधी	जेठियाँ, जेठियन	तेठियाँ, तेठियन
	कहाँ	
व्रज	कित, कत, कहाँ, काँ	
अवधी	केठियाँ, केठियन	

पूर्वी सीमा की बोलियाँ—कन्नौजी और बुंदेली में अन्तर :

१. कन्नौजी तथा बुंदेली में पश्चिमी हिन्दी की मुख्य प्रवृत्ति के अनुसार कर्त्ता या करण (एजेंट) का चिह्न 'ने' लगता है किन्तु अवधी में इसका सर्वथा अभाव है।

२. कन्नौजी तथा बुंदेली की प्रवृत्ति ओकारान्त है कहीं-कही औकारान्त भी रूप मिलते हैं किन्तु अवधी में अकारान्त, आकारान्त ही है।

पश्चिमी सीमा-बोली—भोजपुरी से भिन्नता :

१. पश्चिमी भोजपुरी में वर्तमान काल के रूपों में—ला प्रत्यय लगता है जबकि अवधी में इसका अभाव है।

२. भोजपुरी में भूतकाल में—अल्, इल् प्रत्यय लगते हैं किन्तु अवधी में इसका अभाव है।

३. भोजपुरी में अपादान का परसर्ग—ले है जबकि अवधी में 'से' है।

मुख्य-मुख्य विशेषताएँ :

१. व्रजभाषाभाषी अकर्मक भूतकाल के कर्त्ता 'ने' चिह्न को प्रयोग करता है। यह 'ने' वास्तव में करण का चिह्न जो हिन्दी में भी गृहीत कर्मवाच्य रूप के कारण आया है पर पूरबी बोलियों तथा भाषाओं में—विशेषत: अवधी में यह 'ने' नहीं है अवधी के सकर्मक भूतकाल में जहाँ कृदन्त से निकले हुए रूप लिये भी गये हैं वहाँ न तो कर्त्ता में करण का (गृहीत कर्मवाच्य) चिह्न 'ने' आता है और न कर्म के अनुसार क्रिया का लिंग ही बदलता है।

२. 'घोड़ा' और 'सखी' का ब्रजभाषा में बहुवचन 'घोड़े' और 'सखियाँ-सखियन' होगा पर अवधी में एकवचन का रूप ही रहेगा, केवल कारक चिह्न लगाने पर 'घोड़न' और 'सखिन' हो जावेगा।

३. ब्रजभाषा में खड़ीबोली के समान—गा वाला कृदन्त रूप भी है, आवैगो, जायगो पर अवधी में भविष्यत् काल की क्रियाँ केवल तिङ्न्त ही है जिसमें लिंग भेद नहीं है। 'ग' वाले रूप वहाँ मिलते भी हैं पर पश्चिमी बोली 'ब्रज' के प्रभाव के कारण ही मिलते हैं।

४. ब्रज की प्रवृत्ति ओ—औकारान्त है—संज्ञाएँ, विशेषण, सम्बन्ध-कारकीय सर्वनाम के रूपों आदि में सर्वत्र यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है,

झगड़ौ, ऐसौ, वैसौ, जैसौ, कैसौ, छोटौ, बड़ौ, खोटौ, गोरौ, चौगुनौ, हमारौ, तुमारौ आदि।

अवधी की प्रवृत्ति अकारान्त है, जैसे,

अस, जस, तस, कस, छोट, बड़, खोट, भव, दून, चौगुन, मोर, हमार, तोर आदि।

यह लघ्वंत पदों की ओर झुकाव क्रिया पदों में भी है। ब्रजभाषा में जहां साधारण क्रियाएँ और भूतकालिक कृदन्त ओकारान्त होते हैं, जैसे,

आयेबौ, जायबौ, देबौ, गयौ, चल्यौ आदि

वहाँ अवधी में,

आउब, जाब, करब, हँसब आदि है।

भूतकालिक कृदन्त अवधी में प्राय: आकारान्त होते हैं, कुछ अकर्मक कृदन्तों को छोड़कर जैसे ठाढ़, बैठ, आय आदि।

भूतकालिक कृदन्त :

ब्रज	देख्यौ	—ओकारान्त
अवधी	देखा	—आकारान्त

६. ब्रजभाषा में व्यंजन गुच्छ आदि स्थिति में सुरक्षित हैं और उनका उच्चारण किया जाता है, जबकि अवधी में आदि स्वरागम की विशेष प्रवृत्ति है :

ब्रज	अवधी
स्यार	सियार
क्यारी	कियारी
ब्याज	बियाज
प्यारो	पियाय, पियारि
द्वारे	दुआरे
क्वारे	कुवारे

७. ब्रजभाषा में य—तथा व—श्रुति रूप विशेष है जबकि अवधी में स्वरों का बाहुल्य है।

क्रिया विशेषण—	यहाँ	अवधी—इहाँ
	वहाँ	—उहाँ
पूर्वकालिक क्रियाओं में		
	आय	आइ
	जाय	जाइ
	पाय	पाइ
	दिखाय	दिखाइ
भविष्यत् रूप में	आयहै	आइहैं-आइहै
	जायहै	जाइहैं-जाइहै
	दिखाइहै	दिखाइहैं-दिखाइहै

८. 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण भिन्न हैं। 'ऐ' का उच्चारण ब्रजभाषा में अग्र अर्द्ध विवृत दीर्घ मूल स्वर 'ऐ'—की तरह है जबकि अवधी में 'अइ' की तरह होता है।

ब्रज	अवधी
भैंस	भइँस
ऐसा	अइसा
बैल	बइल

'औ' का उच्चारण भी ब्रज में पश्च अर्द्ध विवृत दीर्घ मूल स्वर की जबकि अवधी में 'अउ' की तरह होता है।

ब्रज	अवधी
और	अउर
मौर	मउर

टिप्पणी—'ऐ' और 'औ' का ब्रज में भी 'अइ' तथा 'अउ' की तरह अर्द्ध स्वरों के पूर्व उच्चारण होता हैं, अन्यथा नहीं :

गैया	—गइया
मैया	—मइया
कौवा	—कउआ
हौआ	—हउवा

अवधी के साथ साम्य :

१. ब्रज और अवधी में वर्तमान और भविष्यत् के तिङन्त रूपों में लिंग भेद नहीं है जबकि खड़ी बोली में लिंग भेद होता है—

	खड़ीबोली		ब्रज		अवधी	
	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
वर्तमान	आता है	आती है	चलेहै	चले है	—	—
भविष्यत्	करेगा	करेगी	करिहै	करिहै	करिहै	करिहै

२. ब्रजभाषा में तिर्यक बहुवचन में अवधी के समान 'न' प्रत्यय जुड़ता है जबकि खड़ीबोली में—ओ लगता है :

खड़ी	ब्रज	अवधी
घोड़ों को	घोड़ान को	घोड़न को
	घोड़न को	

३. ब्रज तथा अवधी दोनों में सविभक्तिक पद भी मिलते हैं जिनमें विशेषकर 'हि' विभक्ति है। खड़ीबोली में केवल परसर्ग ही रहते हैं।

ब्रज	अवधी
घरहि	घरहि
रामहि, रामें	रामहि
घरहि-घरे	घरे

४. ब्रज में साधारण क्रिया के तीन रूप हैं—

नौ—से अन्त होने वाले—करनौ

न —से अन्त होने वाले—आवन

बो—से अन्त होने वाले—करिबो, लेबो

अवधी में

—इ से अन्त होने वाली क्रियाएँ—आवइ, जावइ, जाइ

—ब से अन्त होने वाली क्रियाएँ—आउब, करब, जाब ।

सहायक सामग्री

पुस्तक-सूची

१. अपभ्रंश व्याकरण—हेमचन्द्र सूरि—सं० केशवराम का० शास्त्री, सं० २००५।
२. अर्द्ध कथानक—सं० स्व० नाथूराम प्रेमी, सन् १९५७।
३. उक्ति व्यक्ति प्रकरण—सं० आचार्य जिन विजय मुनि, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ।
४. उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग २—सं० डॉ० रिज़वी, सन् १९५९ ई०।
५. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, सन् १९५३।
६. आर्यभाषा और हिन्दी—डॉ०सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, सन् १९५७।
७. एवोल्यूशन अव् अवधी—डॉ० बाबूराम सक्सेना, सन् १९३६।
८. कवि प्रिया—केशवदास, सन् १९५२।
९. कलेक्टेड वर्क्स अव् भंडारकर—आर० जी० भंडारकर, सन् १९२९।
१०. काव्य मीमांसा—राजशेखर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
११. काव्यादर्श—दण्डी।
१२. कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा—डॉ० शिवप्रसादसिंह, सन् १९५६।
१३. खड़ीबोली का आन्दोलन—डॉ० शितिकंठ मिश्र, सं० २०१३।
१४. खड़ी बोली का विकास—डॉ० हरिश्चन्द्र शर्मा (थीसिस—आगरा विश्वविद्यालय)।
१५. खलजीकालीन भारत—सं० डॉ० रिजवी, सन् १९५५।
१६. गुप्तजी की कला—डॉ० सत्येन्द्र, सन् १९५९।
१७. ग्रामीण हिन्दी—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, सन् १९५०।
१८. जनरल प्रिंसिपल्ज़ अव् इन्फ्लेक्शन्ज़ एंड कंजूगेशन इन ब्रजभाषा, लल्लूजी लाल।
१९. दक्खिनी हिन्दी—डॉ० बाबूराम सक्सेना, सन् १९५२।
२०. नासिकेतोपाख्यान—सदल मिश्र, सं० २००७।
२१. पुरानी राजस्थानी,—डॉ० नामवरसिंह, सं० २०१६।
२२. पुरानी हिन्दी—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी सं० २००५।
२३. प्राकृत और उसका साहित्य--डॉ० हरदेव बाहरी, प्रथम सं०।
२४. प्राकृत पैंगलम्—सं० चन्द्रमोहन घोष, एशियाटिक सोसायटी अव् बंगाल, कलकत्ता, १९००।
२५. प्राकृत पैंगलम्—भाग १—सं० डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, काशी।
२६. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—पिशेल, अनुवादक—डॉ० हेमचन्द्र जोशी।
२७. प्राकृत विमर्श—डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्र० सं०।
२८. प्रेम सागर—लल्लूजी लाल, ना० प्र० सभा काशी, सं० १९७९।

२९. फ़ोनेटिक एंड फ़ोनोलोजिकल स्टडी अव भोजपुरी—डॉ० विश्वनाथप्रसाद, सन्, १९५० (थीसिस-लन्दन विश्वविद्यालय, अप्रकाशित)।
३०. बुन्देली का विकास—डॉ० रोमेश्वर प्रसाद अग्रवाल (थीसिस—लखनऊ वि० वि०)।
३१. बुद्धचरित (भूमिका)—पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९७९।
३२. बेलि क्रिसन रुक्मणी री—प्रिथीराज, सं० आनन्द प्रकाश दीक्षित, सन् १९५३।
३३. ब्रजभाषा—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, सन् १९५४।
३४. ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका—डॉ० कपिलदेवसिंह—अप्रैल १९५९।
३५. ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली—डॉ० कपिलदेवसिंह, सन् १९५६।
३६. ब्रजभाषा का व्याकरण—आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, सन् १९४३।
३७. ब्रजभाषा व्याकरण—मिर्जा खां, सन् १६७६, अनुवाद जियाउद्दीन, सन् १९३५।
३८. भारत का भाषा सर्वेक्षण—डॉ० ग्रियर्सन अनुवादक, डॉ० उदयनारायण तिवारी।
३९. मध्यदेशीय भाषा—ग्वालियरी—हरिहर निवास द्विवेदी, सं० २०१२।
४०. मुग़लकालीन भारत—बाबर—सं० डॉ० रिजवी, सन् १९६०।
४१. राजस्थानी भाषा—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, प्र सं०।
४२. रानी केतकी की कहानी—इंशा अल्ला खां, सं० २००६।
४३. रामचरितमानस—गो० तुलसीदास।
४४. वैदिक स्वर मीमांसा—युधिष्ठिर मीमांसक, सन् १९५८।
४५. सन्देश रासक—सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, १९६०।
४६. संस्कृत—टी० बरो, प्रथम संस्करण।
४७. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ, हिन्दी अनुवाद, सन् १९५८।
४८. सामान्य भाषा—विज्ञान—डॉ० बाबूराम सक्सेना, सन् १९५६।
४९. साहित्य कोश—सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, प्र० सं०।
५०. सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरबंशलाल शर्मा, संशोधित संस्करण।
५१. सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य—डॉ० शिवप्रसादसिंह, सन् १९५८।
५२. हाब्सन जाब्सन—येल, सन् १९०३।
५३. हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी—पद्मसिंह शर्मा, सन् १९५१।
५४. हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन, सन् १९४५।
५५. हिन्दी ग्रामर—कैलोग, सन् १८७५, संस्करण, सन् १९५५।
५६. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डॉ० नामवरसिंह, सन् १९५४।
५७. हिन्दी भाषा का इतिहास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, सन् १९४९।
५८. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदय नारायण तिवारी, सन् १९५६।
५९. हिन्दी में अँग्रेजी आगत शब्दों का भाषातात्त्विक अध्ययन—डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया।
६०. हिन्दी व्याकरण—कामताप्रसाद गुरु, सं० २००९।

६१. हिन्दी शब्दानुशासन—किशोरीदास वाजपेयी, प्र० सं० ।
६२. हिन्दी साहित्य की भूमिका—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
६३. हिस्टोरिकल ग्रामर अव् अपभ्रंश—डॉ० तगारे, सन् १९४८ ।

लेखादि की सूची

१. अध्यक्षपदीय भाषण—डॉ० सुकुमार सेन, लिंग्विस्टिक सोसायटी—१९५६ ।
२. अवधी के ध्वनिग्राम—डॉ० उदयनारायण तिवारी, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ ।
३. आगरे की खड़ी बोली—डॉ० मुरारीलाल उप्रैतिः, भारतीय साहित्य वर्ष ४, अंक १
४. आगरे की खड़ी बोली—डॉ० विश्वनाथप्रसाद, भारतीय साहित्य वर्ष २, अंक ३ ।
५. उकारबहुला प्रवृत्ति की परम्परा और ब्रज की बोली—डॉ० चन्द्रभान रावत ।
६. कबीर की भाषा—डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, राष्ट्रवाणी, सितम्बर १९६० ।
७. कृष्ण रुक्मिणी बेलि का ब्रजभाषा में अनुवाद—अगरचन्द नाहटा, ब्रजभारती,—१० ।
८. कौरवी और राष्ट्रभाषा हिन्दी—डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ ।
९. खड़ीबोली नाम का इतिहास—प्रो० माताबदल जायसवाल, हिन्दी अनुशीलन ।
१०. खड़ी बोली शब्द का प्रयोग और अर्थ—डॉ० आशा गुप्ता, राजर्षि अभिनन्दन ग्रंथ ।
११. डज् खड़ीबोली मीन्ज् नथिंग एल्ज दैन रस्टिक स्पीच—टी० जी० बेली ।
१२. दक्षिण, दक्षिणापथ और दक्खन—डॉ० श्रीराम शर्मा, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६ । सं ४ ।
१३. नोट्स आन द ग्रामर अव् द ओल्ड वैस्टर्न राजस्थानी विद स्पेशल रेफरेन्स टू अपभ्रंश एंड गुजराती, मारवाड़ी—डॉ० तेस्सितोरी, इंडियन एंटीक्वेरी, १९१४ ।
१४. प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान भारतीय भाषाएँ—किशोरीदास वाजपेयी ।
१५. प्राकृत पैंगलम की शब्दावली और वर्तमान ब्रजलोक शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन, हिन्दुस्तानी, सन् १९५९ ।
१६. प्राचीन खड़ीबोली गद्य में भाषा का स्वरूप—डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम, राजर्षि ग्रन्थ ।
१७. ब्रज का भौगोलिक विस्तार—डॉ० दीनदयाल गुप्त—ब्रजभारती, वर्ष ४, अंक १० ।
१८. ब्रजबुलि की भाषागत तथा व्याकरणगत विशेषताएँ—रामपूजन तिवारी ।
१९. ब्रजभाषा का उद्गम और विकास—डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन—राजर्षि ग्रन्थ ।
२०. ब्रज में भाषा का विकास—डॉ० चन्द्रभान रावत, ब्रज का इतिहास ।
२१. मथुरा जिले की बोलियाँ—डॉ० चन्द्रभान रावत, भा० सा०, वर्ष ४, अंक ३ ।
२२. मध्यप्रदेश का विकास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, (विचारधारा) ।
२३. राउलवेल—हरिवल्लभ चुनीलाल भायाणी—भारतीय विद्या, भाग, १७, अंक ३० ।
२४. रामचरित—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ३, अंक ४ ।
२५. रोडाकृत 'राउल वेल'—डॉ० माताप्रसाद गुप्त, अनुशीलन ।
२६. शौरसेनी, भाषा की प्राचीन परम्परा—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पोद्दार ग्रन्थ ।
२७. हिन्दी का उत्तराधिकार—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भा० सा० १९५६ ।
२८. हिन्दी का परिनिष्ठित रूप—डॉ० रामविलास शर्मा, भा० सा० १९५७ ।
२९. हिन्दी की बोलियाँ तथा प्राचीन जनपद—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (विचारधारा से) ।
३०. हिन्दी में लिंग विचार—डॉ० हरदेव बाहरी, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष २, अंक ३ ।
३१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षपदीय भाषण—जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ।